कबीर वाङ्मय : खंड 1

रमैनी

डॉ. वासुदेव सिंह



"कबीर वाणी" की सर्वजयी चेतना अभिव्यक्त करनेवाले माध्यमों में "रमैनी" अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा प्रामाणिक है। प्रत्येक चरण में सोलह मात्राओं वाले इस विशिष्ट छन्द में संसार में जीवों का रमण विवेचित हुआ है। कबीर की इन रमैनियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि शब्द ही परावाक् है। इन रमैनियों पर अब तक जितना भी कार्य हुआ है उन सबको विवेचित करते हुए इस ग्रन्थ में प्रामाणिक क्रम एवं पाठ-निर्धारण का प्रयत्न किया गया है। इसमें कबीर के सर्वांगीण अध्ययन के साथ-साथ पूर्वाग्रह या पंथाग्रह से मुक्त काव्य-गरिमा का स्पष्टीकरण भावार्थबोधिनी व्याख्या के साथ मिलता है। वस्तुतः प्रस्तुत ग्रंथ में दृष्टि यह रही है कि पूर्वापर सामंजस्य बना रहे और कबीर को साधक तथा कवि के यथार्थपूर्ण सन्दर्भों में समझा एवं कबीर की वाणी को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया जा सके।

आवरण चित्र

इस ग्रन्थ के प्रतीकात्मक आवरण चित्र में जल भव-सागर का एवं कमल-पुष्प जीव का प्रतीक है। पुष्प के अन्तस्तम तल में सुरति विद्यमान है। ऊपर सूर्य का प्रकाश सारशब्द अथवा कबीर के राम का द्योतक है। ज्यों-ज्यों सुरति सारशब्द की ओर उन्मुख होती है, त्यों-त्यों जीवरूपी कमल का विकास होता जाता है।



कबीर वाङ्मय : खण्ड १

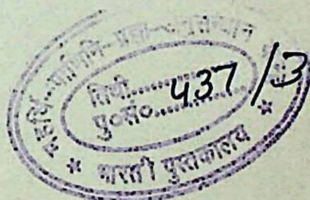
रमैनी

भावार्थबोधिनी व्याख्या सहित

डॉ० जयदेव सिंह

•

डॉ० वासुदेव सिंह





विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

प्रथम संस्करण : १९७४ ई०
मूल्य : सोलह रुपये

प्रकाशक : विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, चौक, वाराणसी।
मुद्रक : ओम्प्रकाश कपूर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी (बनारस) ७१७३-३०।



उपोद्घात

कबीरदास का व्यक्तित्व न केवल हिन्दी सन्त कवियों में, अपितु पूरे हिन्दी-साहित्य में बेजोड़ है। हिन्दी-साहित्य के लगभग बारह सौ वर्षों के इतिहास में, तुलसीदास को छोड़कर, इतना प्रतिभाशाली एवं महिमामण्डित व्यक्तित्व दूसरे कवि का नहीं है। यद्यपि उन्होंने 'मसि कागद' का स्पर्श नहीं किया था, तथापि उनके नाम से प्रभूत साहित्य उपलब्ध है। कबीरपन्थियों का तो विश्वास है कि उनकी वाणी अनन्त है। वनस्पति में जितने पत्र एवं गंगा में जितने बालुका-कण हैं, कबीर ने श्री-मुख से उतना ही कहा है :—

> जेते पत्र बनसपती, औ गंगा की रैन।
> पंडित विचारा क्या कहै, कबीर कही मुख बैन ॥
>
> (बीजक—साखी २६१)

संत सदाफलदेव के मत से "सद्गुरु कबीर साहेब बन्दीछोर स्वतः प्रकाशस्वरूप हैं एवं वे शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव नित्य अनादि सद्गुरु हैं। वे चारों युगों में स्वच्छन्द संसार में प्रकट होकर जगजीवों को उपदेश करते हैं। अतः उनको कुछ पढ़ने की तथा योग करने की कोई आवश्यकता नहीं है।"[1] कबीर-बीजक के टीकाकार रीवाँ नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह ने 'कबीर जी की कथा' में लिखा है कि "सिकन्दर शाह लोदी ने कबीर की महिमा को सुनकर उनसे न्याय, व्याकरण आदि विभिन्न शास्त्रों पर अपना मत लिखने का अनुरोध किया। कबीर ने सहस्र गाड़ियों में कागज भरवाकर, एक स्थान पर 'राम' शब्द लिखकर, उनको भिजवा दिया। कबीर के व्यक्तित्व के प्रभाव से हिन्दू-मुस्लिम धर्मों के सभी शास्त्रों के वचन उन पृष्ठों पर स्वतः लिख गये।"[2]

इसी प्रकार बीजक के अन्य टीकाकार श्री विचारदास शास्त्री का कहना है कि कबीर ने प्रत्येक जीव के लिए छः लाख छानबे हजार रमैनियाँ मौखिक रूप से कह दी थीं, जिन्हें उनके शिष्यों ने विभिन्न प्रदेशों में प्रचारित किया—'छः लाख छानबे सहस्र रमैनी एक जीभ पर होय।'[3]

---

१. सदाफलदेव जी—बीजक-भाष्य, पृ० १

२. सहस शकट कागज जब आयो। तब कबीर अति आनंद पायो ॥
सबके ऊपर शकट यक माँही। लिख्यो राम अक्षर द्वै काहीं ॥
सहसहु शकट साह ढिंग भेजा। प्रगट्यो राम नाम कर तेजा ॥
सकल शास्त्र सब कागज माँही। लिखिगे आपुहि ते श्रम नांही ॥
(कबीर-बीजक, पृ० २०-२१)

३. बीजक, पृ० ४२।

कबीर-पन्थियों के मत से 'कबीर' एक समय में उत्पन्न एक व्यक्ति की संज्ञा नहीं है। कबीर वह 'परमतत्त्व' है जो अज्ञानान्धकार में भटकते हुए प्राणियों का मार्गदर्शन करने के लिए प्रत्येक युग में अवतीर्ण होता है और सदुपदेश करता है—'जुग-जुग सो कहवैया, काहु न मानी बात' (रमैनी—५)। एक साखी में तो यहाँ तक कहा गया है कि जिस समय यह कृत्रिम संसार नहीं था अर्थात् सृष्टि नहीं हुई थी, संसार-रूपी बाजार नहीं था, उस समय केवल राम के भक्त आदिगुरु कबीर थे, क्योंकि उन्हें लक्ष्य तक पहुँचने के कठिन और दुर्गम मार्ग का परिचय था :—

जा दिन किरतम नां हता, नहीं हाट नहिं बाट।
हुता कबीरा राम जन, जिन देखा औघट घाट ॥ २८ ॥

(परचा कौ अंग)

वस्तुतः कबीर के अनुयायियों द्वारा उनकी अतिरंजनात्मक प्रशस्ति के मूल में कबीर भक्तों की श्रद्धा की अभिव्यक्ति अधिक है, तथ्यों की सूचना कम। इसीलिए उनके उद्‌गार कबीर के सही व्यक्तित्व और उनकी रचनाओं की सच्ची जानकारी देने में कम सहायक हुए हैं। एक प्रकार से इससे समस्या उलझी अधिक है, क्योंकि कबीर के इन भक्तों ने न केवल उनकी कोरी प्रशंसा ही की है, अपितु उनके नाम से प्रचुर साहित्य लिखकर प्रचारित भी किया है। देश के विभिन्न भागों में विद्यमान कबीर-पन्थियों की गद्दियों और मठों में कबीर के नाम से इतना अधिक लिखित-मौखिक साहित्य उपलब्ध है कि किसी भी तटस्थ वैज्ञानिक अनुसंधित्सु के लिए 'कबीर-साहित्य' को अलग कर पाना नितान्त असम्भव हो गया है। यही कारण है कि विगत ७०-७५ वर्षों से देशी-विदेशी विद्वानों द्वारा कबीर साहित्य की प्रामाणिकता पर निरन्तर कार्य होने पर भी आज तक हम अन्तिम रूप से यह कहने की स्थिति में नहीं हैं कि उपलब्ध साहित्य में कितना कबीर का है और कितना कबीरेतर।

कबीर के नाम उपलब्ध साहित्य

कबीर साहित्य की वैज्ञानिक खोज का कार्य सन् १९०३ में एच० एच० विल्सन ने किया। उन्हें कबीर के नाम पर कुल आठ ग्रन्थ मिले। उनके बाद बिशप जी० एच० वेस्टकॉट ने कबीर लिखित ८४ पुस्तकों की सूची प्रस्तुत की। रामदास गौड़ लिखित 'हिन्दुत्व' नामक ग्रन्थ में कबीर की ७१ पुस्तकें गिनायी गयी हैं। मिश्रबन्धुओं ने 'हिन्दी नवरत्न' में ७५ ग्रन्थों की तालिका दी है। इसी प्रकार हरिऔध जी द्वारा सम्पादित 'कबीर वचनावली' में २१ ग्रन्थों, युगलानन्द द्वारा सम्पादित 'बोधसागर' में ४० ग्रन्थों, डॉ० रामकुमार वर्मा के 'हिन्दी-साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' में ६१ ग्रन्थों और नागरी प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों में १४० ग्रन्थों की सूची मिलती है। उपर्युक्त विद्वानों ने विभिन्न स्रोतों से प्राप्त कबीर की रचनाओं की सूची-मात्र दी है। उनकी प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता पर गहराई से विचार नहीं किया है।

प्रामाणिकता का प्रश्न

कबीर-साहित्य की प्रामाणिकता और पाठ-निर्धारण आदि के सम्बन्ध में मुख्य रूप से दो दिशाओं में कार्य हुए हैं—एक साहित्यिक विद्वानों द्वारा और दूसरे कबीर-पन्थी साधुओं द्वारा। साहित्यिक क्षेत्र में इस दिशा में सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण कार्य बाबू श्यामसुन्दरदास ने किया। उन्होंने संवत् १९८५ में दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर 'कबीर ग्रन्थावली' का सम्पादन करके, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित कराया। उनके अनुसार "कबीरदास के ग्रंथों की इन दो प्रतियों में से एक तो संवत् १५६१ की लिखी है और दूसरी संवत् १८८१ की।"[1] संवत् १८८१ की प्रति में पहली प्रति की अपेक्षा १३१ दोहे और ५ पद अधिक हैं। इन दो प्रतियों के अतिरिक्त संवत् १६६१ में संकलित 'गुरु-ग्रन्थ साहिब' में संगृहीत कबीर की वाणी को भी प्रस्तुत ग्रन्थ के संपादन में आधार बनाया गया है। 'गुरु-ग्रन्थ साहिब' में कबीर के जो दोहे और पद उक्त प्रतियों में भी थे, उन्हें मूल अंश में सम्मिलित कर लिया गया है और शेष को परिशिष्ट में दे दिया गया है। इस प्रकार 'कबीर-ग्रंथावली' में कुल ८०९ साखियाँ, ४०३ पद और ७ रमैनियाँ संगृहीत हैं। इनके अतिरिक्त परिशिष्ट में १९२ साखियाँ और २२२ पद और दे दिये गये हैं।

संवत् १५६१ की हस्तलिखित प्रति के अन्त में एक पुष्पिका दी हुई है जिसके अनुसार यह प्रति खेमचन्द के पढ़ने के लिए मलूकदास ने काशी में लिखी थी। बाबू श्यामसुन्दरदास ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि ये मलूकदास कबीरदास के शिष्य और समकालीन प्रसिद्ध सन्त थे। इस प्रकार बाबू साहब ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि प्रस्तुत प्रति का संग्रह कबीर के जीवनकाल में ही होने से, इसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है। किन्तु परवर्ती खोजों से यह स्पष्ट हो गया है कि उक्त पुष्पिका जाली है। मलूकदास का जन्म संवत् १६३१ में हुआ था। अतः वह अपने जन्म के ७० वर्ष पूर्व ही उक्त संग्रह कैसे कर सके ? 'पेमचन्द्र' नामक किसी व्यक्ति का भी पता नहीं चल सका है। इस प्रति की भाषा में जो पंजाबीपन का आधिक्य है, वह भी सन्देह को जन्म देता है, क्योंकि कबीर के पूर्वी क्षेत्र में पैदा होने और निवास के कारण इसमें पूर्वीपन अधिक होना चाहिए, न कि पंजाबीपन।[2] साखियों की भाषा में पंजाबी-प्रभाव के आधिक्य को देखकर स्वयं बाबू श्यामसुन्दरदास ने लिखा था कि "दोनों हस्तलिखित प्रतियों में जो पंजाबीपन देख पड़ता है, उसका कुछ कारण समझ में नहीं आता। या तो यह लिपिकर्त्ता की कृपा का फल है अथवा पंजाबी साधुओं की संगति का प्रभाव है।"[3] यदि लिपिकर्त्ता कबीर का समकालीन होता तो उसे कबीर

---

१. कबीर ग्रन्थावली, प्रथम संस्करण की भूमिका, पृ० १।

२. विस्तार के लिए देखिए, नागरी प्रचारिणी पत्रिका (शोध-विशेषांक), संवत् २०२९ में डॉ० शुकदेव सिंह का निबन्ध—'कबीर-ग्रन्थावली की प्रामाणिकता', पृ० ९६–१११।

३. कबीर ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ४–५।

की भाषा में इतना व्यापक परिवर्तन करने का साहस कैसे होता ? अतः अधिक समीचीन यही प्रतीत होता है कि बाबू साहब ने जिन प्रतियों के आधार पर ग्रन्थावली का सम्पादन किया है, वे काफी परवर्ती हैं। (दूसरी प्रति को स्वयं बाबू साहब ने संवत् १८८१ की लिखित माना है)। अतः 'कबीर-ग्रन्थावली' की प्रामाणिकता को अन्तिम सत्य के रूप में नहीं स्वीकार किया जा सकता।

बाबू श्यामसुन्दरदास की 'कबीर-ग्रन्थावली' के प्रकाशन के लगभग १५ वर्षों बाद संवत् २००० (सन् १९४३) में डॉक्टर रामकुमार वर्मा ने 'सन्त कबीर'[1] नाम से कबीर की रचनाओं का अन्य संस्करण निकाला। उनके मत से "नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'कबीर-ग्रन्थावली' का पाठ सन्दिग्ध और अप्रामाणिक है। पाठ का पंजाबीपन तो 'पूरब' निवासी कबीर की वाणी का विषम शीशे में पड़ा हुआ विकृत प्रतिबिम्ब-सा है।" डॉ० वर्मा की दृष्टि में 'कबीर-ग्रन्थावली' की भाषा अप्रामाणिक है ही, उसके पाठ निर्धारण में भी अनेक त्रुटियाँ हैं। "अनेक स्थलों पर शब्दों को अलग-अलग लिखने में भूल हो गयी है। कहीं एक शब्द दूसरे से जोड़ दिया गया है, कहीं किसी शब्द को तोड़कर आगे और पीछे के शब्दों में मिला दिया गया है।"[2] इसके अतिरिक्त 'गुरु-ग्रन्थ साहिब' में उद्धृत अनेक पदों को छोड़ दिया गया है।

डॉ० वर्मा के समक्ष यद्यपि कबीर-बानी के ६ संग्रह तथा नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९०१ से सन् १९२२ तक की खोज रिपोर्टों में संकलित ८५ प्रतियों की सूची थी, किन्तु उन्होंने 'गुरु-ग्रन्थ साहिब' को ही सर्वाधिक विश्वसनीय माना, क्योंकि उनके मत से "श्री ग्रन्थ साहिब का संकलन पाँचवे गुरु श्री अर्जुनदेव ने सन् १६०४ (संवत १६६१) में किया था। सन् १६०४ का यह पाठ अत्यन्त प्रामाणिक है। यही नहीं, गुरुमुखी लिपि में लिखे जाने पर भी कबीर के काव्य का व्याकरण पूर्वी हिन्दी का रूप लिये हुए है।"[3] प्रस्तुत संग्रह में 'गुरु-ग्रन्थ साहिब' के आधार पर २२८ पद (सबद) और २४३ साखियाँ दी गयी हैं। इस संग्रह में रमैनियों को बिल्कुल छोड़ दिया गया है। कबीर-पन्थियों में सर्वाधिक मान्य रमैनियों को कबीर-साहित्य से अलग करना संगत नहीं प्रतीत होता। पदों और साखियों की संख्या भी बहुत कम कर दी गयी है। बहुत सम्भव है 'गुरु-ग्रन्थ साहिब' में कबीर की कुछ चुनी हुई रचनाएँ ही रखी गयी हों। अतः 'सन्त कबीर' में संगृहीत पदों और साखियों को कबीर का सम्पूर्ण साहित्य नहीं माना जा सकता।

कबीर-साहित्य के वैज्ञानिक स्वरूप-निर्धारण का दूसरा कार्य डॉ० पारसनाथ तिवारी ने 'कबीर-ग्रन्थावली' नाम से किया है। कबीर की वाणी का पाठ-निर्धारण

---

१. प्रकाशकः साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, १९४३।
२. सन्त कबीर, प्रस्तावना, पृ० ७।
३. सन्त कबीर, प्रस्तावना, पृ० १६–१७।

एवं प्रामाणिक रचना-संकलन करने के लिए डॉ० तिवारी ने विभिन्न पुस्तकालयों, कबीर-पन्थी, दादू-पन्थी एवं निरंजन-पन्थी संस्थानों तथा व्यक्तिगत संग्रहालयों से प्राप्त हस्तलिखित एवं मुद्रित सामग्री का अत्यन्त श्रम से निरीक्षण-परीक्षण करके प्रस्तुत संग्रह तैयार किया है। इस कार्य को अधिकाधिक प्रामाणिक बनाने के लिए उन्होंने दादू महाविद्यालय, जयपुर से १५, श्री कबीर मन्दिर, मोती डूँगरी से ९; नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी से २९; हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग से २; पंजाब विश्वविद्यालय संग्रहालय से २; स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायण से २; श्री उदयशंकर शास्त्री से १२ और श्री अगरचन्द नाहटा से २ प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों का भी उपयोग किया है। इन प्रतियों का लिपिकाल संवत् १८३१ और संवत् १८८० के मध्य है। डॉ० तिवारी को विभिन्न संस्थानों एवं व्यक्तिगत संग्रहों से उपलब्ध हस्तलिखित एवं मुद्रित प्रतियों में कबीर के नाम से कुल मिलाकर लगभग १६०० पद, ४५०० साखियाँ और १३४ रमैनियाँ प्राप्त हुईं। इनके अतिरिक्त लगभग १०० रचनाएँ उन्हें और मिलीं, जो कबीर-कृत मानी जाती हैं। कबीर के नाम से उपलब्ध इस विपुल साहित्य से उनकी वास्तविक रचनाओं को अलगाना कितना श्रमसाध्य है एवं कितनी पैनी दृष्टि की अपेक्षा रखता है, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इस कठिनाई की ओर संकेत करते हुए डॉ० तिवारी ने लिखा है कि "मैं नहीं जानता कि संसार के और किस कवि या लेखक की रचनाओं की समस्त प्रतियों में समान रूप से प्राप्त और पुनः उनमें पृथक्-पृथक् सामूहिक अथवा स्वतन्त्र रूप से प्राप्त छन्दों की संख्या में इस कोटि की विषमता होगी, जितनी कबीर के सम्बन्ध में दिखाई पड़ती है।"[1] इस प्रचुर सामग्री का सतर्कता एवं सावधानी से अध्ययन करके डॉ० तिवारी ने निष्कर्ष रूप में २०० पदों, २० रमैनियों, एक चौंतीसी रमैनी और ७४४ साखियों को प्रामाणिक रूप से कबीर की रचना माना है। इस प्रकार उन्होंने बाबू श्यामसुन्दर दास द्वारा स्वीकृत साखियों और पदों की संख्या घटा दी है तथा रमैनियों की संख्या ७ की अपेक्षा २० मानी है।

डॉ० तिवारी ने 'कबीर-ग्रन्थावली' का सम्पादन एवं पाठ-निर्धारण पी-एच० डी० की उपाधि के निमित्त डॉ० माता प्रसाद गुप्त के निर्देशन में किया था, किन्तु डॉ० गुप्त को उनके पाठालोचन से पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ, क्योंकि उनकी दृष्टि में "कबीर-वाणी के दो सर्वाधिक प्राचीन और सुरक्षित पाठों का यथेष्ट रूप से न तो मूल्यांकन ही हुआ था और न कबीर-वाणी का सन्देश स्पष्ट करने में उपयोग ही हुआ था।"[2] इसलिए डॉ० गुप्त ने 'कबीर ग्रन्थावली' के पाठ-निर्धारण की नये सिरे से आवश्यकता अनुभव करते हुए उसका सम्पादन किया है। प्रस्तुत संस्करण का आधार आगरा विश्वविद्यालय के के० एम० मुंशी विद्यापीठ में सुरक्षित संवत् १७६२ की

---

१. डॉ० पारसनाथ तिवारीः कबीर-ग्रन्थावली, प्रस्तावना, पृ० ३।

२. डॉ० माताप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादितः कबीर ग्रन्थावली, प्रस्तावना, पृ०—१।

बनवारीदास की परम्परा की उस प्रति को बनाया गया है जो सबसे प्राचीन उपलब्ध पाठ देती है। इस संस्करण में नागरी प्रचारिणी सभा की 'कबीर ग्रन्थावली' के समस्त छन्द संशोधित पाठ के साथ दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त उक्त प्राचीनतर प्रति से उपलब्ध एक साखी और १९ पद अधिक दिये गये हैं। इस प्रकार प्रस्तुत संस्करण का पाठ एवं छन्द-संख्या लगभग बाबू श्यामसुन्दरदास की 'कबीर-ग्रन्थावली' जैसी ही है।

इन प्रमुख कार्यों के अतिरिक्त कबीर के पदों और साखियों को लेकर और भी अनेक संग्रह समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं, जिनमें हरिऔध की 'कबीर-वचनावली'; वेलवेडियर प्रेस की 'कबीर साहब की शब्दावली', गोविन्दराम दुर्लभराम द्वारा सम्पादित 'ग्रन्थ-शब्दावली', मुंशी शिवव्रत लाल की 'सत्य कबीर की शब्दावली' एवं 'सन्त कबीर की साखी', स्वामी युगलानन्द की 'कबीर की साखी', हुजूर साहब की 'कबीर की साखी', विचारदास शास्त्री का 'सद्गुरु कबीर साहब का साखी ग्रन्थ', महाराज राघवदास का 'सटीक साखी ग्रन्थ', रामचन्द्र श्रीवास्तव की 'कबीर साखी-सुधा' आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

बीजक—बाबू श्यामसुन्दरदास तथा अन्य विद्वानों द्वारा 'कबीर-ग्रन्थावली' के सम्पादन-प्रकाशन का परिणाम यह हुआ कि साहित्यिक क्षेत्र में पदों और साखियों का ही अधिकाधिक प्रचार हुआ और विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में इन्हीं को स्थान मिला। बीजक प्रायः उपेक्षित ही रहा, जब कि कबीर-पन्थियों में 'बीजक' ही अधिक मान्य ग्रन्थ रहा है, उसे पन्थ का 'वेद' माना जाता है। अमृतसर के गुरुद्वारे के कबीरपन्थी भगत 'बीजक' का ही पाठ करते हैं। कबीर के दार्शनिक सिद्धान्तों का सारतत्त्व 'बीजक' में ही उपलब्ध होता है। 'बीजक' का अर्थ ही है—गुप्त-धन बताने वाली सूची। कबीर ने कहा है—

बीजक वित्त बतावई, जो वित गुप्ता होय।
सब्द बतावै जीव को, बूझै विरला कोय ॥ (रमैनी–३७)

जो वित्त या धन गुप्त होता है अर्थात् कहीं पृथ्वी में गाड़कर या अन्यत्र छिपाकर रखा जाता है, उसका पता केवल उसके 'बीजक' से ही लगता है, उसी प्रकार जीव के गुप्त-धन को अर्थात् वास्तविक स्वरूप को शब्दरूपी बीजक (गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान-दीक्षा) बतलाता है। कबीर का प्रमुख साहित्य—रमैनी, साखी और शब्द (पद) बीजक में उपलब्ध है। कबीर ने बीजक (रमैनी) में सृष्टि, मोक्ष, मनोमाया, माया से सावधानी, भव-पन्थ के कष्टों, संसार की असारता, सत्यानुभव, ज्ञान-भूमिका, देवादि-मोह-विडम्बना, सतसंग-महिमा, आसक्ति से ज्ञान की दुर्लभता, सद्गुरु-महिमा, भक्ति-महिमा आदि का विशद विवेचन किया है। दर्शन के साथ काव्य का सुन्दर सामञ्जस्य 'बीजक' की अन्य विशेषता है। कबीर के सिद्धान्त, साधना एवं काव्य-वैशिष्ट्य पर विस्तार से स्वतन्त्र रूप से लिखा जायगा। यहाँ हम केवल इतना संकेत करना चाहते

हैं कि अब तक कबीर-वाणी के इस महत्त्वपूर्ण अंश पर साहित्यकारों द्वारा अपेक्षित विचार का अभाव वस्तुतः कबीर के साथ अन्याय ही कहा जायगा।

'बीजक' के लोकप्रिय न होने का एक कारण कबीर-पन्थियों की कट्टरता भी है। वे इसे मन्त्रों की तरह प्रायः गोपनीय ही रखना चाहते हैं। जन-सामान्य में इसका प्रचार वे अनुचित मानते हैं। कहा जाता है कि बीजक का मूल कबीर के दो शिष्यों भगवानदास और जगन्नाथ साहब के हाथ लगा। भगवानदास ने इसे गोपनीय ग्रन्थ बना दिया। उस पर दूसरों की दृष्टि न पड़ने दी। यदि किसी ने उसे अध्ययन-मनन के लिए माँगा भी तो भगवानदास या भग्गोदास ने अस्वीकार कर दिया, केवल सम्प्रदाय के दीक्षा-कार्यों में ही इसका उपयोग हुआ। यह प्रति भगताही-परम्परा के कबीर-पन्थियों में ही सुरक्षित रही। बीजक की दूसरी प्रति जो जगन्नाथ साहब के अधिकार में थी, कबीरपन्थियों में उसका ही अधिक प्रचार-प्रसार हो सका। उसी के आधार पर साम्प्रदायिक भक्तों के द्वारा टीका और भाष्य भी लिखे गये।

कहने का तात्पर्य यह है कि कबीरपन्थियों में बीजक को ही अधिक प्रामाणिक एवं आदि ग्रन्थ माना जाता है। विशप जी० एच० वेस्टकॉट ने भी लिखा है कि "बीजक कबीर साहब की शिक्षा का प्रामाणिक ग्रन्थ मान लिया गया है। यह सम्भवतः १५७० ई० में या सिक्खों के पाँचवे गुरु अर्जुन द्वारा नानक की शिक्षा आदि-ग्रन्थ में लिखे जाने के बीस वर्ष पहले लिखा गया था।"[१] कबीरपन्थी सन्तों द्वारा इसके पाठ-निर्धारण एवं टीका-भाष्य-लेखन के सम्बन्ध में समय-समय पर कार्य होते रहे हैं। इन ग्रन्थों में हंसदास शास्त्री का 'कबीर-बीजक',[२] मोतीदास चेतनदास का 'कबीर साहब का बीजक',[३] सदाफलदेव जी का 'बीजक-भाष्य',[४] खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित 'सद्गुरु कबीर साहेब कृत बीजक',[५] श्री गोसांई श्री भगवान साहब का 'मूल बीजक',[६] महात्मा पूरणसाहब का 'मूल बीजक',[७] तथा विचारदास का 'बीजक'[८] प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। कबीरपन्थियों के अतिरिक्त 'बीजक' पर कुछ अन्य लोगों द्वारा भी कार्य किये गये हैं, जिनमें रीवाँ नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह कृत 'पाषण्ड-खण्डिनी टीका'[९] और लाहौर से उर्दू में प्रकाशित मुंशी शिवव्रत लाल का 'कबीर-बीजक'

१. Kabir and Kabir Panth, p. 7.
२. कबीर ग्रन्थ प्रकाशन समिति, बाराबंकी।
३. कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा, सन् १९३९।
४. मुक्ति पुस्तकालय, पकड़ी, बलिया, संवत् २०१३।
५. बाँकीपुर, पटना, सन् १९२६।
६. मानसर, दाऊदपुर, छपरा, सन् १९३७।
७. बम्बई, संवत् १९९३।
८. प्रकाशक:-रामनारायण लाल, इलाहाबाद, सन् १९२८।
९. वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से संवत् १९६१ में प्रकाशित।

मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त 'बीजक' के और भी कई संस्करण उपलब्ध हैं। डॉ० पारसनाथ तिवारी ने ऐसे ३२ संस्करणों की सूची दी है।[१]

विभिन्न विद्वानों और कबीरपन्थियों द्वारा 'बीजक' के जो संग्रह निकाले गये हैं, उनसे स्पष्ट है कि 'बीजक' की छन्द-संख्या में विशेष अन्तर नहीं है। दो-चार छन्दों के अन्तर से प्रायः सभी संस्करणों में ८४ रमैनियाँ, ११५ शब्द, १ चौंतीसा, १ विप्रमतीसी, १ कहरा, १२ बसंत, २ चांचर, २ वेलि, १ विरहुली, ३ हिंडोला और ३५३ साखियाँ पायी जाती हैं। छन्द-संख्या में विशेष अन्तर न होते हुए भी पाठ-भेद विद्यमान है। कबीरपन्थी संपादकों ने पाठ-निर्धारण में प्रायः साम्प्रदायिक दृष्टि को ही विशेष महत्त्व दिया है। यद्यपि कुछ पाठ-शोधकों ने विभिन्न स्थानों पर उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों का भी उपयोग किया है, किन्तु पाठालोचन की वैज्ञानिक प्रक्रिया तथा काव्य-रचना की बारीकियों से अनभिज्ञ होने के कारण इनके द्वारा निर्धारित पाठ अधिक प्रामाणिक नहीं बन सके हैं। उदाहरणार्थ 'बीजक मूल' के सम्पादक साधु लखनदास ने "इस ग्रन्थ का संशोधन ग्यारह ग्रन्थों से किया है, जिसमें छः टीका-टिप्पणी के साथ हैं और पाँच हाथ की लिखी पोथी हैं। परन्तु इन सब ग्रन्थों को साक्षी रूप में रखा गया था, केवल स्थान कबीर चौरा, काशी के पुराने और प्रचलित पाठ पर विशेष ध्यान दिया गया है।"[२] इसी प्रकार विचारदास शास्त्री ने दावा किया है कि "इस पुस्तक का शोधन अति प्राचीन पाँच प्रतियों के आधार से किया गया है, जो कि स्थान कबीर चौरा के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। उनमें एक प्रति अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण और अनेक दफा की जीर्णोद्धारित (मरम्मत) की हुई मालूम पड़ती है।"[३] श्री हंसदास शास्त्री द्वारा सम्पादित 'कबीर बीजक' में यद्यपि २८ प्रतियों को आधार बनाया गया है, तथापि इसका "संपादन एक व्यक्ति ने नहीं किया, जिसका अपना निजी दृष्टिकोण ही प्रधान रूप से व्याप्त हो, वरन् तीन व्यक्तियों ने किया है और वे तीनों ही कबीर-पन्थी हैं। श्री हंसदास शास्त्री एक कबीरपन्थी मठ के अध्यक्ष हैं, श्री उदयशंकर शास्त्री कबीरपन्थी महन्त श्री गुरु शरणदास जी के पुत्र हैं और श्री महावीर प्रसाद जी कबीर-पन्थ में दीक्षित हैं।"[४]

यद्यपि डॉ० पारसनाथ तिवारी ने बीजक के ३२ संस्करणों की सूची दी है, तथापि 'कबीरग्रन्थावली' के सम्पादन में उनका अधिक उपयोग नहीं किया है अथवा उन्हें प्रामाणिक नहीं माना है। बीजक की परम्परा में ८४ रमैनियाँ मान्य हैं, किन्तु डॉ० तिवारी ने २०० पदों और ७४४ साखियों के अतिरिक्त केवल २० रमैनियों और एक चौंतीसी रमैनी को ही अपने संग्रह में स्थान दिया है, क्योंकि उनकी मान्यता है कि "सिद्धान्ततः केवल उन्हीं पंक्तियों को निश्चित रूप से प्रामाणिक स्वीकार किया जाना

---

१. कबीर-ग्रन्थावली, भूमिका, पृष्ठ २७ से ३० तक।
२. बीजक मूल, भूमिका, पृ० ५।
३. बीजक, परिशिष्ट, पृ० ५०।
४. कबीर बीजक, प्राक्कथन, डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ २।

चाहिए, जो दा० बी० (दादू-पन्थी) या नि० बी० (निरंजनी-सम्प्रदाय) में समान रूप से मिलती हैं। कठिनाई का अनुमान इस बात से और लगाया जा सकता है कि बीजक की ८४ रमैनियों में ६० ऐसी निकल जाती हैं जिनकी एक भी पंक्ति किसी अन्य प्रति में नहीं मिलती, चार रमैनियाँ ऐसी हैं जिनकी केवल एक-एक पंक्ति दा० नि० में मिल जाती है, तीन रमैनियाँ ऐसी हैं जो केवल आंशिक रूप से दा० नि० में मिलती हैं। सम्पूर्ण रूप से मिलने वाली रमैनियों की संख्या केवल १६ है।"[१] इस प्रकार उन्होंने दादूपन्थी और निरंजनी-सम्प्रदाय की प्रतियों को ही अधिक प्रामाणिक माना है, 'बीजक' की परम्परा की उपेक्षा की है।

इधर डॉ० शुकदेव सिंह ने 'बीजक'[२] पर नया कार्य किया है। इसे साहित्यिक क्षेत्र में किया गया प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रयास कहा जा सकता है। उन्हें बीजक के सम्बन्ध में डॉ० तिवारी के निष्कर्ष मान्य नहीं हैं। उन्होंने 'कबीर-बीजक' की भूमिका में लिखा है कि डॉ० तिवारी द्वारा "सम्पादित पाठ में २०० पद, २० रमैनियाँ, १ चौंतीसी और ७४४ साखियाँ हैं। सहज ही इस निष्कर्ष के लिए पूरा अवसर है कि इसमें बीजक का उपयोग अंगी साम्रगी के रूप में हुआ है, क्योंकि बीजक का महत्त्व ८४ रमैनियों (बीजक के सभी रूपों में), ११२ शब्दों (या ११३ से ११५), २९७ साखियों (या ३५३ से लेकर अधिक से अधिक ४४५) चांचर, बेलि, विरहुली, हिंडोला, कहरा, बसंत तथा विप्रमतीसी की दृष्टि से है। बीजक की अपनी ग्रन्थन शैली है, अपनी परम्परा है और कबीर के पन्थ में सबसे अधिक मान्यता भी है। इस प्रकार जाने-अनजाने इस महत्त्वपूर्ण सम्पादन में नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'कबीर-ग्रन्थावली' का ही पाठ–विज्ञान की महत्तर और श्रमपूर्ण भूमिका में सम्पादन हुआ है। कदाचित् इसीलिए इसका नाम भी 'कबीर-ग्रन्थावली' ही रखा गया है। अतः बीजक का महत्त्वपूर्ण सम्पादन अभी तक छूटा हुआ ही माना जाना चाहिए।"[३]

इस प्रकार कबीर वाणी के एक महत्त्वपूर्ण अंश के वैज्ञानिक पाठ के अभाव की पूर्ति का संकल्प लेकर प्रस्तुत संकलन तैयार किया गया है। बीजक के प्रामाणिक पाठ-निर्धारण के लिए विद्वान् लेखक ने लगभग १२ हस्तलेखों और तीन दर्जन के आस-पास बीजक के मुद्रित संस्करणों का उपयोग किया है। इस कार्य में लेखक ने अत्यधिक श्रम करके विभिन्न मठों में संगृहीत सामग्री का भी उपयोग किया है। उन्हें रामरुप गोस्वामी के सहयोग से भगताही पाठ भी उपलब्ध हो गया। लेखक के मत से उपर्युक्त सभी पाठों में 'भगताही बीजक' ही सबसे प्रामाणिक है। अतः उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ भगताही बीजक को प्रमाण मानकर सम्पादित किया है।[४]

---

१. कबीर ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० २६६-६७।
२. कबीर बीजक, प्रस्तुतकर्त्ता, डॉ० शुकदेव सिंह, नीलाभ प्रकाशन ५, खुसरो बाग रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९७२।
३. कबीर बीजक, भूमिका—पृ० ३७-३८।
४. कबीर बीजक, भूमिका—पृष्ठ ९।

प्रस्तुत संस्करण का प्रयोजन

कबीर-साहित्य सम्बन्धी कार्यों के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उनकी वाणी पर मुख्यतः दो क्षेत्रों में कार्य हुआ है—एक साहित्यिक विद्वानों द्वारा, दूसरा कबीर-पन्थियों द्वारा। यद्यपि इसके अपवाद भी हैं। इनमें बाबू श्यामसुन्दरदास, डॉ० पारसनाथ तिवारी, डॉ० माताप्रसाद गुप्त और डॉ० शुकदेव सिंह द्वारा पाठ-निर्धारण और प्रामाणिकता-सम्बन्धी किये गये कार्य अधिक वैज्ञानिक और सुसंगत हैं। किन्तु इनमें ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है जो कि कबीर के समग्र साहित्य को एक साथ उपलब्ध कराता हो। यदि 'ग्रंथावली' नाम से प्रकाशित ग्रन्थों में साखियों और पदों को महत्त्व दिया गया है तो 'बीजक' में रमैनियों की प्राचीनता और प्रामाणिकता सिद्ध की गयी है। साहित्यिक विद्वानों द्वारा 'कबीर ग्रन्थावली' अपनाये जाने का परिणाम यह हुआ है कि हिन्दी के छात्रों का अध्ययन साखियों और पदों तक ही सीमित रह गया है। वे प्रायः रमैनी से अपरिचित ही रहे हैं, जब कि कबीर के विद्यार्थी के लिए रमैनी की जानकारी आवश्यक है। अतएव एक ऐसे ग्रन्थ की नितान्त आवश्यकता थी, जिसमें कबीर का सम्पूर्ण प्रामाणिक साहित्य विस्तृत व्याख्या के सहित उपलब्ध हो। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी दिशा में किये गये प्रयत्न का परिणाम है।

कबीर का प्रमुख साहित्य तीन रूपों में विभक्त है—रमैनी, साखी और शब्द या पद। प्रायः यह माना जाता है कि रमैनी में जगत्, साखी में जीव और सबदी में ब्रह्म सम्बन्धी विचार हैं। 'रमैनी' शब्द का प्रयोग तीन अर्थों में हुआ है—(i) जिसमें संसार में जीवों के रमण का विवेचन हुआ है, (ii) वेद-शास्त्र के विचारों में रमण कराने वाली और (iii) एक छन्द-विशेष जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं। रमैनी में मुख्य रूप से सृष्टि और जीव तथा जगत् की स्थिति पर विचार किया गया है। इसमें मुख्य रूप से चौपाई-दोहा छन्द का प्रयोग हुआ है। कितनी चौपाइयों के बाद दोहा-छन्द रखा जाय, इसका कोई निश्चित क्रम नहीं है। मौ० दाऊद (चंदायन) के बाद कबीर हिन्दी के दूसरे कवि हैं, जिन्होंने 'रमैनी' में चौपाई-दोहा छन्द का विधान किया है। इसी पद्धति को आगे चलकर अन्य सूफ़ी कवियों और तुलसी ने 'मानस' में अपनाया है। कबीर ने एक स्थान पर कहा है कि शब्द ही माया है। शब्द का तात्पर्य है—परावाक्। माया में जीव की प्रीति उपजी और उसने माया में रमण करने का निश्चय किया :—

अद्‌बुद रूप जाति की बानी।
उपजी प्रीति रमैनी ठानी॥ (४।३)

'साखी' शब्द संस्कृत के 'साक्षी' का तद्भव है। साक्षी का अर्थ होता है—गवाह। 'गवाही' के लिए संस्कृत में 'साक्ष्य' शब्द है। साक्षी वह है जिसने स्वयं अपनी आँखों से तथ्य देखा हो। 'साक्ष्य' का अर्थ है—आँख से देखे हुए तथ्य का वर्णन। हिन्दी में 'साखी' शब्द 'साक्षी' और 'साक्ष्य' अर्थात् 'गवाह' और 'गवाही' दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

कबीर ने अपनी इन उक्तियों का शीर्षक 'साखी' इसलिए दिया है, क्योंकि उन्होंने इनमें वर्णित तथ्यों का स्वयं साक्षात्कार किया है। उन्होंने किसी दूसरे से सुनकर अथवा दूसरे ग्रन्थों में उपलब्ध बात नहीं कही है। 'साखी' शब्द को हम चाहें 'गवाह' के अर्थ में लें या 'गवाही' के अर्थ में, इससे भाव में कोई अन्तर नहीं आता। भाव केवल यही है कि स्वसंवेद्य, स्वानुभूत आध्यात्मिक तथ्यों अथवा ज्ञान का वर्णन जिसमें किया गया है, उसे 'साखी' कहते हैं।

कबीर ने 'सबद' का प्रयोग दो भावों को ध्यान में रखकर किया है—एक तो परमतत्त्व के अर्थ में और दूसरे पद के अर्थ में।

रमैनी, साखी और सबद के अतिरिक्त कबीर के नाम से कहरा, वसंत, बेलि, बिरहुली, चांचरि, हिंडोला, चौंतीसी, विप्रमतीसी आदि अन्य काव्य-रूपों में लिखा साहित्य भी पाया जाता है। जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि स्वयं कबीर द्वारा लिपिबद्ध न किये जाने के कारण तथा कबीरपन्थी भक्तों की उदारता और कबीर के प्रति उनकी श्रद्धाभिव्यक्ति के कारण, कबीर के नाम से प्रचुर साहित्य एकत्र हो गया है। उसकी प्रामाणिकता पर विभिन्न विद्वानों द्वारा अद्यावधि जो अनेक श्रमसाध्य कार्य हुए हैं, वे भी अन्तिम सत्य तक पहुँचानेवाले नहीं हैं। प्रायः सभी शोधकों और पाठालोचकों ने स्वीकार किया है कि कबीर का साहित्य यही है अथवा इतना ही है, इसे अंतिम सत्य के रूप में नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः कबीर-जैसे रमते साधुओं के सम्बन्ध में इस प्रकार का अन्तिम निर्णय लिया भी नहीं जा सकता। उन्होंने काव्य-रचना का कोई निश्चित संकल्प लेकर लिखना नहीं प्रारम्भ किया था। उन्होंने प्रबन्ध-काव्य जैसी कोई वस्तु भी नहीं लिखी। अतएव प्रस्तुत संग्रह तैयार करते समय कबीर-साहित्य की प्रामाणिकता, रचना-क्रम, पाठ तथा भाषा सम्बन्धी अनेक समस्याएँ आयीं, क्योंकि इन सब पर विचार किये बिना उनकी व्याख्या करने का कोई अर्थ ही नहीं होता। इस संग्रह में प्रयत्न किया गया है कि कबीर की लगभग सभी प्रामाणिक एवं मान्य रचनाएँ स्वीकृत पाठ के साथ सम्मिलित कर ली जायँ। जैसा कि ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो चुका है, रमैनी, पद और साखी कबीर की प्रामाणिक रचनाएँ मानी जाती हैं। अतएव हमने प्रस्तुत संस्करण में इन्हीं तीनों को स्थान दिया है।

क्रम-निर्धारण

इस सम्बन्ध में पहली समस्या क्रम-निर्धारण की आयी। कबीर ने पहले रमैनी की रचना की या साखी अथवा शब्द की, इसका निर्णय सर्वथा असम्भव है। सम्भवतः कबीर ने किसी एक क्रम से इनकी रचना की भी नहीं होगी। वे समय-समय पर अपने विचार प्रकट करते रहे होंगे और उनके शिष्य अपनी सुविधानुसार उसे लिपिबद्ध कर लेते होंगे, इसीलिए कबीर-वाणी के जितने संस्करण उपलब्ध हैं, उनमें रचनाओं के समान-क्रम का अभाव है। इस उलझन का संकेत करते हुए डॉ० पारसनाथ तिवारी

ने लिखा है कि "दा १, दा २ तथा दा ३ में पहले साखियाँ आती हैं, तत्पश्चात् पद और रमैनियाँ। दा ४ में पहले पद आते हैं, तत्पश्चात् रमैनियाँ और अन्त में साखियाँ। नि० में साखियों के पश्चात् पहले रमैनियाँ आती हैं, तत्पश्चात् पद आते हैं। गु० में पहले पद आते हैं, तत्पश्चात् साखियाँ। 'बावन अखरी' की रमैनियाँ पदों के बीच में ही गौड़ी राग के अन्तर्गत आ जाती हैं। बीजक में पहले रमैनियाँ आती हैं, तत्पश्चात् पद और अंत में साखियाँ मिलती हैं।"[1] डॉ० तिवारी ने इन विभिन्न प्रकार के उपलब्ध-क्रमों का उल्लेख करते हुए अपने संग्रह में सर्वप्रथम पदों, तत्पश्चात् रमैनियों और अन्त में साखियों को स्थान दिया है। इसके पूर्व बाबू श्यामसुन्दरदास ने अपने संग्रह में सर्वप्रथम साखियों, तत्पश्चात् पदों और अन्त में रमैनियों को स्थान दिया था। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने भी बाबू साहब के क्रम को ही अपनाया है। प्रस्तुत संग्रह में रमैनियों को प्रथम स्थान दिया गया है, क्योंकि रमैनियों को कबीर की आदि-वाणी माना गया है, कबीरपन्थियों में 'बीजक' ही सर्वमान्य ग्रन्थ है, उसी का पाठ भी किया जाता है। 'बीजक' में भी रमैनियाँ पहले रखी गयी हैं। रमैनियों के बाद लोक-प्रियता और कबीर-दर्शन तथा काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से दूसरा स्थान साखियों का है। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ में क्रम से दूसरा स्थान साखियों को दिया गया है और अन्त में पदों को रखा गया है।

बीजक में ८४ रमैनियाँ मान्य हैं। इनके परस्पर क्रम में बहुत थोड़ा अन्तर पाया जाता है। प्रायः रमैनियों का प्रारम्भ 'जीव रूप यक अंतर वासा' से हुआ है, वा० प्रति में इसे दूसरे स्थान पर रखा गया है और दूसरी रमैनी 'अंतर जोति सब्द एक नारी' को सर्वप्रथम रखा गया है। बलि० वाली प्रति में प्रथम तीन रमैनियों के चरण परस्पर इधर-उधर हो गये हैं। इसी प्रकार अन्य प्रतियों की २९ नं० की रमैनी, ब०, ख० की प्रतियों में नं० ३१ पर आयी है। उनमें इसके स्थान पर जो रमैनी आयी है, वह अन्य प्रतियों में ३८ नं० पर रखी गयी है। इस प्रकार कुल मिलाकर चार-पाँच रमैनियों के क्रम में ही अन्तर है, अन्यथा सभी प्रतियों में लगभग समान क्रम अपनाया गया है। रमैनियों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें एक व्यवस्थित विचार-धारा मिलती है। अतः विचारों की अविच्छिन्नता को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत संग्रह में रमैनियों का क्रम निर्धारित करके उन्हें प्रकरणों में विभक्त कर दिया गया है।

साखियों और पदों की संख्या और क्रम में अत्यधिक अन्तर मिलता है। लगभग सभी संस्करणों में उनकी संख्या तथा क्रम एक-दूसरे से भिन्न हैं। साखियों की संख्या २९७ से लेकर ४५०० तक मिलती है, इसी प्रकार पदों की संख्या ११२ से लेकर १६०० तक उपलब्ध है। बाबू श्यामसुन्दरदास ने ८०९, डॉ० पारसनाथ तिवारी ने ७४४ तथा डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने ८१० साखियों को प्रामाणिक माना है। इसी

१. कबीर-ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० २७४।

प्रकार बाबू श्यामसुन्दरदास ने ४०३, डॉ० पारसनाथ तिवारी ने २०० और डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने ४२२ पदों को अपने संग्रहों में स्थान दिया है। प्रस्तुत संग्रह में प्रायः बाबू श्यामसुन्दरदास द्वारा स्वीकृत साखियों और पदों को स्थान दिया गया है और उनका क्रम भी वही रखा गया है।

पाठ-निर्धारण

कबीर की रचनाओं के सम्बन्ध में सबसे बड़ी समस्या पाठ-निर्धारण की है, क्योंकि प्रथमतः कबीर ने उनको स्वयं लिपिबद्ध नहीं किया था, दूसरे उन्हें छन्दशास्त्र का भी ज्ञान नहीं था। अतएव उनकी रचनाओं में भाषा वैविध्य के साथ ही छन्द-दोष भी पाया जाता है। वस्तुतः कबीर की वाणी का संकलन उनके शिष्यों द्वारा उन्हीं के समय से प्रारम्भ हो गया था। ये शिष्य विभिन्न प्रान्तों के और अनेक बोलियों तथा भाषाओं के क्षेत्र के थे। वे प्रायः कम पढ़े-लिखे भी थे। अतएव उनके द्वारा कण्ठस्थ छन्दों को जब लिपिबद्ध किया गया तो स्वभावतः उनके संस्कारवश भाषा-भेद तथा छन्द-दोष आ गये। इसके अतिरिक्त स्वयं कबीर किसी एक भाषा के पण्डित नहीं थे। वे भ्रमणशील और बहुश्रुत व्यक्ति थे। राजस्थान, पंजाब और गुजरात से होकर बंगाल तक फैली कबीर की गद्दियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि उन्होंने लगभग पूरे उत्तर भारत की यात्रा की थी। इस अवसर पर वे विभिन्न भाषा-भाषी व्यक्तियों के सम्पर्क में आते रहे होंगे। अतएव उनकी वाणी में अनेक बोलियों तथा भाषाओं के शब्दों का सम्मिश्रण स्वाभाविक ही कहा जायगा।

वर्तमान समय में कबीर का जो साहित्य उपलब्ध है, वह प्रायः तीन स्रोतों से प्राप्त हुआ है—राजस्थानी परम्परा, पंजाबी परम्परा और पूर्वी परम्परा। बाबू श्यामसुन्दर दास की 'कबीर ग्रन्थावली' की भाषा में पंजाबीपन अधिक है। इसका कारण यह है कि बाबू साहब ने जिन दो हस्तलिखित प्रतियों तथा ग्रंथ साहिब के आधार पर ग्रन्थ का सम्पादन किया है, वे पंजाबी प्रभावापन्न थीं। उन्होंने स्वयं लिखा है कि "ग्रन्थ साहिब में कबीरदास जी की वाणी का जो संग्रह किया गया है, उसमें जो पंजाबीपन देख पड़ता है, उसका कारण तो स्पष्ट रूप से समझ में आ सकता है, पर मूल भाग में अथवा दोनों हस्तलिखित प्रतियों में जो पंजाबीपन देख पड़ता है, उसका कुछ कारण समझ में नहीं आता। या तो यह लिपिकर्त्ता की कृपा का फल है अथवा पंजाबी साधुओं की संगति का प्रभाव है।"[१] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि बाबू साहब ने जिन प्रतियों के आधार पर पाठ निर्धारित किया है, उनकी भाषा को वे प्रामाणिक या कबीर कृत नहीं मानते। किन्तु अन्य प्रतियों के अभाव में उन्हें विवश होकर उक्त पाठ देना पड़ा है।

भाषा

विगत वर्षों में कबीर की भाषा पर विभिन्न विद्वानों द्वारा जो विचार व्यक्त किये

१. कबीर ग्रन्थावली, भूमिका, पृ० ४-५।

गये हैं, उनसे प्रायः दो प्रकार के निष्कर्ष सामने आये हैं। कुछ लोगों ने कबीर के नाथपन्थी और मुस्लिम संस्कार के आधार पर उन्हें खड़ी बोली के उस रूप का कवि माना है जो अमीर खुसरो, वली, दक्खिनी हिन्दी तथा राजस्थानी कवियों की रचनाओं में पायी जाती है, दूसरी ओर अन्य लोग कबीर के काशीवासी होने के कारण उनकी भाषा को भोजपुरी या पूर्वी मानते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी तथा डॉ० उदयनारायण तिवारी कबीर को भोजपुरी का कवि मानने के पक्ष में हैं।[१] आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र का कहना है कि "साखियों की भाषा में खड़ी का जितना अधिक व्यवहार मिलता है, उतना सबदी में नहीं। उसमें ब्रजी के शब्द कुछ अधिक मिलते हैं। रमैनी में पूर्वी रूप बराबर दिखाई देते हैं; जैसे—कोई-कोई या कोऊ-कोऊ के स्थान पर केऊ-केऊ। इस प्रकार विचार करने से यह कहा जा सकता है कि कबीर की तीन प्रकार की कृतियों में स्थूल रूप से हिन्दी की तीन उपभाषाओं की स्पष्ट और निश्चित प्रवृत्ति मिल जाती है।"[२] इस प्रकार मिश्र जी 'साखी में खड़ी, सबदी में ब्रजी और रमैनी में अवधी या पूर्वी' रूप देखकर मात्रा-भेद से उनकी रचनाओं को तीन भाषा या बोली वर्गों में विभक्त करने के पक्ष में प्रतीत होते हैं।

वस्तुतः कबीर की भाषा के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय टेढ़ी खीर है। अनुमान के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि यतः कबीर के जीवन का अधिकांश काशी में बीता, उनके भाषागत संस्कार अध्ययन की अपेक्षा श्रवण से बने, उन्होंने विभिन्न स्थानों की यात्रा की तथा अनेक प्रकार के साधु-सन्तों के सम्पर्क में आये, अतः उनकी भाषा का मूल आधार 'पूर्वी' रहा होगा, जिसमें अन्य बोलियों और भाषाओं के लोक-प्रचलित शब्द अनायास ही आ गये होंगे।

प्रस्तुत संग्रह के पाठ-निर्धारण में उपर्युक्त भाषा-नीति को ही आधार बनाया गया है। इसके अतिरिक्त इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि पाठ में छन्द-दोष न्यूनातिन्यून रहे तथा अर्थ में भी संगति बनी रहे। रमैनी के जो विभिन्न संस्करण उपलब्ध हैं, उनमें भाषा-सम्बन्धी विशेष अन्तर नहीं पाया जाता है। लगभग सभी 'बीजकों' की भाषा एक क्षेत्र की है। अ० ख० के पाठ लगभग एक-जैसे हैं, बलि० के पाठ में भोजपुरी का प्रभाव अधिक दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त उसमें 'राम-नाम' के स्थान पर प्रायः 'सत्यनाम' कर दिया गया है। छ० प्रति में छन्द-दोष अधिक विद्यमान है। बा०, बं० प्रतियों में शब्दों के संस्कृतीकरण की प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती है। रमैनी के पाठालोचन में डॉ० शुकदेव सिंह का कार्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, किन्तु उन्होंने भी भगताही पाठ को अधिक प्रामाणिक एवं प्राचीन मानकर पाठ स्थिर करते समय उसी को आधार बनाया है। हमारी दृष्टि में उक्त पाठ

---

१. कबीर बीजक, डॉ० शुकदेव सिंह, भूमिका, पृ०-४३-४४।

२. हिन्दी-साहित्य का अतीत (भाग १), पृ० १५२।

में भी कई त्रुटियाँ दिखाई पड़ीं। अतएव उसको भी अन्तिम सत्य के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है। कुछ उदाहरणों से हमारी बात स्पष्ट हो जायगी :—

डॉ० शुकदेव सिंह की प्रति का पाठ — प्रस्तुत पाठ

(१) तिनि पुनि रचल खण्ड ब्रह्मण्डा--तिन्ह पुनि रचल पिण्ड ब्रह्मण्डा। (२।५)
(२) ई ले ऊ व्यवहार—ई ल्यऊ व्यवहार। (दूसरी रमैनी की साखी)
(३) धर्ती अकास दुइ गाड़ खोदाया—महि अकास दुइ गाड़ खँदाया। (२८।२)
(४) चाँद सूर्य दुइ नारी बनाया—चाँद सुरुज दुइ नरी बनाया। (२८।२)
(५) सहस्र तार ले पूरन पूरी—सहसतार लै पूरिन पूरी। (२८।३)
(६) कहहिं कबीर कर्म ते जोरी—कहहिं कबीर करम सों जोरी। (२८।४)
(७) छठये मांह सभ गैल बिगोई—छठये मा सभ गैल बिगोई। (३७।३)
(८) वैसे शब्द बतावे जीव को—सब्द बतावै जीव को। (३७ वीं साखी)
(९) करमत सो जग भो औतरिया, कर्म तो सो जो भव औतरिया,
करमत सो निजाम को धरिया। कर्म तो सो जो निमाज को धरिया।
(३९।३)
(१०) हमरे कहल दुष्ट वहु भाई—हमरहि कहै छूटिहौ भाई। (४२।६)
(११) हवीव औ नबी के कामा—नबी हबीबी के जो कामा। (४८।५)
(१२) दिया नखत तन कीन्ह पयाना—दिया खताना किया पयाना।
(६६—साखी)
(१३) सुख को ले सन सपनेहु पावै—सुख को लेस न सपनेहु पावे। (८४।५)

इसी प्रकार डॉ० शुकदेव सिंह की प्रति में ६१ वीं रमैनी की दूसरी पंक्ति और ७५ वीं रमैनी की दूसरी पंक्ति छूट गयी है। प्रस्तुत संस्करण में इस प्रकार की त्रुटियों से सावधान रहते हुए, अधिक प्रामाणिक एवं शुद्ध पाठ देने की चेष्टा की गयी है।

साखियों और पदों में पंजाबी अथवा राजस्थानी के अधिक प्रयोग असंगत प्रतीत होते हैं। यह कबीर की स्वाभाविक भाषा नहीं हो सकती। अतएव इनके पाठ-निर्धारण में प्रयत्न किया गया है कि जहाँ तक सम्भव हो, रमैनियों के समान इनकी भाषा में भी एकरूपता लायी जाय और कबीर-वाणी के मूल अथवा निकट से निकट पहुँचा जा सके।

भावार्थबोधिनी व्याख्या

प्रस्तुत कार्य का विशेष प्रयोजन कबीर-साहित्यकी एक ऐसी प्रामाणिक एवं स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत करना रहा है, जो कबीर की साधना और सिद्धान्त के स्पष्टीकरण के साथ उसके साहित्यिक वैशिष्ट्य को भी उद्घाटित कर सके। आधुनिक विद्वान् टीका-व्याख्या लिखना अधिक सम्मानजनक नहीं मानते। प्रायः मूल कृति के अध्ययन के बिना ही बड़े-बड़े मोटे समीक्षात्मक ग्रन्थ तैयार कर दिये जाते हैं। इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ है कि आज के छात्र कवि की रचना से अपरिचित ही रह जाते हैं।

आलोचनात्मक ग्रन्थों के अध्ययन से तलोपरिक ज्ञानोपार्जन द्वारा ही उन्हें सन्तोष करना पड़ता है। संस्कृत में टीका-भाष्य आदि लिखने की लम्बी परम्परा मिलती है और अनेक टीकाकार या भाष्यकार मूल लेखक से भी अधिक ख्यातिलब्ध हो गये हैं। हिन्दी में लाला भगवानदीन सदृश कुछ विद्वानों ने ही इस दिशा में रुचि ली।

कबीर का साहित्य सीधा-सरल नहीं है। उसमें एक साधक-चित की अनुभूति की गहराई है। कवि ने जिस अनिर्वचनीय परमतत्त्व को वाणी का विषय बनाया है, उसकी अभिव्यक्ति अभिधा द्वारा सम्भव नहीं। अतः उसने प्रतीकों का सहारा लिया है अथवा ध्वनि या व्यञ्जना के द्वारा उस परमानन्द का संकेत किया है। इसीलिए उनकी वाणी प्रायः अटपटी या उल्टी लगती है। उनके काव्य में निहित प्रतीकों या ध्वन्यार्थ को समझे बिना, भावों की गहराई तक पहुँचना अत्यन्त कठिन है। इसके अतिरिक्त कबीर के पहले नाथ-योगियों, बौद्ध सिद्धों तथा अन्य साधना-सम्प्रदायों की लम्बी परम्परा थी। अनेक पारिभाषिक शब्द इन सम्प्रदायों में परम्परा से प्रयुक्त होते चले आ रहे थे। कबीर ने अपनी बात स्पष्ट करने के लिए ऐसे अनेक शब्दों को ग्रहण किया है। किन्तु यहाँ उनका अर्थ ठीक वही नहीं रह गया है, जो परम्परा से मान्य है। कबीर ने उन्हें नयी अर्थवत्ता से भास्वर कर दिया है। अतएव कबीर को समझने के लिए विशिष्ट शब्दों की परम्परा और पृष्ठभूमि से अवगत होना आवश्यक है।

कबीर-वाणी पर अर्थ या व्याख्या की दृष्टि से दो क्षेत्रों में कार्य हुए हैं। 'बीजक' अथवा रमैनियों की टीका प्रायः कबीरपन्थी साधुओं द्वारा की गयी है और साखियों तथा पदों की व्याख्या साहित्यिक विद्वानों द्वारा। ये टीकाएँ प्रायः एकांगी प्रतीत होती हैं। कबीरपन्थी साधु काव्य-गुणों से अपरिचित रहे ही हैं, पूर्वाग्रह अथवा पन्थाग्रह से भी ग्रस्त रहे हैं। फलतः उनके द्वारा लिखी गयी टीकाएँ साहित्य के विद्यार्थी के लिए अनुपयोगी हैं। अभी तक हमारे देखने में जो टीकाएँ आयीं, वे सन्तोषजनक नहीं प्रतीत हुईं। कहीं-कहीं तो एक ही रमैनी की दो-दो, तीन-तीन विचारों के आधार पर व्याख्या लिखी गयी है, जिनमें पूर्वापर सामञ्जस्य नहीं दिखलाई देता। इसी प्रकार साखी आदि की व्याख्या में भी बहुत असमञ्जसता दिखाई पड़ी। कबीर की वाणी की सर्व-सम्मत व्याख्या तो प्रायः सम्भव नहीं है, किन्तु उनकी वाणी सही परिप्रेक्ष्य में समझी जा सके, इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु यह प्रयत्न किया गया है। प्रस्तुत अर्थ करने में यह दृष्टि रही है कि पूर्वापर सामञ्जस्य बना रहे और कबीर को साधक और कवि के रूप में वास्तविक सन्दर्भ में समझा जा सके। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए 'कबीर-वाङ्मय' की सुविस्तृत भावार्थबोधिनी व्याख्या एवं उनके साहित्य, पन्थ, दर्शन और साधना की प्रामाणिक समीक्षा की योजना बनी। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी विशाल एवं महत्त्वपूर्ण योजना का प्रथम खण्ड है। दूसरे खण्ड में 'साखी' और तीसरे खण्ड में 'सबद' की व्याख्या प्रामाणिक पाठ के साथ प्रस्तुत की जायेगी। चौथे और पाँचवे

खण्ड में क्रमशः कबीर की जीवनी, साहित्य, दार्शनिक सिद्धान्त और साधना-सम्बन्धी विवेचन रहेगा और छटा खण्ड 'कबीर कोश' का होगा। इस ग्रन्थ में आत्मा शब्द सर्वत्र पुलिङ्ग में प्रयुक्त हुआ है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के संग्रह-सम्पादन एवं लेखन में जिन कृतियों का सहारा लिया गया है, उनके लेखकों के प्रति हम हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं। विश्वविद्यालय प्रकाशन के संचालक श्री पुरुषोत्तमदास मोदी के हम विशेष रूप से अनुगृहीत हैं, जिन्होंने कागज के संकट एवं अभाव की समस्या का समाधान करते हुए बड़ी लगन एवं तत्परता से 'कबीर वाङ्मय' को प्रकाशित करने की उदारता दिखायी है।

अप्रैल, १९७४

जयदेव सिंह
वासुदेव सिंह

संकेत-विवृति

(१) अ० = अरबी।
(२) आ० अ० = आध्यात्मिक अर्थ।
(३) ख० = सद्गुरु कबीर साहेब कृत बीजक—खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना।
(४) छ० = मूल बीजक—श्री १०८ गोंसाईं श्री भगवान साहब का पाठ, मानसर, दाउदपुर, छपरा; सन् १९३७।
(५) प्र० अ० = प्रतीकात्मक अर्थ।
(६) फा० = फारसी।
(७) ब० = कबीर साहब का बीजक—मोतीदास चेतनदास, कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा; सन् १९३९।
(८) बना० = बीजक मूल—प्र०–साधु लखनदास जी तथा साधु श्री रामफलदास जी, नेशनल प्रेस, बनारस कैण्ट; सन् १९३१।
(९) बं० = कबीर साहब का बीजक (रीवाँ-नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह कृत पाषण्ड खण्डिनी टीका सहित, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई; सं० १९६१।
(१०) बा० = कबीर बीजक—सं० हंसदास शास्त्री, कबीर-ग्रन्थ प्रकाशन-समिति, बाराबंकी।
(११) बलि० = बीजक-भाष्य—सदाफलदेवजी, मुक्ति-पुस्तकालय, पकड़ी, बलिया; सं० २०१३।
(१२) ला० = कबीर बीजक—मुंशी शिवव्रत लाल द्वारा उर्दू में सम्पादित–लाहौर।
(१३) ला० अ० = लाक्षणिक अर्थ।
(१४) वि० = बीजक—विचारदास–प्र० रामनारायण लाल, इलाहाबाद; १९२८।
(१५) शु० = कबीर बीजक—डॉ० शुकदेव सिंह, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद; सन् १९७२।
(१६) सं० = संस्कृत।

———

क्रम

रमैनी

सृष्टि-प्रकरण

१*

जीव रूप यक[1] अन्तर-वासा, अन्तर ज्योति[2] कीन्ह परगासा[3]।
इच्छा रूप नारि अवतरी, तासु नाम गायत्री[4] धरी।
तेहि[5] नारि के पुत्र तिन[6] भयऊ[7], ब्रह्मा विष्णु[8] महेश[9] नाम धरेऊ।
तब[10] ब्रह्मा पूछल महतारी, को[11] तोर पुरुष काकरि[12] तुम नारी।
तुम[13] हम हम तुम और न कोई, तुम[14] मोर पुरुष हमैं[15] तोरि जोई॥

साखी—बाप पूत की एकै नारी, ओ[16] एकै माय विआय।
ऐसा पूत सपूत न देख्यो[17], जो[18] बापै[19] चीन्है धाय॥

शब्दार्थ—इच्छा = प्रभु की प्रथम शक्ति 'इच्छा' है। सर्वव्यापी चैतन्य से इच्छा-रूपी माया का आविर्भाव हुआ, महामाया। यक = एक अखण्ड, देश-काल-भेद से रहित। अन्तर = अन्तस्। ज्योति = प्रकाश। जोई = स्त्री, जाया। गायत्री = 'गातारं त्रायते इति गायत्री'—जो गान (उपासना) करने वाले की रक्षा करे। बाप = प्रतीकार्थ ब्रह्म। पूत = (प्र० अ०) जीव।

व्याख्या—प्रस्तुत रमैनी की प्रथम पंक्ति में 'यक' शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसका भाव है—एक, अखण्ड, देश-काल के भेद से रहित पारमार्थिक ज्योति। यही ज्योति जीव रूप के भीतर भी वास करती है (अन्तरवासा)। सबके भीतर वही ज्योति प्रकाशमान है। उपनिषद् का ब्रह्म के विषय में यह कहना है—'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' अर्थात् जीव की सृष्टि करके वह उसमें प्रवेश कर गया।

उस परम ज्योति की इच्छा नारीरूप से अवतरित है। 'नारी' कहने का तात्पर्य यह है कि उसी से सब सृष्टि होती है। 'नारी' शब्द 'नृ' धातु से निष्पन्न हुआ है—'नृणाति नयति संसृतिम् इति नारी' अर्थात् जो संसृति का नयन करती है, वह है नारी। शांकर मत के अनुसार ब्रह्म अपनी शक्ति माया में प्रतिबिम्बित होकर जीव

---

* बाराबंकी वाली प्रति में यह दूसरी रमैनी है। पहली रमैनी 'अंतर ज्योति……संसार' है।

१. बा०, ब०, ख०, बलि०-एक; २. बा०-जोति, ब०-जोती, ख०-ज्योती; ३. बलि०-प्रकाशा; ४. बा०-गाइत्री; ५. ब०-तिहि नारि, ख०-तिहि नारी; ६. बा०-तीनि; ७. बा०-भैऊ, ब०, ख०-भाऊ; ८. बा०-बिष्नु; ९. बा०-महेसुर नाऊँ, ब०-महेश्वर नाऊ, ख०-महेश्वर नाऊ; १०. बा०-फिरि; ११. बा०, ब०, ख०-के; १२. बा०-केकरि, ब०-तुं केकर, ख०-केकर तुम; १३. बा०, ब०, ख०-हम तुम तुम हम; १४. बा०, ब०, ख०-तुमहि; १५. बा०-हमही तोर; १६. अन्य प्रतियों में 'औ' नहीं है; १७. बा०, ब०, ख०-देखा; १८. ब०, ख० में 'जो' नहीं है; १९. बा०-बापहि।

बनता है और इसी माया से अनादि काल से जीव होते रहते हैं। कश्मीरी शैव-दर्शन के अनुसार इच्छा उसकी शक्ति है। माया उसके स्वातन्त्र्य से होती है। इच्छा ही उसका स्वातन्त्र्य है। उस स्वातन्त्र्य द्वारा ही जान-बूझकर शिव जीवरूप धारण करता है। वस्तुतः परम शिव और उसका स्वातन्त्र्य-इच्छा एक ही हैं। किन्तु इच्छा से सृष्टि प्रारम्भ होती है, जो कि धीरे-धीरे परिमितता की ओर प्रवृत्त होती रहती है और मानव आदि व्यष्टि जीवों तक आते-आते बहुत ही परिमित हो जाती है। यह इच्छा ही शुद्ध विद्या के अनन्तर माया का रूप धारण कर लेती है, जिसके कारण भेद और परिमितता की अभिव्यक्ति होती है। शांकर-वेदान्त के अनुसार निर्गुण ब्रह्म माया से उपहित होकर सगुण कहलाता है। आचार्य शंकर मायोपहित चैतन्य को 'ईश्वर' कहते हैं। माया के ही द्वारा सृष्टि होती है। वहाँ इच्छा का उल्लेख नहीं है।

कबीर ने इच्छा को 'गायत्री' कहा है। 'गायत्री' का अर्थ है—गान या उपासना करने वाले की रक्षा करने वाली—गातारं त्रायते इति गायत्री। गायत्री शब्दरूप है और कबीर के मत से शब्द से सृष्टि हुई है। इसीलिए इच्छा का नाम गायत्री है। चेतन की इच्छा से इच्छारूपी नारी की उत्पत्ति तथा उसके गायत्री नाम का उल्लेख देवी भागवत में भी मिलता है :—

'एषा भगवती देवी सर्वेषां कारणं हि नः। महाविद्या महामाया पूर्णा प्रकृतिरव्यया। दुर्ज्ञेयाऽल्पधियां देवी योगगम्या दुराशया। इच्छा परात्मनः कामं नित्याऽनित्य-स्वरूपिणी॥'

(ब्रह्माजी कहते हैं कि हे नारद ! यह भगवती देवी हम सबके कारण महाविद्या, महामाया, अव्यय, व्यापक प्रकृतिरूप है। यह अल्पबुद्धिवालों के लिए अगम्य है। यह केवल योग के द्वारा जानी जा सकती है। यह परमात्मा की इच्छा है। चेतनरूप से नित्य है और प्रकृति रूप से अनित्य।)

'गायत्र्यसि प्रथम वेदकला त्वमेव स्वाहा स्वधा भगवती सगुणार्धमात्रा।'

(प्रथम वेद की कलारूप गायत्री तू ही है। स्वाहा, स्वधा, सगुण अर्धमात्रा भी तू ही है।)

उपनिषदों के अनुसार सृष्टि से प्रथम आत्मा ही अकेला था। अन्य कुछ नहीं था। उसने इच्छा की कि सृष्टि करूँ और तब सृष्टि हुई—आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत् किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजां इति (ऐ० उ० १-१-१)। सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् (छा० ६-१-१)। बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत (छा०-६, २, ३)। स्कन्दपुराण (अध्याय ३, श्लोक ३, ४, ५) में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है।

इच्छारूप नारी के तीन पुत्र हुए अर्थात् इच्छा के तीन रूप हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश। सृष्टि, स्थिति और संहार उनके कार्य हैं।

ब्रह्मा ने माँ से पूछा कि तुम्हारा पति कौन है और तुम किसकी पत्नी हो ? माँ ने उत्तर दिया—'मैं तुम' दोनों एक हैं। तुम ही मेरे पति हो और मैं तुम्हारी पत्नी हूँ।

साखी—बाप-बेटे की पत्नी एक ही है। एक ही माँ के सभी पुत्र हैं। पिता को पहचानने वाले पुत्र विरले ही होते हैं। इस कथन का तात्पर्य यह है कि वास्तविक रूप से चेतन आत्मा एक है। देहाभिमान से स्त्री-पुरुष के भेद हो जाते हैं। चेतन पुरुष है। जिससे सृष्टि होती है वह उसका स्वातन्त्र्य, इच्छा, माया या नारी है।

शैवागम के अनुसार परम चैतन्य की तीन शक्तियाँ हैं—इच्छा, ज्ञान, क्रिया। चेतन पहले इच्छा करता है, तब ज्ञान होता है और अन्त में क्रिया। मनुष्य में पहले ज्ञान होता है, तब इच्छा और अन्त में क्रिया।

'माता' और 'माया' दोनों में एक ही धातु है—मा। 'माता' का अर्थ है—गर्भ में माप (निर्माण) करके बाहर फेंक देने वाली और 'माया' भी वह शक्ति है जो माप या निर्माण करती है—मीयते अनया इति माया।

माया पत्नी भी है और माता भी। इसके दो अर्थ निकलते हैं—(१) कारण रूप माया ईश्वर के प्राकट्य में सहायक होती है और कार्यरूप माया जीव की सृष्टि में सहायक बनती है। परन्तु कार्य-कारण में कोई भेद नहीं है। इसीलिए पितारूप ईश्वर और पुत्ररूप जीव दोनों की एक ही नारी हुई। (२) ईश्वर माया में कर्म-बीज का वपन करता है और जीव उसी से भोग पाता है। इसीलिए माया दोनों की नारी है।

दूसरी व्याख्या अधिक संगत है।

टिप्पणी (१) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"सृष्टि को पैदा करने के लिए कालपुरुष (निरंजन) ने आद्याशक्ति या माया को उत्पन्न किया और उसके संयोग से सत्त्व-प्रधान ब्रह्मा, रजोगुण-प्रधान विष्णु और तमोगुण-प्रधान शिव की सृष्टि की। ज्यों ही ये तीन देवता उत्पन्न हुए, वह अन्तर्धान होकर अपने लोक में चला गया। जाती बार माया से कहता गया कि इन पुत्रों को मेरा पता मत बताना। सो, इन्होंने बाद में जब आद्याशक्ति वा माया से पूछा कि तू कौन है, तेरा पति कौन है, हम लोग कौन हैं और हमारे पिता कौन हैं, तो माया ने जवाब दिया कि वही उनकी पिता है, वही माता और वही पत्नी भी।" —(कबीर, पृ० ५५)

(२) कुछ विद्वानों ने 'जीव' शब्द के कारण यह अर्थ लिया है कि जीव में त्रिगुणात्मिका इच्छा उत्पन्न होती है और वही सब सृष्टि का कारण है। किन्तु यह अर्थ मान्य नहीं प्रतीत होता, क्योंकि उस 'इच्छा' के सम्बन्ध में आगे स्वयं कबीर कहते हैं कि उस इच्छारूपी नारी के तीन पुत्र हुए—ब्रह्मा, विष्णु और महेश। यह कोई नहीं मानता कि जीव की इच्छा से ब्रह्मा, विष्णु, महेश पैदा होते हैं। कबीर ने जो 'जीव रूप यक अन्तर वासा' कहा है, उसका अभिप्राय यह है कि एक परम ज्योति है और वही ज्योति जिसके अन्तर में विद्यमान रहती है, वह जीवरूप होता है। अतः इच्छा उसी परम ज्योति की है, न कि जीव की।

२

अन्तर जोति[1] सब्द[2] यक नारी, हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी।
ते तिरिये[3] भग लिंग अनन्ता, तेऊ न जानें[4] आदि[5] औ अंता।
वाखरि[6] एक विधातैं[7] कीन्हा, चौदह ठहर पाट[8] सो लीन्हा।
हरिहर ब्रह्मा[9] महतो नाऊँ, तिन्ह[10] पुनि तीनि[11] बसावल गाऊँ।
तिन्ह[12] पुनि रचल पिंड[13] ब्रह्मंडा, छव[14] दरसन छानवे पाषंडा।
पेटे[15] न काहू[16] वेद पढ़ाया, सुनति[17] कराय तुरुक नहिं आया।
नारी मोचित गर्भ प्रसूती, स्वाँग धरै बहुतै[18] करतूती।
तहिया हम तुम एकै लोहू, एकै प्रान[19] वियापै मोहू।
एकै[20] जनी जना संसारा, कौन ग्यान तें[21] भयो निनारा।
भौ[22] बालक भग द्वारे आया, भग भोगे[23] ते पुरुष कहाया।
अविगत की गति काहु न जानी, एक जीभि कत कहउँ बखानी।
जौं[24] मुख होय जीभि दस लाखा, तौ कोइ आय महंतो भाखा॥
साखी—कहहिं कबीर पुकारि के, ई लयऊ[25] व्यौहार।
राम[26] नाम जाने बिना, भव[27] बूड़ि मुवा संसार॥

शब्दार्थ—अन्तर-ज्योति = चैतन्य। नारी = प्र. अ. माया। तिरिये = तीनों से। भग = प्र. अ. स्त्री। लिंग = प्र. अ. पुरुष। बाखरि = ब्रह्माण्ड, मकान। पाट = पाटना, बनाना। महतो = महान्। तीन गाँव = त्रैलोक्य (ब्रह्मलोक, शिवलोक, विष्णुलोक अथवा भूः, भुवः, स्वर् (स्वः) लोक)। छव दरसन = षट् दर्शन, (i) जोगी, जंगम, शेवड़ा, संन्यासी, दरवेश, ब्राह्मण। (ii) न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, सांख्य, योग। छानवे पाषंडा = १२ योगी, १८ जंगम, २४ शेवड़ा, १० संन्यासी, १४ दरवेश, १८ ब्राह्मण (कबीरपन्थी स्वामी हनुमानदास के मत से)। पिण्ड = व्यष्टि। ब्रह्माण्ड = समष्टि, १४ भुवनों का समूह। हरि = हरति दुःखानि इति हरिः। हर = हरति प्रलयेन

---

१. वं०-ज्योति; २. वं०, व०, ख०-शब्द, बलि०-शब्द से प्रगट पुरुष एक नारी; ३. ख०-तिरांये; ४. व०, ख०-जानल, बं-जानै; ५. वं०, व०, ख०-आदिउ (बलि० वाली प्रति में चौथी पंक्ति इस प्रकार है—ते तिरिया भग लिंग अनंता, कोई न जाने आदि औ अंता।); ६ वं०-वाखरी (बलि० वाली प्रति की तीसरी रमैनी की दूसरी पंक्ति इस प्रकार है—बाखरि एक विधाते कीन्हा, चौदह ठहर पाट सो लीन्हा।); ७ व०, ख०-विधाते; ८. वं-पाटि, व०, ख०-पाठ; ९. वं०-ब्रह्म महंतौ (बलि० वाली प्रति में यह पंक्ति नहीं है।); १०. वं०-ते, ब०-तिन; ११ व०, ख०-तीन; १२. वं०-ते पुनि रचिनि (बलि० वाली प्रति में तीसरी रमैनी की तीसरी पंक्ति—'तिन पुनि रचल पंथ अण्ड बण्डा।' इसके बाद तीसरी रमैनी में ही शेष रमैनी है।); १३. बा०-खण्ड; १४ वं०-छा दर्शन व०, ख०-छौ दर्शन; १५. व०, व० पेटहिं; १६. वं०, व०, ख०-काहु न; १७. ब०, ख०-सुनत; १८. व०, ख०, बलि०-धरे बहुते; १९. वं-प्राण वियापल; २०. बा०-एकहिं जननी; २१. व०, ख०-ते भयउ न्यारा; २२. वं भा; २३. व०,ख०, बलि०-भग भोगी के; २४. अन्य प्रतियों में—जो; २५. बा० लेऊ, व०, ख०-बैली; २६. बलि०-सत्यनाम; २७. व०, ख०, बलि०-'भव' नहीं है।

विश्वम् इति हरः। ब्रह्मा = बृहत्वात् ब्रह्मा। सुनति = सुन्नति, खतना। जनी = स्त्री, माया। जना = पैदा किया। भौं = हुआ, उत्पन्न। कत = कहाँ तक, कितना। अविगत = जिसके विषय में कुछ जाना नहीं जा सकता, अनन्त, अनिर्वचनीय। ई = यह। लयऊ = लय होने वाला, नाशवान।

व्याख्या—सभी के अन्दर एक ज्योतिस्वरूप चैतन्य आत्मा है। ब्रह्म में जो स्पन्दन होता है, वह शब्द है, वही उसकी माया है, वही नारी है। ब्रह्म चैतन्य है, सत्य है, अपरिणामी है, अखण्डानन्द है। मुण्डकोपनिषद् (२।२) में चैतन्य को ज्योतियों की ज्योति कहा गया है। इसी को शैवागम में प्रकाश कहा गया है। यह प्रकाश स्पन्दात्मक है। यही स्पन्द शब्द है। यहाँ 'शब्द' का एक विशिष्ट अर्थ है। यह शब्द ध्वनि नहीं है, प्रत्युत चैतन्य का एक से अनेक की अभिव्यक्ति की इच्छा या उल्लास का स्पन्दमात्र है। इसी को सन्तों ने परशब्द, परमशब्द या सारशब्द कहा है। चैतन्य में शब्द-अर्थ एक रहते हैं। सृष्टि में दोनों अलग हो जाते हैं। योगवाशिष्ठ के अनुसार ब्रह्म स्पन्द और अस्पन्द से युक्त है—'स्पन्दास्पन्दात्मकं ब्रह्म।'

यहाँ 'शब्द' से तात्पर्य है चैतन्य की वह स्पन्दनावस्था अर्थात् सृष्टि-कल्पना जिसमें शब्द और अर्थ दोनों एक रहते हैं। इसी अवस्था को शैवागम में 'परावाक्' कहा है। शब्द या वाक् की चार अवस्थाएँ होती हैं—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। 'परा' के बाद पश्यन्ती में अर्थ दिखाई पड़ने लगता है। मध्यमा में एकता का अनुभव रहता है, किन्तु अर्थ अलग होने लगता है। वैखरी में अर्थ बिलकुल अलग हो जाता है। बाइबिल में भी कहा गया है :—

'In the begining was the 'word'. The word was with God and the 'word' was God',

इस्लाम के अनुसार खुदा ने कहा—'कुन्' (हो-अरबी) और खल्क पैदा हो गया।

कबीरदास भी कहते हैं कि ज्योति से शब्द हुआ और शब्द से नारी या माया। माया से उपहित चैतन्य से ब्रह्मा, विष्णु, महेश हुए। (यहाँ 'एक' शब्द मध्यमणिन्याय से 'जोति' और 'नारी' दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

चैतन्य ही विवर्तन (Evolution) रूप को धारण करता है और वही इस विवर्तन का अधिष्ठान भी है।)

उन तीनों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) से असंख्य स्त्री-पुरुष हुए। वे अनन्त प्राणी भी आत्मा के आदि और अन्त को जानने में असमर्थ हैं। ब्रह्मा ने एक ब्रह्माण्ड (बाखरि) बनाया, जिसमें चौदह भुवन रचे। (कुछ लोगों ने 'बाखरि' का अर्थ 'वैखरी वाणी' बताया है, जो ठीक नहीं है।) ब्रह्मा, विष्णु, महेश नामक महान् नाम वाले जनों के द्वारा तीन लोक बसाये गये। (यहाँ हरि, हर, ब्रह्मा विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। हरि = हरति इति हरिः = जो अहंकारादि दूर करता है, हर = हरति प्रलयेन विश्वम् इति

हरः = जो विश्व को अपने में समेट लेता है, ब्रह्मा = बृहत्वात् ब्रह्मा = जो प्रसार (सृष्टि) करता है।) तीन लोक—ब्रह्मलोक, शिवलोक और विष्णुलोक बताये गये हैं। लेकिन तीन लोकों के लिए 'भूः, भुवः, स्वः' अधिक ठीक प्रतीत होता है।

ब्रह्मादि ने फिर अनेक पिण्ड-ब्रह्माण्डों की रचना की, जिनमें छः दर्शन और ९६ पाषण्ड हुए। सन्त दादू की वाणी और विचारमाला में निम्नलिखित छः दर्शन बताये गये हैं—जोगी, जंगम, शेवड़ा, संन्यासी, दरवेश और ब्राह्मण :—

जोगी जंगम सेवड़े, बुध संन्यासी शेख।
दादू दर्शन राम बिन, सबै कपट के भेख॥
षट दर्शन की माल जे, अपने पक्ष लिए जु।
द्वैत रहित रुचि माल यह, शोभत सबन हिए जु॥

सन्त रामरहस्यदास ने निम्नलिखित ९६ पाषण्डों की चर्चा की है—योगी = १२, जंगम = १८, शेवड़ा = २४, संन्यासी = १०, दरवेश = १४, ब्राह्मण = १८।

जोगी जंगम सेवड़ा, संन्यासी दरवेश।
छठवाँ कहिए ब्राह्मण हि, छौ घर छौ उपदेश॥
दश संन्यासी बारह योगी, चुविस शेख बखान।
अठार ब्राह्मण अठारह जंगम, चुनिश शेवड़ा जान॥

षट् दर्शन—न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, सांख्य और योग भी हो सकते हैं और ९६ पाषण्ड अनिश्चयार्थक प्रतीत होता है। इस प्रकार इस पंक्ति का दूसरा अर्थ यह होगा—अनेक मतमतान्तर पैदा हुए। सब अपनी अलग-अलग हाँकते हैं। मुंशी शिवव्रत लाल द्वारा सम्पादित उर्दू प्रति में 'खण्ड' के स्थान पर 'पिण्ड' पाठ है, जिसका अर्थ होगा कि उसने पिण्ड अर्थात् व्यष्टि और ब्रह्माण्ड अर्थात् समष्टि दोनों का निर्माण किया। (बलिया वाली प्रति में 'ते पुनि रचल पंथ अंड बंडा' पाठ है। इसका तात्पर्य है कि अनेक मिथ्या सम्प्रदाय बने।)

गर्भ से ही न कोई वेद पढ़कर आया है और न सुन्नति कराकर आया है अर्थात् जन्म से सभी मनुष्य एक जैसे हैं। हिन्दू-मुस्लिम भेद मनुष्य-कृत एवं बनावटी हैं। नारी से पैदा होकर जीव अनेक प्रकार के वेष धारण करता है और अनेक प्रकार के कार्य करता है। वस्तुतः सभी में एक रक्त है, सभी में एक प्राण हैं और सबको मोह व्याप्त है।

संसार एक ही माया से बना है। अतः जन्म से कोई श्रेष्ठ या हीन कैसे हो जायगा? फिर भेद कैसे हुआ? सभी प्राणियों का जन्म एक प्रकार से हुआ है और स्त्री में आसक्त होने से 'पुरुष' नाम पड़ा है। कहने का तात्पर्य यह है कि समस्त भेद कर्म और वेष से हैं। आत्मा से कोई भेद नहीं है।

अविगत अर्थात् जो विशेषरूप से गत नहीं हुआ है अर्थात् नित्य। अथवा जहाँ तक हमारी विशेषरूप से पहुँच नहीं है अर्थात् अनिर्वचनीय। ब्रह्म की पूर्ण जानकारी

किसी को नहीं है। यदि किसी के मुख में दस लाख जिह्वा हों या यदि किसी के दस लाख मुख और उतनी ही जिह्वा हों तो भी कोई महान् पुरुष ही उसका कुछ वर्णन कर सकता है। एक मुख अथवा जिह्वा से उसका वर्णन सम्भव नहीं।

साखी—कबीरदास कहते हैं कि यह सांसारिक प्रपंच लय होने वाला है, नश्वर है। राम नाम के वास्तविक ज्ञान के विना लोग संसार-सागर में डूब मरते हैं।

(बड़ौदा वाली प्रति में 'ई बैली व्यौहार' है। इसका अर्थ होगा कि—यह पशुओं का अर्थात् मूर्खों का व्यवहार है।)

३

प्रथम अरंभ कौन को भैऊ,[१] दूसर प्रगट कीन्ह सो ठैऊ[२]।
प्रगटे ब्रह्मा[३] विष्नु सिव सक्ती,[४] प्रथमहिं[५] भक्ति कीन्ह जिउ उक्ती।
प्रगटे पवन[६] पानी औ छाया, बहु विस्तार[७] कै प्रगटी माया।
प्रगटे अण्ड पिण्ड ब्रह्मण्डा, प्रिथिमी[८] प्रगट कीन्ह नौं[९] खण्डा।
प्रगटे सिध[१०] साधक संन्यासी, ई सब[११] लागि रहे अविनासी।
प्रगटे सुर नर मुनि सब[१२] झारी, ताही[१३] खोज परे सब[१४] हारी॥

साखी—जीव[१५] सीव सब प्रगटे, वै[१६] ठाकुर सब दास।
कबीर[१७] और जानै नहीं, यक[१८] राम[१९] नाम की आस॥

शब्दार्थ—ठैऊ = अधिष्ठान। उक्ती = कल्पना, कहकर। छाया = तेज (छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः—अमरकोष, पृष्ठ-४२४)। विस्तार = आकाश। अण्ड = अण्डज। पिण्ड = पिण्डज। झारी = सब, समस्त। जीव = प्राणी। सीव = शिव-ब्रह्मादि नौ खण्ड = भारत, इलावृत, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य, कुश।

व्याख्या—पहली बात यह विचारणीय है कि सृष्टि के आरम्भ में कौन हुआ ? दूसरी बात यह विचारणीय है कि इनको प्रकट करने वाला अधिष्ठान कौन है ?

पहली पंक्ति में उक्त दो प्रश्न हैं। इनके उत्तर इस प्रकार हैं :—

सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु, शिव और शक्ति पैदा हुए और अपने को जीव मानकर

---

१. वं०, ब०, ख०-भाऊ; २. ब०, ख०-ठाऊँ, बलि०-ठयऊ; ३. वं०, ब०, ख०-ब्रह्म; ४. वं०, ब०, ख०-शाक्ती; ५. वं०-प्रथमै (बलि० वाली प्रति में यह पंक्ति नहीं है।); ६. ब०, ख०-पौन पानि, बलि०-पवन पानि; ७. ब०, बलि०-विस्तारक; ८. चारों प्रतियों में-पृथिवी; ९. बं; बलि०-नव; १०. ब०, ख०, बलि०-सिद्ध; ११. बा०-सब; १२. बा०-सब; १३. वं०-तेऊ, बलि०-तेहिं; १४. बा० सम; १५. वं०-जीउ सीउ, ब०, ख० जीव शीव; १६. बं०-वे, ब०-वह; १७; वं०, ब०-कबिर; १८. ब० ख० में 'यक' नहीं है। १९. बलि०-सत्य नाम।

उन लोगों ने भक्ति की। उसके पश्चात् पवन, जल, तेज और आकाश नामक तत्त्व पैदा हुए। इन तत्त्वों के रूप में माया प्रकट हुई। 'छाया' का अर्थ तेज भी होता है—सूर्यप्रियाकान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः (अमरकोष, पृ० ४२४)। अमरकोष में छाया के ये चार अर्थ दिये गये हैं। यहाँ कबीर पाँच तत्त्वों की उत्पत्ति की चर्चा कर रहे हैं। चार तत्त्व ऊपर गिनाये गये हैं, पाँचवें तत्त्व पृथ्वी का उल्लेख आगे है।

इसके बाद ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई। उससे पृथ्वी प्रकट हुई, जिसमें नव खण्ड हुए। पृथ्वी पर अण्डज, पिण्डज आदि अनेक प्रकार के जीवधारी उत्पन्न हुए।

नौ खण्डों की चर्चा जायसी ने भी की है :—

"सातौं दीप नवौं खण्ड आठौं दिसा जो आहि। जो बरम्हण्ड सो पिण्ड है, हेरत अन्त न जाहि" (अखरावट ८।९)

भारतीय दर्शन के अनुसार जो ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड में है। जो तत्त्व विश्व में परिव्याप्त है, वही तत्त्व शरीर में भी विद्यमान है। जायसी ने 'पद्मावत' में 'सिंहलद्वीप वर्णन' के प्रसंग में भी यही बात कही है :—

"नव पँवरी बाँकी नव खण्डा, नवहु जो चढ़इ जाइ ब्रह्मण्डा।"

अनेक प्रकार के सिद्ध और साधक उत्पन्न हुए। ये सब अविनाशी आत्मदेव में लगकर स्थिर हुए। सुर, नर, मुनि सबके सब पैदा होकर, उसी ब्रह्म को, अपने से दूर समझ कर, खोजने में परेशान हो रहे हैं।

साखी—इस प्रकार इस ब्रह्माण्ड में अण्डजादि जीव और ब्रह्मादि देव पैदा हुए। राम ही ईश्वर हैं, शेष सब उनके दास हैं। जिनका जन्म हुआ है, वे ईश्वर नहीं हो सकते। कबीर को केवल 'राम' नाम का ही विश्वास है। वह अन्य झमेले में नहीं पड़ना चाहते।

टिप्पणी—इस रमैनी में उत्पत्ति के सम्बन्ध में 'प्रथम' आदि जो शब्द आये हैं, वे कालानुक्रम बोधक नहीं हैं। वे ब्रह्म की अभिव्यक्ति की प्रधानता के बोधक हैं।

४

(रमणादि निरूपण-प्रकरण)

प्रथम चरन[1] गुरु कीन्ह[2] विचारा, करता[3] गावै सिरजनहारा।
करमै कै[4] कै जग बौराया, सक्ति[5] भक्ति[6] लै बाँधिनि माया।
अद्बुद[7] रूप जाति[8] की बानी, उपजी प्रीति रमैनी[9] ठानी।

---

१. अन्य प्रतियों में-चरण; २. बं०-कीन; ३. ब०, ख०-कर्त्ता; ४. बं०-कर्मै करिकै; ५. बं० शक्ति; ६. बलि०-भुक्ति; ७. बं, बलि०-अद्भुत; ८. बा० जात कै; ९. ब०, ख०-रमयणी।

गुनी[1] अनगुनी अर्थ नहिं आया, वहुतक जने चीन्हि नहिं पाया।
जो चीन्हे[2] तेहि[3] निर्मल अंगा, अनचीन्हे नर[4] भए पतंगा॥

साखी—चीन्ह[5] चीन्ह का[6] गावहु वौरे,[7] वानी[8] परी न चीन्ह[9]।
आदि अंत उतपति प्रलै, आपुहि[10] कै कै लीन्ह॥

शब्दार्थ—गुरु = महान् पुरुष, ब्रह्मादि, सनकादि, सद्‌गुरु। प्रथम चरन = सत्‌युग। चीन्हे = पहचाना। अर्थ = तत्त्व, भेद, रहस्य। रमैनी = (i) जिसमें संसार में जीवों के रमण का विवेचन हुआ है। (ii) एक छन्द-विशेष जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं। (iii) वेद-शास्त्र के विचारों में रमण कराने वाली। अंगा = चित्त। चीन्ह-चीन्ह = पहचानो। गावहु = प्रेम करना, रस लेना। आपुहि = जीव। करता = ब्रह्मा।

व्याख्या—सतयुग में सद्‌गुरु ने यह विचार किया कि जीव को चाहिए कि वह सिरजनहार कर्त्ता को गावे अर्थात् जो वास्तविक स्रष्टा है, उसका गान करे, अन्य देव-देवियों के चक्कर में न फँसे। लेकिन जीवों ने इस उपदेश को ग्रहण नहीं किया।

कबीरदास ने तीन पद्धतियों का प्रायः विरोध किया है। वे हैं—कर्मकाण्ड अर्थात् यज्ञादि, शाक्त-पद्धति अर्थात् बलि आदि और वैष्णवों की नवधा भक्ति। यहाँ भी इन्हीं तीनों पद्धतियों का विरोध किया गया है। उनका कहना है कि संसार के लोग कर्मकाण्ड के पीछे पागल हो रहे हैं तथा शाक्त एवं वैष्णव भी माया के जाल में फँसे हुए हैं।

माया अद्‌भुत है, आश्चर्यरूप है। उसे न सत् कह सकते हैं न असत्। वह अज्ञान का जाल है। शंकराचार्य ने भी कहा है कि माया का निर्वचन न सत् से न असत् से हो सकता है अर्थात् माया न एकान्तेन सत् है और न एकान्तेन असत्। वह 'सदसद्‌भ्यामनिर्वचनीया' है। माया स्वरूप से तथा जन्म से वाणी है। शब्द ही माया है। शब्द का तात्पर्य है—परा वाक्। उस माया में जीव की प्रीति उपजी और उसने माया में रमण करने का निश्चय किया अर्थात् जीव भोग-विलास में पड़ गया।

माया की दो शक्तियाँ हैं—विक्षेप और आवरण। माया विक्षेप-शक्ति द्वारा विस्तार करती है, प्रमेयों को, पदार्थों को बाह्यरूपता देती है और आवरण-शक्ति द्वारा वास्तविकता पर पर्दा डाल देती है। तब जीव को पदार्थों के प्रति आकर्षण पैदा हो जाता है।

विद्वान् तथा साधारण दोनों की समझ में उसका रहस्य न आया। वे माया का

---

१. बं०, ब०-गुणि अनगुणी, ख०-गुणिअन गुनी, बलि० गुणी अनगुणी; २. बा०-चीन्है; ३. बा० ताको, ब०-तिहि; बं०-नल; ४. बं०-चीन्हिं चीन्हि, ख०-चीन्ह चीन्ह क्या गावहू; ५. बलि०-के; ६. अन्य प्रतियों में 'बौरै' नहीं है। ७. ब०, ख०, बलि०-वाणी; ८. बं०-चीन्हि; ९. बं०, ब०, ख०, बलि०-उत्पति; प्रलय १०. बं०-सब आपुहि, बं०-आपै ही कहि दीन्ह, बलि०-आपू ही कहि दीन्ह।

रहस्य समझ न पाये। खड्गविलास की प्रति में 'गुणियन गुनी' पाठ है। इसका अर्थ हुआ कि गुणीजनों ने बहुत विचार किया, किन्तु तत्त्व या रहस्य उनकी समझ में न आया।

जिन्होंने समझा, उनका चित्त निर्मल हो गया। जो नहीं समझ सके, वे माया में पतंग के समान जल-भुनकर समाप्त हो गये।

साखी—कबीरदास कहते हैं कि माया को पहचानो। बिना पहचाने क्या गाते हो? उससे क्या प्रेम करते हो? आदिवाणीरूपी शक्ति या माया पहचान में नहीं आयी। 'आपुहि' शब्द माया के लिए भी हो सकता है और जीव के लिए भी। माया-पक्ष में अर्थ होगा कि उत्पत्ति और प्रलय अथवा आदि और अन्त माया के कारण हैं। जीव-पक्ष में अर्थ होगा कि जीव ने स्वयं अपने अज्ञान से आदि-अन्त अथवा उत्पत्ति-प्रलय को बना लिया है। वस्तुतः उसका न आदि है और न अन्त।

टिप्पणी—रमैनी—जिस गान में संसार में जीवों के रमण का विवेचन हुआ है, उसे रमैनी कहते हैं।

५

कहाँ[1] लै कहौं जुगन[2] की वाता, भूला[3] ब्रह्म न चीन्है वाटा[4]।
हरिहर ब्रह्मा के मन भाई, बिबि अच्छर लै[5] जुक्ति बनाई।
बिबि अक्षर का कीन्ह[6] बंधाना, अनहद सब्द[7] जोति परमाना[8]।
अच्छर पढ़ि गुनि[9] राह चलाई, सनक सनंदन के मन भाई।
बेद कितेब[10] कीन्ह विस्तारा, फैलि[11] गेल मन अगम अपारा।
चहुँ जुग[12] भक्तन[13] बाँधल बाटी, समुझि न परी[14] मोटरी फाटी।
भैं[15] भैं प्रिथिमी दहुँ दिसि[16] धावै, अस्थिर[17] होय न औषध पावै।
होय भिस्त[18] जौ चित न डोलावै, खसमहिं[19] छोड़ि दोजख[20] को धावै।
पूरब[21] दिसा हंस गति होई, है समीप सँधि बूझै कोई।
भगता[22] भगतनि कीन्ह सिंगारा, बूड़ि गैल[23] सब माँझहिं[24] धारा॥

१. बं०-कँह लौं, ब०, ख०-कँह ले, बलि०-कहाँ लों; २. अन्य प्रतियों में-'युगन' ३. बं०, बलि०-भूले; ४. बं०-त्राता, ख०, बलि०-वाता; ५. बं०, लै युगति; ६. बं०-कीन विधाना, ब०, ख०-कीन बँधाना; ७. बं०, बलि०-शब्द ज्योति, ब०-शब्द जोति; ८. ख०-प्रमाना; ९. ब०, ख०-गुणि; १०. बं-किताब; ११. बं०-फैल गैल, ब०, ख० फैलि गेल, बलि०-फैल गयल; १२. बं०, ब०, ख०, बलि०-युग; १३. बलि०-भगतन; १४. बं०-परै, ब०, ख०-परल; १५. बं०-भै भै पृथ्वी, ब०, ख०, बलि०-भय भय पृथिवी; १६. अन्य प्रतियों में-दिशि; १७. बं-सुस्थिर होय, ब०-स्थिर न होय न, ख०-स्थिर न होय नहिं; १८. बलि०, ख०-बिहिश्त; १९. बं-खसमै, ब०-खसम; २०. बलि०-के दोजख; २१. बलि०-उत्तर; २२. बं०-भक्तौ भक्तिन कीन श्रृंगारा, ख०, बलि० भक्त्या भक्तिन कीन्ह शिंगारा; २३. बा०-सभ, बलि०-बूड़ि गयल सब; २४. बलि० मांझल।

साखी—विनु गुरु ज्ञान[1] दुंदि भई, खसम कही मिलि वात।
जुग[2] जुग सो कहवैया, काहु न मानी वात[3]॥

शब्दार्थ—विवि = दो। बाटा = मार्ग। मोटरी = गठरी। दहुँदिसि = दस दिशाएँ, चारों ओर। भैं भैं = (उद्गारवाचक शब्द) व्याकुल होकर। खसम = (फा०)—पति, (सं०) आकाश के समान, व्यापक, विभु, सद्गुरु। भिस्त = (फा०—विहिश्त) स्वर्ग, शान्ति का प्रतीक। दोजख (फा०—दोज़ख़) = नरक। गति = मोक्ष, साधन, प्रवेश, अवस्था। हंस = (प्र० अ०) जीव, शुद्धात्मा। संधि = रहस्य, मर्म। पूरव = सामने। दुदि = द्वन्द्व, राग-द्वेष, सुख-दुःख, हर्ष-शोक।

व्याख्या—अनन्त युगों की वात कहाँ तक कही जाय ? ब्रह्म जव जीव रूप ग्रहण करता है तव ब्रह्मा या अन्य जीव अपने स्वरूप को जानने के मार्ग को भूल जाते हैं या भूल गये। तव ब्रह्मा, विष्णु और महेश को यह रुचिकर प्रतीत हुआ और उन्होंने दो अक्षरों (र + म अथवा ओ + म) को लेकर ब्रह्म को पहचानने की युक्ति वनायी। उन्होंने दो अक्षरों की योजना की और उसके प्रमाण अनाहत शब्द और ज्योति हुए अर्थात् उन्होंने सारशब्द (ब्रह्म) को सुना भी और उसका दर्शन भी किया।

(योगी जव साधना करता है और आहत ध्वनि के सभी प्रवेश-मार्गों—कान, नाक, आँख, मुँह आदि को वन्द कर लेता है, तव एक ऐसी अवस्था आती है जव उसे 'अनाहत नाद' सुनायी पड़ने लगता है और वह भीतर ही भीतर उस परम ज्योति का दर्शन भी करता है। यहाँ यही दर्शन और श्रवण दो प्रमाण वताये गये हैं।)

इन्हीं दो अक्षरों को पढ़कर और विचारकर पन्थ चलाया। सनक, सनन्दन आदि को भी यह मार्ग अच्छा लगा। इसके वाद वेद और कुरान का विस्तार हुआ अथवा इन ग्रन्थों के माध्यम से ब्रह्म का निरूपण हुआ। तत्पश्चात् उन पुस्तकों के, जिनका कोई पार नहीं है तथा जिनमें लोगों की गति नहीं है, जाल में मन फँस गया। लोग पुस्तकीय ज्ञान को सर्वस्व मानकर उन्हीं में चक्कर काटते रहे।

चारों युगों के भक्तों ने नये-नये पन्थ चलाये, फिर भी तत्त्व उनकी समझ में न आया। सिर पर रखा पुस्तकों का गट्ठर फट कर गिर गया। रहस्य उनकी समझ में न आया। ग्रन्थों का ढेर वेकार हो गया। मनुष्य 'भैं भैं' करता हुआ, व्याकुल होकर पृथ्वी पर चारों ओर दौड़ता है, फिर भी शान्ति नहीं मिलती, न भवरोग की औषधि या उपचार मिलता है।

व्यक्ति यदि चित्त को स्थिर रखे तो वह स्वर्ग (भिस्त-विहिश्त) के मार्ग में जा सकता है, किन्तु खसम अर्थात् सद्गुरु या परमात्मा को छोड़कर वह ऐसी तरफ भागता है, जो नरक की ओर ले जाने वाला है।

हंस अर्थात् जीव की सद्गति हृदयाकाश में सामने मौजूद है। इस मर्म को न

---

१. ब०, ख०-ज्ञान द्वन्द्व भई, वलि०-ज्ञाने द्वन्द्व भो; २. बं०-युग युग कहवैया कहै, ब० ख०-युग युग सोइ कहवैया; ३. बं०-जात।

समझकर वह इधर-उधर भटकता फिरता है। (आत्मा का वास हृदय में माना गया है, हृदय सामने या पूर्व दिशा में है।) मोक्ष को बाहर खोजना व्यर्थ है। भक्तों ने नाना प्रकार के वेष (तिलक, जटाजूट आदि) बनाये, किन्तु सभी भव-सागर की बीच-धारा में डूब गये, अपने गन्तव्य या लक्ष्य तक नहीं पहुँच सके।

साखी—गुरु के द्वारा बताये गये ज्ञान के बिना मनुष्य द्वन्द्वों (राग-द्वेष, सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि) में फँसा रहता है। प्रत्येक युग का एक सद्‌गुरु होता है और एक ही मुख्य उपदेश देता है। इस प्रकार सब सद्‌गुरुओं की मिली हुई एक ही बात अर्थात् उपदेश है, किन्तु उनकी बात कोई नहीं मानता। (यदि 'सो' पाठ लें तो अर्थ होगा—वही बात प्रत्येक युग में सद्‌गुरु कहता है। यदि 'सोइ' पाठ लें तो अर्थ होगा वही सद्‌गुरु प्रत्येक युग में उपदेश देता है)। दोनों पाठों में भावार्थ में कोई अन्तर नहीं है।

टिप्पणी—सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ब्रह्मा के मानस-पुत्र माने गये हैं। योगशास्त्र में ये चारों लक्षण आत्मा के बताये गये हैं। सनक = अनादि, सनन्दन = शाश्वत आनन्द से युक्त, सनातन = अमर और सनत्कुमार = चिर युवा, अजर। आत्मा के जो ये चार लक्षण बताये गये हैं, वही श्रीमद्भागवत का चैतन्य-पुरुष, उपनिषद् का प्रत्यगात्मा और अरविन्द का Psychic being है।

६

(मोक्षावस्था-प्रकरण)

बरनहुँ[1] कौन रूप और रेखा, दोसर कौन आहिं[2] जो देखा।
औं[3] ओंकार आदि नहिं वेदा; ताकर कहहु[4] कौन कुल भेदा।
नहिं तारागन[5] नहिं रवि चन्दा, नहिं कछु होत पिता के विंदा।
नहिं जल नहिं थल नहिं थिर पौना,[6] को धरे[7] नाम हुकुम को बरना।
नहिं कछु होत[8] दिवस औ[9] राती, ताकर कहहु कौन कुल[10] जाती॥
साखी— सुन्न[11] सहज मन सुमिरत, प्रगट भई एक[12] जोति
बलिहारी[13] ता पुरुष की, निरालम्ब जो होति[14]॥

शब्दार्थ—आहि = है। बरनहुँ = वर्णन करूँ। विंदा = वीर्य। सृष्टि = 'सृज्' धातु = फेंक देना। अपने से पृथक् कर देना सहज = परम तत्त्व, जहाँ ज्ञाता-ज्ञेय,

---

१. वं०-वर्णहुं, ब० ख०-वरणन हु, बलि०-बरन हूँ कवन; २. वं०-आय, ब०, ख०-आहिं, बलि०-आहि; ३. बा० वाली प्रति में 'औ' नहीं है। ४ वं०-कहौं; ५. अन्य प्रतियों में 'गण'। ६. अन्य प्रतियों 'पवना'; ७. वं०-धरै, ब., ख०--धरु; ८. बलि०-होय; ९. बा०-निज; वं०, बलि, अरु०; १०. बलि०-कवन; ११. वं०-शून्य सहज मनस्मृति ते०, ब०, ख०-सहजशून्य मन सुमिरते, बलि०-शून्य सहज मन सुमिरते; १२. वं-यक ज्योति, ब०, ख०, बलि०-एक जोत; १३. बा०-ताहि पुरुप की मैं बलिहारी, वं०-बलिहारी ता पुरुप छवि; १४. बलि०-होत।

प्रमाता-प्रमेय का भेद नहीं है, अद्वैत की स्थिति। सुन्न = शून्य, आकाश, सर्वव्यापी, विभु, तत्त्व-सम्बन्धी।

व्याख्या--ब्रह्म का रूप और आकार मैं किस प्रकार वर्णन करूँ ? वह तो निराकार है, सर्वव्यापी है। उसके अतिरिक्त दूसरा कौन है, जिसने उसे देखा हो। उसका न तो श्याम-गौर आदि कोई रंग है और न आकार। दूसरी पंक्ति के दो अर्थ हो सकते हैं—(१) ओंकार आदि भी उसका वर्णन नहीं कर सकते, वेद भी उसका वर्णन नहीं कर सकते। (२) वेद जिसका आदि ओंकार है, वह भी उसका वर्णन नहीं कर सकते। भला बतलाओ तो उसका वंश इत्यादि का कौन-सा भेद हो सकता है।

वहाँ पर न तो तारागण हैं, न चन्द्र है, न सूर्य है, और न पिता के वीर्य आदि किसी कारण का सम्बन्ध है, अर्थात् उसका किसी से जन्म नहीं हुआ है, वह अजन्मा है। कठोपनिषद् में ठीक इसी प्रकार कहा गया है कि 'वहाँ न सूर्य है, न चन्द्र, न तारा है और न विद्युत्। फिर अग्नि का प्रश्न ही कहाँ ? उसी के प्रकाश से सब प्रकाशित होते हैं :—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्,
नेमाविद्युतो कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं,
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

वहाँ पंचतत्त्वों का भी पता नहीं है—जल, पृथ्वी, पवन, आकाश (थिर) आदि से वह परे है। फिर उसका नाम कौन रख सकता है ? उसके ऊपर अपनी आज्ञा और कौन चला सकता है ? और उसका विशेष वर्णन कौन कर सकता है ? वहाँ दिन-रात भी नहीं है। उसका कोई कुल या जाति भी नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिन विषयों को पकड़ कर कुछ कहा जा सकता है, वहाँ उसमें कुछ भी नहीं है। उसमें कोई विशेषण नहीं लग सकता। शब्द से उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। शब्द का आधार मन, इन्द्रिय है। वह दोनों से परे है :—

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' (कठो०)

अतः मन, वचन के लिए वह शून्य है।

साखी—चित्त को सहज शून्य में लगाने से अथवा चित्त को सहज भाव से शून्य में लगाने से एक ज्योति प्रकट होती है, जो कि तुरीयावस्था की ज्योति है और जो आत्मा का सहज स्वरूप है। यह किसी आलम्बन के द्वारा नहीं होता। यह निर्विकल्प है। इसी निर्विकल्प स्थिति को कबीर ने शून्य कहा है। इस निर्विकल्प बोधि के द्वारा सहज शून्य का स्मरण करके जो आत्मा की स्वाभाविक ज्योति की अनुभूति करता है, उस पुरुष पर मैं बलि जाता हूँ। वह पुरुष ज्योतिस्वरूप हो जाता है। उसका कोई आलम्बन नहीं रह जाता और उसका चित्त निर्विषय हो जाता है। पुरुष के विषय में 'निरालम्ब'

कहने का तात्पर्य यह है कि न तो उसको कोई इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष का आलम्बन (सहारा) होता है और न मन अथवा वचन द्वारा कोई आलम्बन होता है। उसमें एक निष्प्रपंच और निर्विकल्प प्रज्ञा का उदय होता है। यह स्थिति उस समय की है जब कि चित्त का सर्वथा निरोध हो जाता है। उसकी सारी क्रिया बन्द हो जाती है। वह एक निर्वात दीपशिखा के समान हो जाता है। उसमें किसी विकल्प (चित्तस्य प्रचारः (चलना) इति विकल्पः) का उदय नहीं हो पाता। उसी समय आत्म-ज्योति अथवा सत्पुरुष की अनुभूति होती है। इस स्थिति को पहुँचा हुआ 'निरालम्ब' पुरुष ही सद्गुरु है।

कबीर ने अन्यत्र एक साखी में भी कहा है :—

पावक रूपी साइयाँ, घट घट रहा समाय।
चित चकमक लागे नहीं, ताते बुझि बुझि जाय॥

टिप्पणी (१) शून्य अवस्था ही सहज अवस्था है। इसी को 'समरस' अवस्था कहा गया है।

(२) समाधि दो प्रकार होती हैं :—

(क) सम्प्रज्ञात समाधि—इसमें चित्त के सामने ध्येय, आलम्ब या विकल्प रहता है। इसी को सविकल्प समाधि कहते हैं। इसमें चित्तवृत्ति (वृत्ति = तरंग, चपलता) को एक ध्येय में लगाना पड़ता है।

(ख) असम्प्रज्ञात समाधि—इसमें चित्त के सामने कोई आलम्ब नहीं रहता। चित्त निस्तरंग सरोवर के समान निश्चल और निरुद्ध हो जाता है। उसमें कोई विकल्प नहीं रह जाता है। इसे निर्विकल्प या असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं।

७

तहिया[१] होत पवन नहिं पानी, तहिया सिष्टि[२] कौन उतपानी।
तहिया होत कली[३] नहिं फूला, तहिया होत गर्भ नहिं मूला।
तहिया होत विद्या[४] न ह वेदा, तहिया होत सब्द[५] नहिं स्वादा[६]।
तहिया होत[७] पिंड नहिं वासू, ना धर[८] धरनि न अनल[९] अकासू।
तहिया होत[१०] गुरू नहिं चेला, गम्म[११] अगम्म न पंथ दुहेला॥

साखी—अविगत[१२] की गति का कहौं, जाके गाँव[१३] न ठाँव।
गुणन[१४] विहूना पेखना, का कहि लीजै नाँव[१५]॥

१. बं०, बलि०-जहिया; २. अन्य प्रतियों में 'सृष्टि'; ३. ब०, ख०-होते कलि; ४. बं०-बलि०-न विद्या; ५. अन्य प्रतियों में 'शब्द'; ६ बं०-खेदा, बलि०-स्वेदा; ७. ब०, बलि०, ख०-होते; ८ बा० धर धरनी; ९. बा. गगन, ब०, ख०- गमन; १०. ब०, ख०-होते; ११. बा०-गम अगम; १२. अन्य प्रतियों में 'अविगति; १३. बं०-गाउँ न ठाउँ, ब०, ख०-गाम न ठाम; १४. बा० गुन बिहूना, बं०-गुण विहीना; १५. ब०, ख०-नाम।

शब्दार्थ—उतपानी = उत्पन्न किया। तहिया = सहज शून्य ब्रह्म या निरालम्ब अवस्था। मूला = उत्पत्ति का हेतु। स्वादा = जिह्वा, स्पर्शेन्द्रिय। पिंड = शरीर। वासू = निवास। धर = सम्हालने वाला, थाम्हने वाला। गम्म = प्रवेश, किसी वस्तु में प्रवेश, यह सगुण का प्रतीक है। अगम्म = जहाँ प्रवेश नहीं हो सकता, पहुँच के बाहर, निर्गुण। दुहेला = दुःसाध्य। अविगत = जो जाना न जाय। गति = बोध, ज्ञान। पेखना = अनुभूति। विहूना = विहीन, बिना, रहित।

व्याख्या—इसके पूर्व की रमैनी (संख्या ६) की साखी में कहा गया है कि उस सहजावस्था में जो ज्योति प्रकट होती है, वह आत्म-ज्योति है और उसके सुमिरन करने से जिसमें वह ज्योति प्रकट होती है, वह ज्योतिस्वरूप या आत्मस्वरूप हो जाता है। मैं उस पुरुष की बलि जाता हूँ।

इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत रमैनी में कबीरदास का कथन है कि इस प्रकार वह उसी स्थिति में पहुँच गया है, जिस स्थिति में किसी भी लौकिक वस्तु या विषय की सत्ता अथवा गति नहीं है। यह वह स्थिति है जहाँ न जल है, न पवन की गति है। जो ऐसी स्थिति में पहुँच गया है, उसका फिर जन्म नहीं हो सकता। इसको स्पष्ट करने के लिए कबीरदास कहते हैं कि जिस स्थिति में पवन, पानी आदि की सत्ता ही नहीं है, वहाँ सृष्टि अर्थात् जन्म कैसे हो सकता है? अतः वह जन्म-मरण से परे आत्मस्वरूप हो जाता है।

उस स्थिति में न कली है, न फूल अर्थात् उसकी वासना नष्ट हो जाती है। वासना ही कली है, जो फूल अर्थात् जन्म के रूप में प्रस्फुटित होती है। एक जन्म की वासना या तृष्णा दूसरे जन्म का कारण बनती है। (यहाँ वासना की उपमा 'कली' से दी गयी है और जन्म की 'फूल' से)। वहाँ न गर्भ है और न गर्भ का मूल अर्थात् आदिकारण या उत्पत्ति का हेतु। अब उसके लिए विद्या और वेद का कोई स्थान नहीं है और अब वह शब्द (कर्णेन्द्रिय के विषय) और स्वाद (स्पर्शेन्द्रिय या जिह्वा के विषय) से परे है। (यहाँ 'शब्द' और 'स्वाद' सभी इन्द्रियों द्वारा अनुभूत विषयों के प्रतीक हैं)।

वह शरीर और उसके निवास से भी मुक्त हो जाता है। उस स्थिति में न धर अर्थात् धारण करने वाला या आधार रह जाता है, न पृथ्वी है, न अग्नि है और न आकाश। वहाँ न कोई गुरु है, न चेला। (पूरनदास की टीका 'मूलबीजक' में 'अनल' के स्थान पर 'पवन' पाठ है। तब अर्थ होगा कि—वहाँ न पृथ्वी है, न पवन है और न आकाश।)

उस स्थिति में निर्गुण-सगुणरूपी दुःसाध्य अथवा दुःखदायी पन्थ भी नहीं है।

साखी—जो अविगत की अवस्था में पहुँच गया है अर्थात् जो बुद्धि की पहुँच के बाहर है, उसका वर्णन मैं कैसे करूँ? उसका न गाँव है, न निश्चित स्थान। गुणों से रहित की जो अनुभूति है, उसका वर्णन मैं किन शब्दों में करूँ?

८

(महावाक्योपदेशादि प्रकरण)

तत्तुमसी[१] इन्हके उपदेसा[२], ई उपनिषद कहैं संदेसा[३]।
ई निस्चै[४] इन्हके बड़ भारी, वाहि[५] करैं वर्णन अधिकारी।
परम तत्तु का[६] निज परमाना, सनकादिक नारद सुक[७] जाना।
जागबलिक[८] औ जनक संवादा, दत्तात्रेय[९] उहै रस स्वादा।
उहै[१०] राम वसिष्ठ मिलि गाई, उहै[११] क्रिस्न ऊधौ समुझाई।
उहै[१२] बात जो जनक दिढ़ाई[१३], देह[१४] धरे विदेह कहाई॥
साखी—कुल अभिमाना[१५] खोइ कै, जियत[१६] मुवा नहिं होय।
देखत जो नहिं देखिया[१७], अदिष्टि कहावै सोय॥

शब्दार्थ—तत्तुमसी = तत् त्वम् असि, तू वही है। निज = स्वयं। परमाना = प्रमाण। दिढ़ाई = दृढ़ निश्चय करके। कुल = वश, समस्त। अभिमाना = अभि + मान = सर्वतः मान बैठना, यह समझना कि मैं जीव हूँ, शरीर हूँ, प्राण हूँ।

व्याख्या—तू वही है, यही उपनिषदों का सन्देश है। तू शरीर नहीं है, मन नहीं है, प्राण नहीं है। तू अविगत, निर्गुण ब्रह्म है - तत् त्वम् असि।

इन ऋषियों के यही निश्चय हैं। अधिकारी लोग इसी का वर्णन करते हैं। तेरे भीतर जो सार है अर्थात् आत्मा, वह ब्रह्म ही है। परमतत्त्व का प्रमाण स्वयं आत्मा है। यही सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, नारद और शुकदेव ने माना है। गोरखनाथ ने भी कहा है :—

'अनत न भरमो सिधा, तत्र काइयां मधे सार।'

उर्दू के प्रसिद्ध कवि गालिब का कहना है :—

हम न होते तो खुदाई का भरम मिट जाता।
तेरी हस्ती का पता है, मेरा इन्साँ होना॥

याज्ञवल्क्य और जनक संवाद में इसी तत्त्व का चिन्तन है। बृहदारण्यक उपनिषद् में दोनों का संवाद है। दत्तात्रेय ने यही अनुभव किया है। वशिष्ठ और राम के संवाद में भी यही विचार किया गया है। 'वशिष्ठ रामायण या योगवाशिष्ठ' में राम

---

१. अन्य प्रतियों में-तत्त्व; २. अन्य प्रतियों में-उपदेशा; ३. अन्य प्रतियों में-संदेशा; ४. वं०-ऊ निश्चय उनके, व०, ख०-ई निश्चय; ५. बा०-वाही के बरन कहे अधिकारी, वं०-वाहि कि वर्णन करै अधिकारी, व०, ख०-याहि कि वर्णन करु अधिकारी; ६. व०-के; ७. वं०-सुख माना, व०, ख०-शुक माना; ८. वं०, वलि०-याज्ञवल्क्य, व०, ख०-यागवल्क्य; ९. वं०-दत्तात्रयी वहै, व०, ख०-दत्तात्रेय वही; १०. वं०-वहै वसिष्ठ राम, व०, ख०-वही वसिष्ठ राम; ११. वं०-वहै कृष्ण ऊधव, व०, ख०-वही कृष्ण उद्धव; १२. वं०-वहै, व०, ख०-वही; १३. अन्य प्रतियों में-दृढ़ाई; १४. वं०-देहै, ख० देहे; १५. वलि०- मर्यादा; १६. वलि०-जीवत मुवा न कोय; १७. बा०-देखिये।

प्रश्न पूछते हैं, वशिष्ठ उत्तर देते हैं। श्रीमद्भागवत में कृष्ण ने उद्धव को यही उपदेश दिया है। इसी तथ्य में दृढ़ निश्चय होने के कारण जनक विदेह कहलाये।

साखी—कुल के अभिमान को अथवा समस्त अभिमान को छोड़कर जो जीवित रहता है, वह कभी मरता नहीं। वास्तव में वही अमर है। अभिमान का अर्थ है—सर्वतः मान बैठना अर्थात् जो नहीं है अज्ञानवश उसे मान बैठना। यह समझना कि मैं शरीर हूँ, प्राण हूँ आदि अभिमान है।

'देखत जो नहिं देखिया'—जो सबको देखता है, किन्तु स्वयं नहीं देखा जाता अर्थात् जो स्वयं सबका द्रष्टा है, साक्षी है, किन्तु स्वयं देखा नहीं जा सकता। वह द्रष्टा है, कभी दृश्य नहीं बन सकता। इसीलिए वह 'अदृष्ट' कहलाता है। वही द्रष्टा तू है। तेरे और द्रष्टा में कोई भेद नहीं है। यह ज्ञान होने पर अभिमान नष्ट हो जाता है।

अंग्रेजी में एक उक्ति है :—

'That which is always a subject and never an object, is the Self or Spirit.'

'जियत मुवा' का अर्थ है—अहंभाव का विनाश।

कबीरदास ने अन्यत्र भी कहा है :—

ऊँचा तरुवर गगन फल, बिरला पंछी खाय।
वा फल को तो वह चखै, जीवति ही मरि जाय॥

बाइबिल के शब्दों में :—

'He loseth life who saveth it.
He saveth life who loseth it.'

९

बाँधे[1] अष्ट कष्ट नौ सूता, जम[2] बाँधे[3] अजनी[4] के पूता।
जम[5] के वाहन बाँधे[6] जनी, बाँधे[7] सृष्टि[8] कहाँ लौ गनी।
बाँधे देव तेंतीस[9] करोरी[10], सुमिरत बंदि लोह गै तोरी।
राजा[11] सँवरै तुरिया चढ़ी, पंथी सँवरै[12] नाम लै वढ़ी।
अर्थ विहूना[13] सँवरै नारी, परजा सँवरै[14] पुहुमी झारी॥

१. ब०, ख०-बांध्यो; २. अन्य प्रतियों में 'यम'; ३. ब०, ख०-बाँध्यो; ४. बा०-अंजनी, वं०-अंजनि; ५. अन्य प्रतियों में-यम; ६. वं; बलि०-बाँधिनि, ब०, ख०-बाँध्यो; ७. ब०, ख०-बाँध्यो; ८. अन्य प्रतियों में-सृष्टि; ९. बा०-तैंतीसो कोरी; १०. बा. सँवरत लोह बँध गौ तोरी, ब०, ख०-समरत; ११ वं०, बलि-सुमिरै, ब०, ख०-समरे, १२ वं०-सुमिरि, ब०, ख० समरे, बलि०-सुमिरे; १३. वं०-बिहीना सुमिरै, ब०-विहूनीसँमरी, बलि०-बिहिना सुमिरै नारि; १४. वं०, बलि०-सुमिरै, ब०, ख० समरे।

साखी—वंदि[1] मनावै फल मिलै, बंदि देय[2] सो देय[3]।
कहैं[4] कबीर ते[5] ऊबरे, निसिदिन[6] नामहि लेंय ॥

शब्दार्थ—अष्ट = आठ सिद्धियाँ, अष्टांग योग। नौ = नव निधियाँ, नवधा भक्ति। सूता = सूत्र। अजनी = प्रकृति या माया। जनी = उत्पन्न हुए लोग। जम के वाहन = काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि। राजा = राजयोग। सँवरै = सुमिरन करता है। तुरिया = तुरीयावस्था। झारी = समस्त। परजा = साधारण लोग। विहूना = विहीन, रहित। पुहुमी = पृथ्वी।

व्याख्या—प्रस्तुत रमैनी में कबीर ने रूढ़ियों और बाह्याचार का खण्डन किया है। उनका कहना है कि बाह्य साधना से अपरोक्षानुभूति नहीं हो सकती। मनुष्य आठ सिद्धियों और नौ निधियों (अथवा अष्टांग योग और नवधा भक्ति) के सूत्र में बँधा हुआ है। ये सर्वथा कष्टसाध्य हैं। यमराज ने इन माया के पुत्रों को, जो आठ-नौ के चक्कर में रहते हैं, बाँध रखा है। कुछ प्रतियों में 'अंजनी' पाठ है और कुछ में 'अजनी'। यदि 'अजनी' पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा—जो कभी पैदा नहीं हुई है अर्थात् अनादि या माया। जिस प्रकार सांख्य में प्रकृति को 'अजा' (जिसका जन्म नहीं हुआ है) कहते हैं, उसी प्रकार वेदान्त की दृष्टि में माया 'अजा' है। इसी 'अजा' से 'अजनी' बना है। यदि 'अँजनी' पाठ लें तो अर्थ होगा—अंधकार, जो कि 'माया' का प्रतीक है। अर्थ की दृष्टि से दोनों में अन्तर नहीं है।

यम के वाहन अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि द्वारा सभी उत्पन्न हुए लोग बँधे हुए हैं। उससे सारी सृष्टि बँधी हुई है, उसे कहाँ तक गिनाया जाय? जिन तैंतीस करोड़ देवताओं के स्मरण से यह समझा जाता है कि लौहरूपी माया का बन्धन टूट जायगा, वे भी माया अथवा यमराज से बँधे हुए हैं।

राजयोगी तुरीयावस्था में आरूढ़ होकर 'सुमिरन' करते हैं। विभिन्न पंथों के लोग अपने पंथों द्वारा उपदिष्ट नामों का सुमिरन करके आगे बढ़ने की चेष्टा या आशा करते हैं। द्रव्य-धन आदि रहित दरिद्र लोग माया, लक्ष्मी या शक्ति का सुमिरन करते हैं। साधारण जन सारी पृथ्वी की उपासना करते हैं।

साखी—(यहाँ 'बंदि' शब्द 'मनावै' का कर्त्ता हो सकता है अथवा कर्म। पूर्वापर संगति को देखते हुए 'बंदि' को यहाँ कर्मकारक में लेना ही अधिक समीचीन होगा।) तब अर्थ इस प्रकार होगा :—

देव आदि माया से बद्ध हैं। वे स्वयं बंदी हैं। बंदी को मनाने से बंधन का ही फल मिलेगा। जो स्वयं बंदी (माया से बद्ध) हैं, उनको मनाने या पूजने से बँधन का ही फल हाथ आएगा। बंदी जो दे सकता है, वही वह देंगे। कबीरदास कहते हैं कि केवल उन्हीं का उद्धार होगा, जो निशिदिन सार शब्द का सुमिरन करते हैं।

---

१. बा०-वंदि मनावैं ते फल पावै, बं०-बँदि मनाय फल पावहीं; २. बा०-दिया; ३. बं०-देव; ४. बं०-कह, ब०, ख०-कहहिं, बलि०-कहें; ५. ब०-ख०-देइ; ६. बा०-जो निस बासर नामहि लेय।

कबीरदास बाह्याचार की अपेक्षा चित्त शुद्धि पर जोर देते थे। उनका एक प्रसिद्ध पद है :—

संतों सहज समाधि भली।
साँईं ते मिलन भयो जा दिन ते, सुरत न अन्त चली ॥
आँख न मूँदूँ, कान न रूँधूँ, काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन मैं हँस-हँस देखूँ, सुन्दर रूप निहारूँ ॥
कहूँ सो नाम सुनूँ सो सुमिरन, जो कछु करूँ सो पूजा।
गिरह-उद्यान एक सम देखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा ॥
जहँ-जहँ जाऊँ सोइ परिकरमा, जो कछु करूँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत, पूजूँ और न देवा ॥
शब्द निरन्तर मनुआ राता, मलिन वचन का त्यागी।
ऊठत बैठत कबहुँ न बिसरै, ऐसी तारी लागी ॥
कहै कबीर यह उनमनि रहनी, सो परगट कर गाई।
सुख दुख के इक परे परम पद, तेहि में रहा समाई ॥

———

१०

राही लै पिपराही बही, करगी आवत काहु न कही।
आई करगी भौ अजगूता, जन्म-जन्म जम[१] पहिरे बूता।
बूता पहिरि जम[२] करै सुआना[३], तीनि लोक मँह करै पयाना[४]।
बाँधे[५] ब्रह्मा बिस्नु[६] महेसू[७], सुरनर[८] मुनि औ[९] बाँधु गनेसू।
बाँधे[१०] पौन[११] पावक नभ[१२] नीरू, चाँद[१३] सुरुज बाँधे दोउ बीरू।
साँच मंत्र बाँधिनि[१४] सब झारी, अमृत[१५] वस्तु न जानै नारी ॥
साखी—अमृत वस्तु जानै नहीं, मगन भये[१६] सब लोय[१७]।
कहहिं कबीर[१८] कामो[१९] नहीं, जीवहिं[२०] मरन न होय ॥

---

१. अन्य प्रतियों में—यम; २. अन्य प्रतियों में—यम; ३. बं०-पयाना; ४. बं०-समाना; ५. ब०, ख०-बाँध्यो; ६. अन्य प्रतियों में-विष्णु; ७. अन्य प्रतियों में-महेशू ; ८. बं०-पार्वती सुत बाँध गणेशू ९. अन्य प्रतियों में-सब; १०. ब०, ख०-बाँध्यो; ११. अन्य प्रतियों में-पवन; १२. बा०-औ, ब०, ख०-थल; १३. बं०-चन्द्र सूर्य, ब०, ख०-चाँद सूर्य; १४. बा०-बाँधिन्हि सभ, बलि०-बाँधि सब; १५. ब०, ख०-अमरित; १६. ब०, ख०, बलि०-भया; १७. बं०-कित लोग; १८. बं०, ब०, ख०-कबिर; १९. बलि०-तामे; २०. बं०-जीवह्न मरण न योग, बलि०-जीवन मरन न होय।

शब्दार्थ—राही = कर्मपन्थी। पिपराही = पिपर + आही = पीपल का बन, (प्र० अ०) कामना। बही = भटकना, कुमार्गी होना, बहना। करगी = बाढ़, निकट, समीप (प्र० अ०) मृत्यु का बन्धन। अजगूता = आश्चर्य। बूता = शक्ति, सामर्थ्य (लाक्षणिक अर्थ) स्वाँग। सुमाना = तैयारी। मरन = परिवर्तन। मंत्र = मननात् त्रायते इति मन्त्रः—मनन करने से जो त्राण करे। झारी = सम्पूर्ण रूप से। नारी = (प्र० अ०) माया, कामना, लोय = लोग। कामो = कामना, तृष्णा, राग।

व्याख्या—कर्मपन्थी कर्मफल की कामना को लेकर संसार के बन्धन में पड़ता है या भटकता फिरता है। उसे कोई नहीं बतलाता कि इससे केवल बन्धन आता है अर्थात् इससे वह केवल बन्धन में पड़ेगा।

सकाम उपासना से बंधन हुआ, तब उपासक आश्चर्य में पड़ा। जन्म-जन्मान्तर में यम अर्थात् मृत्यु ने स्वांग धारण किया अर्थात् जीव जन्म-जन्मान्तर मृत्यु के चक्कर में पड़ता रहा। यहाँ 'बूता' का लाक्षणिक अर्थ है—स्वाँग या देह। कर्मी उपासक जन्म-जन्म में मरणशील देह प्राप्त करता है। जब तक ऐहिक अथवा लौकिक राग या कामना रहती है, तब तक जीव भव-चक्र में पड़ता रहता है और अमृततत्त्व नहीं प्राप्त कर सकता। इसी तथ्य को भगवान बुद्ध ने भी स्वीकार किया है कि तृष्णा ही संसरण का मूल है। गीता में भी कहा गया है :—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ (२।२२)

भिन्न-भिन्न देह धारण करके यम अपने उद्देश्य की पूर्ति की तैयारी करता है। यम का स्वाँग धारण करके तैयारी करने का भाव यह है कि बार बार जीव मृत्यु के मुख में पतित होता है। 'जम का बूता' अर्थात् स्वाँग मृत्यु है और उसी को लेकर यम अपनी सारी तैयारी करता है। यम तीनों लोकों (भूः, भुवः, स्वः अथवा पृथ्वी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग) में गमन करता है। इन तीनों लोकों के प्राणी मरणशील हैं।

यम ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश, देवता, मनुष्य, गणेश आदि सभी को अपने बंधन में फाँस लिया। मनुष्य की आयु से बड़ी आयु देवताओं की, देवताओं से बड़ी आयु ब्रह्मादि की होती है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश की आयु एक कल्प तक है। यमराज ने अपनी परिवर्तनशीलता के बन्धन में पंच-महाभूतों को भी बाँध रक्खा है। (यहाँ पवन, पावक, नीर और बम्बई वाली प्रति में 'नभ' तथा बलिया और खड्गविलास प्रेस वाली प्रति में 'थल' का नाम गिनाया गया है। इस प्रकार नाम केवल चार भूतों का लिया गया है, किन्तु तात्पर्य पाँच भूतों से है।)

दोनों बड़े वीरों-सूर्य और चन्द्र को भी यम ने अपने पाश में बाँध रखा है। (आज का विज्ञान भी कहता है कि चन्द्र बिल्कुल ठण्डा हो गया है और सूर्य की ऊष्णता निरन्तर घटती जा रही है। एक दिन वह भी ठण्डा हो जाएगा)।

सच्चे मन्त्र अथवा सच्चे विचार और उद्देश्य को यम ने पूर्ण रूप से बाँधकर अपने पास रख लिया। उनको कर्मी उपासकों तक पहुँचने नहीं दिया। माया अमरत्व को नहीं जानती अर्थात् माया के कारण जो कामना प्रवृत्त होती है, उसके कारण जीव अमरत्व को नहीं जान सकता।

साखी—लोग राग और कामना में डूबे रहते हैं, अमृतत्व को नहीं जान पाते। यदि काम न हो अर्थात् तृष्णा, राग आदि न हों तो जीव मरण से बच सकता है अर्थात् अमृतत्व को प्राप्त कर सकता है। तृष्णा के ही कारण जीव जन्म-मरण के बन्धन में पड़ता है।

टिप्पणी—ऋग्वेद में पीपल काम्य विषय के प्रतीक रूप में आया है :—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥
(ऋग्वेद—मं० १ । अध्याय २२ । सं० १६४)

११

(मनोमायामहिमा प्रकरण)

आँधरि[१] गुष्टि[२] स्रिष्टि भौ बौरी, तीनि लोक मँह लागि[३] ठगौरी।
ब्रह्महिं[४] ठग्यो नाग कहँ[५] जारी, देवन[६] सहित ठग्यो[७] त्रिपुरारी।
राजठगौरी विस्नुहिं[८] परी, चौदह[९] भुवन केर चौधरी।
आदि अंत जाकि[१०] जनक न जानी, ताकर[११] डर तुम काहेक मानी।
वै[१२] उतंग तुम जाति पतंगा, जम[१३] घर कियहु जीव को संगा।
नीम कीट जस नीम पियारा,[१४] विष को अमृत कहै[१५] गँवारा[१६]।
विष अमृत[१७] गो एकहिं सानी, जिन जानी[१८] तिनि विषि कै[१९] मानी।
विष के संग कौन[२०] गुन होई, किंचित लाभ मूल गो खोई।
कहा भये नर सुध[२१] बेसूझा, बिनु परचै[२२] जग बूड़ न[२३] बूझा[२४]।
मति के हीन कौन[२५] गुन कहई, लालच लागे आसा[२६] रहई ॥

---

१. बं०-आँधर; २. अन्य प्रतियों में-स्रष्टि; ३. ब० ख०-लागु; ४. बा०-ब्रह्मा ठगो; ५. बं०, बलि०-नागसंहारी; ६ बा०-देवतन; ७. बा० ठग्यो; ८. बं०, ब०, ख०-बिष्णुहि, बलि०-विष्णु पर; ९. ख०-चौदहो; १०. बा० जाके जलकन, बं० जेहि काहु, बलि०-जेहि झलक न; ११. बं-ताको, ब०, ख०-ताकी; १२. बं०-ऊ, ब०, बलि०-वे; १३. अन्य प्रतियों में-यम; १४. ख०-पिआरा; १५. बा०-कहे, बलि०-कहत, ब०-अमरित कहै; १६. ब०, ख०-गमारा; १७. ब०, ख०-अमरित; १८. बा० जाना १९. बलि०-करि; २०. बं;-बलि०-कवन गुण; २१. बं०-नल सुध बेसूझा, ब०, बलि०-भयो नरो शुद्ध बिशुद्धा, ख०-काह भयो नल शुद्ध बिशुद्धा; २२. अन्य प्रतियों में-परिचय; २३. बं-मूढ़ न बूझा; २४. ब०, ख०, बलि०-बुद्धा; २५. बं;-बलि०-कवन गुण; २६. बं०-आशा, ब०, ख०-लागी आशा।

साखी—मुवा[1] है मरि जाहुगे, मुए की बाजी ढोल।
सपन[2] सनेही जग भया, सहिदानी रहि[3] बोल॥

शब्दार्थ—गुष्टि = परामर्श, बातचीत। ठगौरी = ठगने वाली शक्ति, माया। त्रिपुरारी = शिव। स्रिष्टि = सृष्टि, लोक। राजठगौरी = मुख्य या प्रधान ठगिनी, माया। वै = वह, यहाँ 'माया' से तात्पर्य है। उतंग = उत्तुंग, दीपशिखा। परी = पीछे पड़ गयी। सानी = संयुक्त, मिला हुआ। गो = गया। गो एकहि सानी = एक में मिल गया है। गुन = लाभ, प्रभाव। सुध बेसूधा = ऊँच-नीच। सहिदानी = सज्ञान, पहचान, चिह्न। बोल = नाम मात्र।

अवतरणिका—इसके पूर्व की रमैनी में बताया गया है कि सकाम कर्म-उपासना से तथा विषयों की कामना से देव, मुनि तथा सामान्य जन सभी बन्धन में पड़े हुए हैं और निष्काम कर्म और उपासना से तथा विषयों की कामना के त्याग से ही मुक्ति हो सकती है। यह एक स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि यदि कामना ही बन्धन का हेतु है तो सब जीव उसे त्यागकर, बन्धन तोड़कर मुक्त क्यों नहीं हो जाते ? इस पर कबीरदास निम्नलिखित रमैनी में अपना मत व्यक्त करते हैं।

व्याख्या—अन्धकार में डालने वाली माया के आकर्षण से सारा लोक बावला हो गया है। (माया अन्धकार में डालने वाली है, इसीलिए उसे 'आँधरि गुष्टि' कहा गया है—विशेषण विपर्यय) माया की दो शक्तियाँ हैं—विक्षेप, आवरण। आवरण-शक्ति सत्य पर पर्दा डालती है और विक्षेप शक्ति मिथ्या वस्तु को सामने लाती है। यही माया द्वारा अन्धा बनाना है तथा ठगने का काम है।

वह तीनों लोकों को ठगने वाली अर्थात् बुद्धि को भुला देने वाली है। कठोपनिषद् में कहा गया है :—

पराञ्चि खानि व्यतृणत स्वयम्भूः,
तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद् धीरः आवृत्तचक्षुः,
आत्मानमैक्षत अमृतत्वं ईक्षन्॥

इसी प्रकार एक सूफी ने कहा है :—

न कोई पर्दा है उसके दर पर,
न रूये रोशन नक़ाब में है।
तू आप अपनी ख़ुदी से ऐ दिल,
हिजाब (पर्दा) में है, हिजाब में है॥

इसी पर्दे के कारण जीव अनात्म को आत्मा समझने लगता है और विषयों के भोग में पड़ जाता है।

माया काम को जन्म देती है। इसीलिए लोग काम के चक्कर में पड़ जाते हैं।

---

१. बं०-मुवा अहै, ब०, ख०-मुए हौ; २. बं०, ब०, ख०-स्वप्न; ३. या०-रहिगो, बं०-रहिगा।

ब्रह्मा माया के वश में आ गये। वह अपनी कन्या सरस्वती पर आसक्त हुए। माया ने नागों को जला डाला। नागों की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। अतः वे सब जनमेजय के यज्ञ में नष्ट हो गये। माया ने देवताओं और शिव को भी ठगा। शिव काम के वश में हो गये। चौदहों लोकों के स्वामी विष्णु के भी पीछे माया पड़ गयी अर्थात् वह भी माया द्वारा ठगे गये। जिसके आदि-अन्त का पता जनक को भी न था, उसका डर तुम क्यों मानते हो? (बलि० वाली प्रति में 'झलक न' पाठ है। तब अर्थ होगा—जिसके आदि-अन्त की झलक भी कोई नहीं जानता)। उसका भय छोड़कर आत्मस्वरूप पर विचार करो।

'वै उत्तंग' अर्थात् वह माया दीपशिखा के समान है और तुम पतंग के समान हो। जिस प्रकार पतंग दीपक की ज्योति के प्रति आकृष्ट होकर अपना विनाश कर लेता है, उसी प्रकार तुम भी माया की चकाचौंध में आकर विनष्ट होते हो। 'जम घर कियहु जीव को संगा' में 'कियहु' का कर्त्ता 'वै' अर्थात् माया है। माया जीव का संग यम के घर कर देती है। भाव यह है कि संसार यम का घर है अर्थात् उसमें मरण-विनाश होता रहता है। जीव उसी से सम्पर्क जोड़े हुए है अर्थात् माया का क्षेत्र संसार है, जो यमगृह के समान है, उसके प्रति ठगिनी माया के मोहक रूप से आकृष्ट होकर जीव वैसे ही नष्ट हो जाता है जैसे पतंग ज्योति की प्रभा से आकृष्ट होकर उसमें जलकर मर जाता है।

नीम के कीड़े को जिस प्रकार नीम जैसी कड़ुई चीज भी प्रिय होती है, वैसे ही अज्ञानी जीव विषय-विष को भी अमृत समझता है।

संसार में विष और अमृत एक ही में मिले हुए हैं। संसार में साधारण प्रेम (सुख) जो अमृत के समान लगता है, वह विषयरूपी विष में सना होने के कारण विष ही है। जो जानकार हैं, वे उसे विष ही मानते हैं। संसार का विषय-सुख, जो अमृतवत् प्रिय प्रतीत होता है, वह स्वरूपानन्द के बिना दुःख ही है, सुख नहीं है।

विष के साथ मिलने पर अमृत का कौन-सा प्रभाव या लाभ रह सकता है? उस अमृत का भोग करने पर यदि किञ्चिद् लाभ भी हो अर्थात् इन्द्रियों की थोड़ी-सी तृप्ति भी हो जाए तो भी जीवन का मूल अर्थात् प्राण ही उस विष से नष्ट हो जाएगा। कहने का तात्पर्य यह है कि विषय-सुखों का भोग करने से इन्द्रियों की तृप्ति भले ही हो जाए, किन्तु जीवन का जो मुख्य लक्ष्य है, वह नष्ट हो जाएगा। प्रेय श्रेय नहीं है। कठोपनिषद् में यमराज ने नचिकेता से कहा है—'अन्यद् प्रेयः अन्यद् श्रेयः।'

शुद्ध-अशुद्ध अर्थात् ऊँच-नीच वंश में जन्म लेने से क्या लाभ? व्यक्ति चाहे ब्राह्मण जैसी शुद्ध समझी जाने वाली जाति में जन्म ले अथवा शूद्र जैसी अशुद्ध समझी जाने वाली जाति में, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। जाति-विशेष में जन्म लेने से मुक्ति नहीं मिल जाती।

आत्मस्वरूप के परिचय के विना अर्थात् परमशब्द के साक्षात्कार के बिना सारा संसार अर्थात् सभी प्राणी अज्ञान में हैं तथा विषयों में फँसे हुए हैं। यह किसी की समझ में नहीं आता—'न बूझा'। जो मति के हीन अर्थात् अज्ञानी हैं, उनका क्या गुणकथन किया जाय ? ('कौन गुन कहई' अर्थात् गुणकथन यहाँ व्यंग्य के रूप में प्रयुक्त हुआ है। यहाँ 'कौन' शब्द गुण का विशेषण हो सकता है। तब अर्थ होगा—उनके कौन से गुण का वर्णन किया जाय ? अथवा 'कौन' 'कहई' का कर्त्ता हो सकता है, तब अर्थ होगा—कौन ऐसा है जो उनका गुण-वर्णन कर सके)। वे तृष्णा में पड़े हुए हैं और भावी सुखों की आशा से बद्ध हैं।

साखी—'मुवा है' अर्थात् आसक्ति में फँसकर तुम ऐसे ही मर चुके हो। 'मरि जाहुगे' अर्थात् इसी प्रकार विषय-वासना में लगे रहने से सर्वथा विनष्ट हो जाओगे। कहने का तात्पर्य यह है कि जो राग अथवा आसक्ति के वश में है, वही मृत्यु के वश में होता है। वह आसक्ति से खिंचकर पुनः संसार की ओर आता है। जीवन-मरण के चक्र से उसे छुटकारा नहीं मिलता। हे जीव! तुम्हारे भीतर जो वास्तविक आत्मा है, वह अमर है। वह सुख-दुःख, राग-द्वेष के द्वन्द्व से परे है। जो राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों के वशीभूत है, वही मरणशील है। हे जीव! यदि तुम विषयों में आसक्त रहोगे तो तुम भी मृत्यु के चक्कर में पड़ते रहोगे। 'मुए की बाजी ढोल'—मरने वालों की ही ढोल बजती है अर्थात् यही प्रसिद्धि रहती है कि सब प्राणी एक दिन मरेंगे। यह किसी को नहीं पता कि प्रत्येक जीव में एक ऐसा भी तत्त्व है जो अमर है। संसार के सारे प्राणी स्वप्न के समान मिथ्या सुख और लाभ आदि की एषणा में स्नेह अथवा राग रखते हैं। ऐसे प्राणियों की केवल बात अथवा नाममात्र की निशानी रह जाती है।

१२

माटिक[1] कोट पषानक[2] ताला, सोई[3] बन सोई रखवाला।
सो बन देखत जीव डेराना,[4] ब्राह्मन[5] वैष्णव एकै जाना।
जौं[6] रे किसान किसानी करई, उपजै खेत बीज नहिं परई।
छाँड़ि[7] देहु नर झेलिक झेला, बूड़े दोऊ गुरु औ चेला।
तीसर बूड़े पारथि[8] भाई, जिन बन डाहो[9] दावा[10] लाई।
भूँकि भूँकि कूकुर मरि गयऊ, काज न एक सियार[11] से भयऊ॥

१. बा०-माटी कै; २. बा०-पपान कै, ब०-पपाणक; ३. बलि०-सोइक; ४. ब०, ख०-डराना; ५. वं०-ब्राह्मण विष्णु एक करि, ब०, ख०-ब्राह्मण वैष्णव; ६. वं-जोरि, ब०, ख०-ज्यो रि, बलि०-ज्योहिं; ७. वं०-त्यागि; ८. बा०-पारथ; ९. वं०, ब०, खं०-दाह्यो; १०. बा०-दवा लगाई; ११. वं०-स्यार सों, ब०, खं०-स्यार से।

साखी—मूस विलाई[1] एक संग, कहु कैसे रहि जाय।
अचरज[2] एक देखहु हो संतो, हस्ती सिंघहिं[3] खाय॥

शब्दार्थ—कोट = कोष्ठ, (प्र० अ०) शरीर। माटिक = मिट्टी का। ताला = (प्र० अ०) मन। झेलिक झेला = ठेलाठेली, खींचतान, धोखाधड़ी। पारथि = पारधी, शिकारी, बहेलिया, वधिक, (प्र० अ०) मन। कूकुर = कुत्ता (प्र० अ०) अज्ञानी। सियार = (प्र० अ०) वंचक गुरु, धूर्त। वन = (प्र० अ०) संसार, शरीर। सिंह = (प्र० अ०) जीवात्मा, ज्ञान। हस्ती = (प्र० अ०) माया, मन। मूस = चूहा (प्र० अ०) विषयासक्त मन। विलाई = (प्र० अ०) माया। पषान = पाषाण, पत्थर (प्र० अ०) मन, प्राण।

व्याख्या—यह शरीर पार्थिव है अर्थात् मिट्टी का है। इसमें जो रक्षा करने वाला ताला लगा हुआ है, वह पाषाण अर्थात् जड़ बुद्धि या अज्ञान का है। शरीररूपी वन का रखवाला भी उसी दशा में है। अज्ञानजन्य शरीर भी है और अज्ञान रूपी मन ही उसका रक्षक भी है।

भ्रम में पड़ा हुआ जीव भयाक्रान्त होता है, तब वह ब्राह्मण-वैष्णव के पास जाता है। वे (ब्राह्मण-वैष्णव) एक ही बात जानते हैं—वह है किसी देवी-देवता की उपासना। जैसे कोई किसान किसानी करता है और यदि उसे किसानी की कला का रहस्य ज्ञात नहीं है तो खेत में डंण्ठल आदि पर्याप्त रूप में उपजते हैं, किन्तु उनमें बीज नहीं आता, वैसे ही बाहरी पूजा-पाठ करने वाला जीव नाना प्रकार के कायिक-वाचिक कर्मों में फँसा रहता है, परन्तु उसके श्रम से ज्ञानरूपी बीज हाथ नहीं आता। अतः हे मनुष्यो ! यह बेकार का झमेला या खींचातानी छोड़ो, क्योंकि इससे गुरु और चेला दोनों डूब गये और वास्तविक तथ्य हाथ में कभी नहीं आया। मनरूपी पारधी भी इस झमेले के सागर में डूब गया, जिसने शरीररूपी वन में विषयों की आग लगायी थी। अज्ञ जीव कुत्ते के समान भूँक-भूँककर बाह्याचार के चक्कर में मर गये और वंचक गुरुओं से कोई वास्तविक कार्य सिद्ध न हुआ।

इस रमैनी में कबीर का मुख्य ध्येय यह बतलाने का है कि अविद्या में पड़ा हुआ जीव अपनी रक्षा के लिए गुरु की खोज में रहता है, उसको वंचक गुरु मिल जाते हैं जो बाह्याचार तथा शुष्क पूजा-पाठ से उसके कल्याण का उपदेश देते हैं। बेचारा जीव जन्म भर इन ऊपरी क्रिया-कर्मों को करते करते, हूँक-हूँक कर मर जाता है, परन्तु सत्य का, अपने वास्तविक स्वरूप का, उसे ज्ञान नहीं हो पाता। जीव का मन साधक भी है, बाधक भी है—'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।' जब वह विषयों के पाश को त्यागकर अपने वास्तविक स्वरूप अथवा सत्य को जानने की चेष्टा करता है, तब उसका मन मोक्ष का साधन बनता है। परन्तु जब वह विषयों से अलग

---

१. बं०-बिलारी; २. बं०-यक अचरज देखौ संतौ, ब० ख०-अचरज एक देखहु हो, बलि०-सन्तो अचरज देखहु; ३. बं०, ब०, ख०-सिंहहिं।

नहीं होता और यह समझता है कि बाहरी क्रियाकलाप से उसका उद्धार हो जायेगा तो उसका मन केवल बन्धन का ही साधन बनता है। उसको समाज में ब्राह्मण-वैष्णव आदि गुरु कहे जाने वाले जो लोग मिलते हैं, वे उसके अज्ञानलिप्त मन के अनुकूल बाह्याचार का ऐसा मार्ग बतलाते हैं, जिससे उसको विषयों का, जिनमें वह रत है, त्याग न करना पड़े और यों ही मुक्ति भी हाथ में आ जाए। कबीर कहते हैं कि अज्ञ जीव को इस कठोर सत्य को समझना होगा कि विषयानुराग छोड़कर आत्मा के वास्तविक स्वरूप की जानकारी के बाद ही उसका चरम कल्याण हो सकता है।

साखी—जब तक ज्ञान के बाण द्वारा माया अथवा अज्ञान का भेदन नहीं होगा, तब तक जीव का वास्तविक मोक्ष नहीं हो सकता। जीव चूहे के समान है और माया का अज्ञान-जाल बिल्ली के समान है। दोनों एक साथ कैसे रह सकते हैं अर्थात् अज्ञानरूपी माया जीवरूपी चूहे को खा जाएगी। हे सन्तो। कितने आश्चर्य की बात है कि जो जीव अपने वास्तविक स्वरूप में सिंह के समान है, बलिष्ठ और निर्भीक है, किन्तु उसे मायारूपी हाथी खाये जा रहा है।

टिप्पणी—यहाँ एक ही माया के दो प्रतीक दिये गये हैं—बिलाई और हस्ती।

१३

(माया से सावधानी प्रकरण)

नहिं[1] परतीत जो यहि संसारा, दरब[2] की चोट कठिन कै मारा।
तासे[3] सेवहु[4] जाइ लुकाई, काहू कै परतीति[5] न आई।
चले लोग[6] सब मूल गँवाई, जम[7] की बाढ़ि काटि नहिं जाई।
आजु काज है[8] कालिह अकाजा, चलेउ[9] लादि दिगन्तर राजा।
सहज विचारत[10] मूल गँवाई[11], लाभ ते हानि होय रे[12] भाई।
वोछी[13] मति चंदा गो अथई, त्रिकुटी संगम स्वामी[14] बसई।
तबही बिस्नु[15] कहा समुझाई, मिथुन[16] आठ तुम जीतहु जाई।
तब सनकादिक तत्तु[17] विचारा, ज्यों[18] धन पावहिं रंक अपारा।
भौ[19] मरजाद[20] बहुत सुख लागा, यहि लेखे सब संसय[21] भागा।

---

१. ब०, ख०-नाहिं प्रतीजै; २. बं०, ब०, ख०-द्रव्यक; ३. बा०-सो तौ; ४. बं-शेपै; ५. बा०-परतीत; ६. बं-लोक; ७. अन्य प्रतियों में 'यम'; ८. बं०-जिय, बलि०-जिव; ९. बा०-चले; १०. बा०-विचारै; ११. ब०, ख-गमाई; १२. ब०, ख०-रि; १३. अन्य प्रतियों में-ओछी मतीचन्द्र; १४ बा०-सामी १५. अन्य प्रतियों में-विष्णु; १६. अन्य प्रतियों में-मैथुन अष्ट; १७. अन्य प्रतियो में-तत्व; १८. बा०-जौ; १९. बलि०-भव; २० अन्य प्रतियों में-मर्याद; २१. अन्य प्रतियों में-संशय।

देखिनि[1] उतपति लागु न बारा, एक मरै एक[2] करै विचारा।
मुए गए की कोई[3] न कहई, झूठी आस लागि जग[4] रहई॥
साखी—जरत जरत से[5] बाँचिहो, काहे[6] न करहु गोहारि।
विष विषया कै[7] खायहु, राति दिवस मिलि झारि॥

शब्दार्थ—दरब = द्रव्य, धन, सांसारिक उपलब्धियाँ, (ला० अ०) पंचभूत, प्रकृति। बाढ़ि = वृद्धि, प्रभाव। लुकाई = छिपाई। परतीति = विश्वास। अथई = अस्त, नष्ट हो गया। सेषहु = इन्द्रियातीत, अविनाशी, सभी के विनष्ट हो जाने पर जो शेष रहता है। सहज = स्वभावतः। दिगन्तर = भिन्न-भिन्न दिशाओं (योनियों) में जाना। राजा = शरीर का राजा, जीव। गो = गया, इन्द्रिय। चन्दा = चन्द्र (प्र० अ०) मन। मिथुन = भोग। त्रिकुटी = दोनों भौहों के मध्य का स्थान, यहाँ आकर तीनों नाड़ियाँ (इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना) मिलती हैं। आठ मैथुन = (i) श्रवण, कीर्तन, सुमिरन, चिन्तन, एकांन्त, वार्तालाप, दृढ़ संकल्प, प्राप्ति। अथवा (ii) आठ प्रकार से भोग-मन, बुद्धि, अहंकार और पाँच इन्द्रियाँ। उतपति = पुनर्जन्म। मरजाद = प्रतिष्ठा। बारा = विलम्ब। गुहार = पुकार।

व्याख्या—यह इन्द्रियगोचर संसार विश्वास के योग्य नहीं है अर्थात् वह पारमार्थिक सत्ता नहीं है। मायिक शक्ति या प्रकृति की चोट कठिन आघात के समान है अर्थात् मायिक पंचभूत आदि को देखकर जीव आक्रान्त हो जाता है और समझता है कि यही वास्तविक सत्ता है। उसके आवरण में शेष अर्थात् अविनाशी सत्य भी छिप जाता है। यह किसी की समझ में नहीं आता कि इस परिवर्तनशील जगत् के भीतर एक अपरिवर्तनीय तत्त्व भी है।

इन्द्रियातीत सत्य अथवा सार-शब्दरूपी मूलधन को गँवाकर सब लोग संसार से चल बसे। यम की वृद्धि कम नहीं की जा पाती है। लोग मर-मरकर उसके भाण्डार की वृद्धि कर रहे हैं। अपना कर्त्तव्य आज ही अर्थात् इस देह के रहते ही समझ लेना चाहिए। भविष्य के लिए छोड़ देने से हानि ही होगी। यह जीव पुण्य-पाप अथवा शुभाशुभ कर्म का बोझा लादकर भिन्न-भिन्न योनियों में जाता है। (उपनिषदों ने जीव के इस संसरण का उदाहरण 'तृण जलौका न्याय' से दिया है। जैसे जोंक एक तृण के सहारे दूसरे तृण पर जाती है, वैसे ही जीव वासना के वश एक योनि को छोड़कर दूसरी योनि को पकड़ता हुआ भ्रमण करता रहता है)। वह स्वभावतः बाह्य पदार्थों से आकृष्ट होता है और उन्हीं को सब कुछ समझता है—सहज विचारत। परिणाम यह होता है कि उसमें जो सार शब्द अथवा परमार्थ सत्य आत्मा है, उस मूल को ही वह खो बैठता है। इस प्रकार वह जीवन रूपी व्यापार में मूलधन को ही

१. वं; बलि०-देखत उतपत्ति; २. बं०-यक; ३. बं०, बलि०-काहु न कहो; ४. बं०-जब रही; ५. बं०-से बाचहू ब०, ख०-ते बाँचेहु; ६. ब०, ख०-काहुकरहु, बलि०-काहु न कीन्ह; ७. ब०, ख०-कहँ, बलि०-की।

गँवा देता है। हे भाई! विषयासक्ति अथवा जिन्हें वह इष्ट पदार्थ समझता है, उनमें रमण करने से अथवा उनको ग्रहण करने की इच्छा से लाभ की अपेक्षा उसे हानि ही होती है।

तुच्छ बुद्धि वाला चन्द्रमा अपने गुरु बृहस्पति की पत्नी में आसक्त होकर नष्ट हो गया। श्लेष के द्वारा इसका दूसरा अर्थ है—क्षुद्र मन इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होकर नष्ट हो गया।

सांसारिक जीव भौंहों के मध्य त्रिकुटीचक्र में वास करता है और वहीं भोग्य पदार्थों की ओर आकृष्ट होता है, क्योंकि वह आत्म-विचार नहीं करता। (दोनों भौंहों के मध्य आकर तीनों नाड़ियाँ—इडा, पिंगला और सुषुम्ना मिलती हैं। इसीलिए इसे 'त्रिकुटी' कहते हैं। योगियों की भाषा में इड़ा–पिंगला–सुषुम्ना को क्रमशः गंगा–यमुना–सरस्वती कहते हैं। इनका संगम प्रयाग है। इसीलिए इस त्रिकुटी को भी संगम कहा जाता है।)

तब विष्णु (सात्विक महात्मा या सद्गुरु) ने समझाकर कहा कि हे जीव! तुम आठ प्रकार के भोगों पर विजय प्राप्त करो। (भोग आठ प्रकार से होता है—मन, बुद्धि, अहंकार और पाँच इन्द्रियाँ भोग की साधन हैं)। तब सनक-सनन्दन आदि ने जीवन के तत्त्व पर विचार किया और उसके रहस्यको समझ कर वे वैसे ही आनन्दित हुए, जैसे कोई दरिद्र अपार धन पाने पर होता है। (यदि 'जैसे रंक पावा धन पारा' पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा—जैसे दरिद्र पड़े हुए धन को प्राप्त कर आनन्दित होता है।)

त्रिकुटी में स्थित रहने से अथवा केवल मैथुन आदि विषयों के त्याग से सार तत्त्व नहीं मिलता। सनकादि ने निरासक्ति अथवा विषय-भोग-त्याग को ही तत्त्व समझ लिया और आनन्दित हुए। उनकी बड़ी प्रतिष्ठा भी हुई। इससे उन्होंने समझा कि हमारे सब सन्देह दूर हो गये हैं। किन्तु किसी ने यह नहीं समझा कि केवल त्याग से सार-तत्त्व नहीं प्राप्त हो सकता है। अपने को ज्ञानी समझने वाले लोगों ने भी यह देख लिया है कि केवल थोथे ज्ञान और त्याग से पुनर्जन्म होने में विलम्ब नहीं लगता।

जीव लोगों को मरते हुए देख रहा है, फिर भी वह संसार के सुख की कामना किया करता है, मानों वह अमर है। जो मर गया है और यहाँ से चला गया है, उसकी क्या दशा होती है, यह कोई नहीं कह सकता। फिर भी भविष्य के लिए संसारी लोगों में एक झूठी आशा लगी रहती है।

साखी—तृष्णा और अज्ञान एक जलती हुई शिखा है। इस अग्नि से बचने के उपाय के लिए सद्गुरु की पुकार क्यों नहीं करते? अर्थात् सद्गुरु की शरण में क्यों नहीं जाते? दिन-रात डट कर अच्छी तरह से विषयरूपी विष को खाते रहते हो। फिर भी यह समझ में नहीं आता कि उस सार-तत्त्व को हम जानें जिससे जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होकर अपने स्वरूप में स्थित हो सकें।

टिप्पणी (i) विषय को मनुष्य सुख समझता है। परन्तु जिस प्रकार विष-सम्पृक्त मधु केवल मरण का ही कारण होता है, वैसे ही साधारणतः इन्द्रियों को सुख देने वाला विषय भी विष के समान विनाश का कारण होता है।

(ii) विष्णु को सत्त्वगुणसम्पन्न माना गया है:—

रजगुण ब्रह्मा, तमगुण शंकर, सतगुनी हरि सोई।

१४

वड़ सो पापी आहिं[1] गुमानी, पाखंड रूप छलो[2] नर जानी।
बावन[3] रूप छलो[4] बलि राजा, ब्राह्मन[5] कीन कौन को[6] काजा।
ब्राह्मन[7] ही सर्व[8] कीन्हो चोरी, ब्राह्मन[9] ही को[10] लागल[11] खोरी।
ब्राह्मन[12] कीन्हो ग्रंथ पुराना[13], कैसहु कै मोहि मानुष जाना।
एक[14] सै ब्रह्मै पंथ चलाया, एक[15] से हंस गोपालहिं गाया।
एक[16] से शिभू[17] पंथ चलाया, एक[18] से भूत प्रेत मन लाया।
एक[19] से पूजा जैनि[20] विचारा, एक[21] से निहुरि निमाज गुजारा।
कोउ[22] काहु को हटा[23] न माना, झूठा खसम कबीर न जाना।
तन मन भजि[24] रहु मोरे[25] भक्ता, सत्त[26] कबीर सत्त[27] है वक्ता।
आपुहि देवा[28] आपुहि पाती, आपुहि कुल आपुहि[29] है जाती।
सर्वभूत संसार निवासी, आपुहि खसम[30] आपु सुखरासी[31]।
कहते[32] मोहि भये[33] जुग चारी, काके आगे कहों पुकारी॥
साखी—साँचहि[34] कोई न मानई[35], झूठहि[36] के संग जाय।
झूठहि[37] झूठा मिलि रहा, अहमक खेहा खाय॥

शब्दार्थ—गुमानी (फा०) = अहंकारी, घमण्डी, मिथ्याभिमानी। जानी = मालूम है, ज्ञात है। बावन = वामन। चोरी = छिपाना। खोरि = खोटि, दोष,

---

१. आय; २. ब०, ख०—छल्यो नल; ३. बं०, ब०, ख०—वामन; ४. बं०, ब०, ख०—छल्यो; ५. अन्य प्रतियों में—ब्राह्मण; ६. बं०-सो; ७. अन्य प्रतियों में-ब्राह्मण; ८. बा०-कीन्हा सब; ९. अन्य प्रतियों में-ब्राह्मण; १०. ब०, ख० कहँ; ११. बं०—लागो; १२. अन्य प्रतियों में—ब्राह्मण; १३. बं०, ब०, ख०-पुराण; १४. ब०-इक, बं०-यक; १५. बं०-यक, ब०-इक; १६. बं०-यक, ब०-इक; १७. अन्य प्रतियों में-शम्भू; १८. बं०-यक, ब०-इक; १९. बं०-यक, ब०-इक; २०. बं०-जौन; २१ बं०-यक, ब०-इक; २२. बं०, बलि-कोई; २३. बा०-वहा; २४. ब०, ख०-मारि; २५. बं०-मेरे, ब०-मोर; २६. अन्य प्रतियों में-सत्य; २७. अन्य प्रतियों में-सत्य; २८. बं०, ख०-बलि देव आपुही; २९. ख०-आपुही, बलि०-आपहिं; ३०. बं०-कुसुम; ३१. बा०-बासी; ३२. बा०-कहइत; ३३. बा०-भैल; ३४ बं०-साँचो; ३५. बा०-मानै; ३६. बा०-झूठा; ३७. ब०-झूठे।

धूर्तता। हंस = सूर्य। निहुरि = झुककर। खसम = ईश्वर। अहमक = अविवेकी, अज्ञानी जीव। खेहा खाना = धूल फाँकना, दुःख भोगना।

व्याख्या—कबीरदास ने इस रमैनी में ऐसे तथाकथित ज्ञानियों के आडम्बर की पोल खोली है जो अपने को तत्त्वदर्शी समझने का मिथ्याभिमान करते हैं और ऊपरी पाषण्ड द्वारा जनता को छलते और भ्रान्त करते हैं। वह कहते हैं कि जो मिथ्याभिमानी बने हुए पथ-प्रदर्शक हैं, हम अच्छी तरह से जानते हैं कि वे बहुत बड़े पापी हैं और अपने पाषण्ड से मनुष्यों को ठगते हैं।

ब्राह्मण ने ही वामन के रूप में राजा बलि को छला। ब्राह्मण ने भला किसका काम बनाया है ? ब्राह्मण ने ही सब पापण्ड मचाया है। वेद, शास्त्र आदि के अध्ययन का अधिकार समाज के केवल विशेष वर्ग या जाति को ही है। वे दूसरों से उस ज्ञान को चुराकर या छिपाकर रखते हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि जनता के पतन का सारा दोष ब्राह्मण को ही लगे।

ब्राह्मण ने ही धर्म के नाम पर पुराण आदि ग्रन्थों में नाना प्रकार के देव-देवियों की कथाओं से अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए भोली-भाली जनता को आकृष्ट किया। उन्होंने इन ग्रन्थों को केवल इसलिए बनाया कि लोग ब्राह्मणों को ठग न समझें और किसी प्रकार उनको केवल उपकारी मनुष्य समझें जिससे वे उनकी (ब्राह्मणों की) चाल को न भाँप सकें।

उन्होंने भिन्न-भिन्न पुराणों के द्वारा भिन्न-भिन्न पन्थ चलाये। एक के द्वारा ब्रह्मा की श्रेष्ठता प्रतिपादित की, दूसरे के द्वारा विष्णु के अवतार कृष्ण की; एक से उन्होंने शैव-मार्ग चलाया और अन्य पन्थ से उन्होंने मनुष्यों के मन को भूत-प्रेतादि में लगाया।

कबीरदास पुराणपन्थी धर्मग्रन्थों के विरुद्ध थे—चाहे वह ब्राह्मण पुराण हों, जैन पुराण हों या इस्लामी पुराण हों। इसीलिए वह कहते हैं कि कुछ पुराणों से बाह्याचार को बढ़ावा मिला, कुछ (जैन पुराणों) द्वारा जैन-सम्प्रदाय के विचारों का प्रचार किया गया और कतिपय इस्लामी बाह्याचारों के प्रतिपादक ग्रन्थों द्वारा झुककर नमाज पढ़ने की शिक्षा दी गयी।

भिन्न-भिन्न विरोधी उपदेशों का परिणाम यह हुआ कि किसी ने भी किसी के निषेध या मनाही को नहीं माना अर्थात् एक सच्चे मार्ग का अवलम्बन किसी ने नहीं किया। कबीर झूठे स्वामी को स्वामी नहीं मानते। वह कहते हैं—हे मेरे सन्त जनों ! तुम तन-मन से एक सत्य सार-शब्द की उपासना करो। (यदि 'तनमन मारि रहु मोरे भक्ता', पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा—झूठे स्वामी और मार्गों से अपने तन-मन को मारे रहो अर्थात् रोके रखो।)

कबीर ने सत्य का दर्शन किया है। वे ही सद्गुरु हैं। इसीलिए वे सत्य के वक्ता हैं। वास्तविक सत्य आत्मा है। वही देव भी है और वही पुष्प-पत्र भी है। सभी कुलों

और जातियों में भी वही है। कुल और जाति का बाह्य भेद व्यर्थ है। आत्मा ही सब प्राणियों में और संसार में निवास करने वाला है। वही वास्तविक स्वामी है और वही आनन्द की राशि है अर्थात् आनन्दघन है। कबीर कहते हैं कि मुझे यह उपदेश देते हुए चारों युग बीत गये, परन्तु कोई समझता नहीं है। अब किसके आगे पुकारकर कहूँ?

साखी—सत्य को कोई नहीं मानता। कृत्रिम, आकर्षक और झूठे गुरुओं का सब साथ करते हैं या अनुसरण करते हैं। गुरु भी झूठा और चेला भी झूठा। जैसा शिष्य, वैसा गुरु। बेचारा अविवेकी, अज्ञानी जीव ऐसे गुरुओं का अनुसरण करके दुःख ही भोगता है।

१५

(भव-पन्थ खेद प्रकरण)

उनई[1] बदरिया परिगौं[2] संझा,[3] अगुआ भूले वनखंड मंझा[4]।
पिया अनते धनि[5] अनतें[6] रहई, चोपरि[7] कामरि माथे गहई।
साखी—फुलवा भार न लै[8] सकै, कहै सखिन सों रोय।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी, त्यों त्यों भारी होय॥

शब्दार्थ—उनई = सं० उन्नय, ऊपर आना, घिरना। चौपरि = सं० चतुष्पद, चार पर्त वाली कमली। (प्र० अ०) चार अवस्थाएँ—बाल, किशोर, युवा और वृद्धावस्था अथवा अन्तःकरण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार)। बदरिया = (प्र० अ०) अज्ञान, मोह की काली घटा। संझा = सन्ध्या, जीवन का अन्तिम समय। अगुआ = उपदेशक, गुरुआ लोग। वनखण्ड = (प्र० अ०) वेद, पुराण के भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों का विकट जाल, जिनमें फँसकर ठीक रास्ता मिलना कठिन है। पिया = प्रिय, परमात्मा। धनि = पत्नी, जीव। कामरि = (प्र० अ०) शरीर। फुलवा = (प्र० अ०) जीव।

व्याख्या (प्रस्तुतार्थ)—इस रमैनी में कबीर ने एक सुन्दर रूपक बाँधा है। इसमें प्रस्तुत कथन यह है कि प्रिया अपने प्रियतम से मिलने के लिए जा रही है। इसी बीच मेघ घिर आये हैं, रिमझिम वर्षा प्रारम्भ हो जाती है, अन्धकार छा जाता है, सामने अरण्य है और पथ-प्रदर्शक (दूती) स्वयं रास्ता भूल गया है। वर्षा से बचने के लिए प्रिया ने सिर पर चौपर्ता कम्बल डाल रखा है। ज्यों-ज्यों पानी पड़ता है, वह कम्बल भारी होता जाता है और बेचारी प्रिया अपने प्रिय से मिल भी नहीं पाती।

---

१. छ. वोनई, बलि०-ओनई; २. बं०-परिगै; ३. बं०-सांझा; ४. बं०-मांझा; ५. छ. धनी, बं० धन; ६. अन्य प्रतियों में-अन्ते; ७. छ० चौपरी कामरी; ८. ७. ले सके।

अप्रस्तुतार्थ—अज्ञान रूपी बादल की घनघोर घटा छा गयी, वासना आदि की रिमझिम वर्षा होने लगी, ज्ञानरूपी सूर्य छिप गया और चारों ओर अन्धकार छा गया। जीवन की सन्ध्या-वेला अर्थात् अन्तिम समय आ गया। उपदेशक गुरुआ लोग स्वयं वेद-पुराण के मत-मतान्तर के बीच में राह को भूलकर वास्तविक पथ-प्रदर्शन में असमर्थ हो गये।

पुराण-पन्थी लोग परमात्मा को आत्मा से अलग मानकर कहीं सातवें आसमान पर बिठाये रहे और जीव अपने को उससे अलग मानकर उसको खोजता रहा। उधर जीवन की सन्ध्या आ गयी, अज्ञान का बादल छा गया, मत-मतान्तरों के अरण्य में पथ-प्रदर्शक स्वयं मार्ग भूल गये, कोई रास्ता दिखलाने वाला न रहा। जब अपना प्रियतम अन्यत्र है और उसकी प्रिया आत्मा अन्यत्र है, चारों ओर अन्धकार है और ठीक पथ-प्रदर्शक भी नहीं है तो आत्मारूपी प्रिया परमात्मारूपी प्रियतम के पास कैसे पहुँचे? बेचारा जीव बाल, किशोर, युवा और वृद्धावस्थारूपी चार पर्तों वाला कम्बलरूपी शरीर ओढ़े हुए इस अज्ञान-वन में भटक रहा है। (चौपरि कामरि का दूसरा अर्थ हो सकता है—अन्तःकरण चतुष्टय—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का बोध रखे हुए।)

साखी—बेचारा जीव चारों अवस्थाओं अथवा अन्तःकरण चतुष्टय का भार सम्हाल नहीं पाता और अन्य सभी जीवों से रोकर अपनी दुःखद कहानी कहता है कि ज्यों-ज्यों कम्बल भीगता जाता है अर्थात् अवस्था ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है या अन्तःकरण ज्यों-ज्यों विषयों में फंसता जाता है, त्यों-त्यों यह कम्बलरूपी शरीर और बोझ बनता जाता है।

——

१६

चलत चलत अति चरन पिराना, हारि परे तहाँ अति[1] रिसियाना।
गन गंधर्व[2] मुनि अंत न पाया, हरि[3] अलोप जग धंधे लाया।
गहनी[4] बंधन बानि[5] नहिं सूझा, थाकि परे तब किछवो[6] न बूझा।
भूलि परे जीव[7] अधिक डेराई, रजनी अंध कूप हाय आई[8]।
माया मोह उहाँ भरपूरी[9], दादुर[10] दामिनी पवन[11]-अपूरी।
बरिसै तपै अखंडित धारा, रैनि भयावन किछू न अधारा[12]।

१. बा०-रे सयाना, बं-खिसियाना; २. बा०-गंध्रप; ३. बं०-हारि; ४. ब०-गहीन, ख०-गहिन; ५. बा०-बान, बं०-बाँध, ख०-बाणी; ६. ब०, ख०-कछु नहिं; ७. बा०-जिउ, बं०, बलि०-जिय; ८. बं-जाई; ९. बं०, ख०, बलि०-भरिपूरी; १०. बा० दादुल; ११. बं०-बलि०-पवनहु पूरी; १२. बा०-अहारा।

साखी—सबै लोग जँहडाइया, अंधा सबै भुलान।
कहा कोई मानै नहीं, सब एकहि माहिं समान ॥

शब्दार्थ—जँहडाइया = ठगा जाना, हानि उठाना। अपूरी = आपूर्ण, भरपूर। रिसियाना = रुष्ट होना। रजनी = (प्र० अ०) अज्ञान, अविद्या। गहनी = पकड़ लिया। अंधकूप = जिसमें कुछ दिखायी न पड़े।

व्याख्या—वन में चलते-चलते चरणों में पीड़ा होने लगी, अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ, हार मानकर खीझ गये। कहने का तात्पर्य यह है कि सकाम कर्म और उपासना करते-करते थक गये और हार मानकर खीझ उठे। लक्ष्य प्राप्त नहीं हुआ। 'चलत चलत' मे एक व्यञ्जना यह भी है कि अनेक योनियों में भ्रमण करते रहे, किन्तु अपना लक्ष्य न मिला।

जिस अव्यक्त हरि का अन्त स्वयं बड़े-बड़े गणदेव, मुनि और गन्धर्व भी नहीं पा सके, उसको पाने के निमित्त उन्होंने सारे संसार को काम्य-कर्मरूपी धन्धे में व्यर्थ में लगा दिया।

सकाम कर्म उपासना आदि रूप को जीव ने ग्रहण कर लिया। सद्गुरु की वाणी किसी को सूझ न पड़ी। पौराणिक देवी देवताओं का भजन और उपासना करते हुए थक गये और कुछ समझ में नहीं आया।

यहाँ पिछला रूपक फिर चलता है। चलते-चलते वन में रास्ता भूल गये और अधिक भय से आक्रान्त हो गये। अन्धकूप की तरह रात का अन्धकार फिर आया अथवा अज्ञानरूपी रात्रि अन्धकूप हो गयी। इस मार्ग में माया और मोह का पूरा साम्राज्य है। अज्ञान की अन्धेरी रात में मेढ़क टर्र-टर्र कर रहे हैं, बिजली कौंधती है और जोर का झंझावात बहता है। इस रूपक में नाना प्रकार के पन्थियों के अलग-अलग मनोमोहक उपदेश को मेढ़क की टर्र-टर्र के समान बताया गया है। त्रय-ताप की अखण्ड धारा बरसती है। इन सब कारणों से रात अत्यन्त भयावनी हो जाती है और कोई रास्ता नहीं मिलता। तात्पर्य यह है कि अज्ञान या मोह की अन्धेरी रात है। भिन्न-भिन्न पन्थों के अगुआ लोगों के मिथ्या उपदेशों की टर्र-टर्र सुनायी पड़ती है। आकर्षक प्रलोभनों और आश्वासनों से मनुष्य चकाचौंध में पड़ जाता है, भ्रम की आँधी जोरों से चलती है। अविद्या के बादल झमझमकर अपना गरम पानी बरसा रहे हैं। इस अज्ञानरूपी अँधेरी रात में बेचारे जीव को कोई रास्ता नहीं मिलता है।

साखी—ज्ञान-नेत्र से रहित होने के कारण अन्धे के सदृश लोग वास्तविक मार्ग भूले हुए हैं। सद्गुरु की वाणी कोई मानने को तैयार नहीं है और सभी लोग एक ही गलत रास्ते पर चले जा रहे हैं।

१७

(अविवेकादि प्रकरण)

जस जिव आपु मिलै अस कोई, बहुत धर्म सुख हृदया होई।
जासों बात राम की कही, प्रीति न काहू सो निरवही[1]।
एकहि भाव सकल जग देखी, बाहर परैं[2] सो होय विवेकी।
विषय मोह के फंद छोड़ाई, तहँई[3] जाय जँह[4] काट कसाई।
आहि[5] कसाई छूरी हाथा, कैसहु आवै काटै[6] माथा।
मानुस[7] बड़े बड़े ह्वै आए, एकै पंडित सबै पढ़ाए।
पढ़ना पढ़हु धरहु जनि[8] गोई, नहिं तौ निश्चय जाहु बिगोई॥
साखी—सुमिरन करहु राम कैं[9], छाड़हु दुख के आस।
तर ऊपर धै चाँपिहि[10], जस कोल्हु कोटि पचास॥

शब्दार्थ—विगोई = विगोपन, नष्ट करना। फंद = बन्धन। चाँपिहि = पीस डालेंगे।

सन्दर्भ—इसके पूर्व की रमैनी में कबीर यह बतला आये हैं कि व्यावसायिक ठग गुरुआ लोग, जो पथ-प्रदर्शन का दावा करते हैं, वस्तुतः वे बेचारे भोले-भाले जीवों को केवल धोखा देते हैं और कर्मकाण्डी उपासना में पड़कर जीव सत्य-पथ से विलग हो जाता है।

व्याख्या—प्रस्तुत रमैनी में वह यह कहते हैं कि अनुरागी या जिज्ञासु जीव के ही मिलने पर उपदेश सफल होता है। एक सामान्य सिद्धान्त है कि जैसा कोई अपने आप जीव होता है, उसी प्रकार का कोई अनुरागी जीव जब मिलता है, तब उसको उपदेश करने से, वह धर्म का पालन करता है और हृदय में सुख होता है। तात्पर्य यह है कि कोई अनुरागी या जिज्ञासु जीव मिले और उसको उपदेश दिया जाय, तब धर्म की वृद्धि और हृदय में सुख होता है। यदि ऐसा व्यक्ति नहीं मिलता तो अन्य पर उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यद्यपि राम घट-घट में व्याप्त हैं और अपना ही स्वरूप हैं तथापि अनुरागी अधिकारी जीव न मिलने के कारण जिस किसी से राम की बात कही जाती है, वह राम के प्रति सच्चे प्रेम का निर्वाह नहीं कर पाता है।

सारा जगत् मायिक है। इसी एक भाव से जो संसार को देखकर उसमें लिप्त नहीं होता अर्थात् जगत् में रहता हुआ भी जगत् से बाहर रहता है, वही सच्चा विवेकी है। यदि जीव किसी प्रकार से विषय-मोह के बन्धन को छोड़ पाता है तो भी वह ऐसे ही गुरुआ लोगों की शरण में जाता है; जो कसाई के समान हाथ में छुरी लिये तैयार रहते हैं और उसकी हत्या ही करते हैं अर्थात् कनफुकवा गुरुआ लोग उसे किसी

१. अन्य प्रतियों में-निर्वही; २. ब०, ख०-परु; ३. बा०, ब०, ख०-तहाँ; ४. बा०-जहाँ; ५. बा०, बलि०-अहै; ६. बं०, बलि०-काटौं; ७. छ०-मानुस बड़े बड़ा होय आया, एकै पंडिते सभन्हि पढ़ाया। ८ बं०-जिन; ९. बा०-के, बं०-सुराम को, बलि०-नाम की; १०. बा०-चापिहैं।

अनात्म पदार्थ में अथवा बाह्य उपासना में फँसा देते हैं। इस प्रकार से उसकी आत्महत्या हो जाती है। इसीलिए वे कसाई के समान हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के गुरु आत्मघाती होते हैं, जीव को आत्माराम से विमुख करते हैं, बाहरी देव-देवियों की उपासना में लगाने के कारण वे अज्ञ, अविवेकी गुरु एक प्रकार से आत्मघाती ही होते हैं।

संसार में बड़े से बड़े मनुष्य ने जन्म लिया, किन्तु कनफुकवा गुरुआ लोगों ने सबको एक ही पाठ पढ़ाया अर्थात् सर्वव्यापी तत्त्व जिसका अपने भीतर ही साक्षात्कार किया जा सकता है, उससे विमुख करके किसी बाहरी इष्टदेव या देवी की उपासना में लगा दिया।

सार पाठ यह है कि एक ही रामतत्त्व सबमें व्याप्त है और तुम्हारे भीतर भी वही है। इसी को पढ़ो। इसे छिपाकर मत रक्खो अर्थात् श्रवण के बाद इस पर मनन और निदिध्यासन करो, अन्यथा निश्चय ही तुम्हारा विनाश होगा। परमार्थ को न जानना ही विनाश है।

साखी—सारतत्त्व राम का स्मरण, मनन और ध्यान करो और स्वर्गादि, जिसको तुमने सुख समझ रखा है, वास्तव में वह दुःख है, उसकी आशा छोड़ो, अन्यथा पचास करोड़ अर्थात् अनेक कर्म-भोगरूपी कोल्हू आकाश (ऊपर) और पाताल (नीचे) के बीच में पकड़कर तुम्हें पीस डालेंगे।

१८

अद्भुद[1] पंथ बरनि नहिं जाई, भूले राम भूलि[2] दुनियाई।
जौं चेतहु तौ चेत[3] रे भाई, नहिं तौ जीवहिं[4] जम लै जाई।
शब्द न चीन्हैं[5] कथये ज्ञाना[6], ताते जम दीयो[7] है थाना।
संसै सावज बसै सरीरा, ते खायो[8] अनवेधा हीरा॥

साखी—संसै सावज सरीर मँह, संगहि खेल जुआरि।
ऐसा घाई[9] बापरा, जीवहि मारै झारि॥

शब्दार्थ—भूले = भूल गये, भटके हुए। सावज = सं०-शावक, मृग, (प्र० अ०) मन। अनवेधा हीरा = (प्र० अ०) अन्तरात्मा, जिसमें कोई छिद्र या दोष

---

१. बं०, ब०, ख०, बलि०-अद्‌भुत; २. बा०-भूली; ३. बा०-चेतहु रे; ४. बा०-जीव, बं०-जिय जरि मूलै; ५. बा०-मानै; ६. बं०-विज्ञाना; ७. बा०-दीया, बं०-दीन्ह्यो; ८. बा०-खायो अनबेधल, ब०, ख०-खायल अनवेधल; ९. बा० घायल।

नहीं है और जो सदा प्रकाशमान है। शब्द = सार शब्द। थाना = स्थान। घाई = घातक। बापुरा = बेचारा। अद्‌बुद = अद्‌भुत, आश्चर्यजनक।

व्याख्या—इसके पूर्व की रमैनी में कबीर नाना साम्प्रदायिक पन्थों को सच्चे मार्ग से विपथ (गुमराह) करने वाला बतला चुके हैं। अब वह अपने पन्थ के विषय में कहते हैं कि यह अद्‌भुत पन्थ है। इसका वर्णन करना कठिन है। लोग राम अर्थात् अन्तरात्मा को भूल गये हैं और सांसारिक जाल में भटक रहे हैं। 'हे भाई! यदि तुम चेत जाओ तो ठीक ही है, अन्यथा तुम यम के शिकार बनोगे अर्थात् जन्म-मरण के चक्कर में पड़े रहोगे और अमरत्व के पद को प्राप्त नहीं कर सकोगे।'

गुरुआ लोग सार-शब्द को पहचानते नहीं और ज्ञान की बातें करते हैं। इसलिए यम ने लोगों में अपना स्थान बना लिया है अर्थात् लोग यम के शिकार बनते रहते हैं।

इस शरीर में संशयरूपी मृग अर्थात् संकल्प-विकल्पात्मक मन का वास है। वह छिद्र अथवा दोषरहित हीरे अर्थात् अन्तरात्मा को चरता रहता है अर्थात् भ्रम में डाले रहता है। (यहाँ 'अनबेधा हीरा' में 'अनवेधा' शब्द अन्तरात्मा की निर्दोषता का प्रर्तक है और 'हीरा' उसके प्रकाश तथा अमूल्य होने का प्रतीक है।) मन का स्वभाव है—संकल्प-विकल्प करना। वह मनुष्य के शरीर में रहता है और उसको भटकाता फिरता है। नाना प्रकार के मत-मतान्तरों को सुनकर बेचारा जीव और भी संशयग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार प्रकाशस्वरूप और दोषरहित अन्तरात्मारूपी हीरा, जो घट-घट में विद्यमान है, को वही संशययुक्त मन खा जाता है अर्थात् उसके स्वरूप को व्यक्त नहीं होने देता है।

साखी—यह संकल्प-विकल्पात्मक मन जीव को सत्य नहीं ग्रहण करने देता है, उसे बराबर संशय में डाले रहता है। विकल्प का भाव ही है—विशेषरूप से कल्पना करना, विविधरूप से कल्पना करना। सत्य तो एक है, किन्तु विकल्प अनेक हैं। इसी को मन का जीव के साथ जुआ खेलना कहा गया है। जुआ खेलने में जुआरी को सद्यः लाभ की आशा रहती है और थोड़े लाभ से और लोभ बढ़ता है। इसी प्रकार मन जीव को सरलता से प्राप्त सांसारिक सुखों की ओर उन्मुख करता रहता है और एक सुख मिलने पर अन्य सुखों की लालसा बढाता रहता है। इसीलिए कबीर ने कहा है कि—'संगहि खेलै जुआरि।' यह संशयरूपी मृग ऐसा घातक होता है कि जीव को सर्वत्र खोज-खोजकर मारता है अर्थात् सभी जीव अन्तर में सत्य विद्यमान रहते हुए भी संशय के कारण विनाश के शिकार बनते हैं।

टिप्पणी—गीता में भी कहा गया है—संशयात्मा विनश्यति।

१९

अनहद अनुभव की[1] करि आसा, देखहु[2] यह विपरीत तमासा।
इहै तमासा देखहु[3] भाई, जहवाँ[4] सुंन तहाँ चलि जाई।
सुंनहि वांछा[5] सुंनहि गैऊ, हाथा छाड़ि वेहाथा भैऊ।
ससै सावज सब[6] संसारा, काल अहेरी सांझ सकारा॥
साखी—सुमिरन करहु[7] राम के, काल गहे है केस।
ना[8] जानहु कब मारिहैं[9], का[10] घर का[11] परदेस॥

शब्दार्थ—वाँछा = सं०-वाञ्छा, इच्छा। सुंनहि = शून्य, आकाश, अनाहत नाद, जहाँ कोई रूप नहीं है, प्रमेयरहित अनुभव। वेहाथा = हाथ में प्राप्त वस्तु को खो देना। अहेरी = शिकारी। सांझ सकारा = सायं-प्रातः, किसी भी समय।

व्याख्या—इसके पूर्व की रमैनियों में सद्गुरु यह चेतावनी दे चुके हैं कि कनफुकवा गुरुआ लोगों के चक्कर में पड़कर देव-देवी की उपासना से परमार्थ नहीं प्राप्त हो सकता। इस रमैनी में वह उन योगियों के विरुद्ध चेतावनी दे रहे हैं जो अनाहत नाद द्वारा परमार्थ की सिद्धि का प्रलोभन देते हैं।

कुछ लोग तथाकथित योगियों के चक्कर में आकर अनाहत नाद के अनुभव की आशा करते हैं और यह समझते हैं कि यही परमार्थ है। यह विचित्र तमाशा देखो। विचित्र तमाशा इसलिए है कि परमार्थ चेतन है और नाद अथवा आकाश प्रकृति का ही परिणाम है। इसको तमाशा इसलिए भी कहा है कि साधक है तो चेतन की खोज में और पहुँचता है अचेतन नाद में। यही विपरीत तमाशा है।

अनाहत नाद शून्य या आकाश का गुण है। इसी नाद की खोज में होने से साधक शून्य में चला जाता है। शून्य ही उसका लक्ष्य होता है। इसलिए वह शून्य में जाता है। इस प्रकार जो वस्तु हाथ में है, उसे छोड़कर अर्थात् जो चेतन आत्मा या राम सदा घट-घट में विद्यमान है, उसे छोड़कर, वह शून्य की ओर जाता है। इस प्रकार वह हाथ में प्राप्त अमूल्य रत्न को खो देता है।

सारा संसार संशयरूपी शावक है और काल शिकारी है। (यहाँ 'संशय' का तात्पर्य अज्ञान है। अज्ञान से निवृत्ति कान को बन्द करके अनहद नाद सुनने से नहीं हो सकती)। यह कालरूपी शिकारी उसका किसी भी समय शिकार कर सकता है। भावार्थ यह है कि अपने भीतर वर्तमान अविनाशी परमार्थ के विषय में संशयालु होकर मनुष्य परमार्थ को अन्यत्र खोजता फिरता है। इसीलिए वह जन्म-मरण का शिकार बनता है।

साखी—हे भाइयो! इसलिए जो घट-घट में विद्यमान चेतन परमार्थरूपी राम

---

१. छ० का; २. छ०-ई विपरीत देखहु रे तमासा; ३. छ० देखहु रे, ब०, ख०-ई देखहु; ४. छ० जहाँ, बं०-जहँ है; ५. छ० बंछै, बा०, ब०, ख०-वाँछै; ६. छ० सकल; ७. छ० करहु; ८. छ० नहिं; ९. छ० मारिहि; १०. छ०-क्या; ११. छ० क्या।

है, उसी का बराबर स्मरण करो। काल तुम्हारे केश को पकड़े हुए है। वह तुम्हें न जाने कहाँ और कब मार डाले। और तुम यह सोचते ही रह जाओ कि हम राम का स्मरण अब प्रारम्भ करेंगे, तब प्रारम्भ करेंगे।

'का घर का परदेश' में व्यञ्जना यह है कि काल से कोई बच नहीं सकता, चाहे घर में हो या परदेश में।

टिप्पणी—(i) कबीर की वाणी में 'अनहद' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—(क) अनाहत नाद के अर्थ में और (ख) अनहद अर्थात् जिसका कोई हद नहीं या असीम के अर्थ में।

इस रमैनी में 'अनहद' शब्द अनाहत नाद के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अनाहत नाद दो प्रकार से सुनायी पड़ता है। एक तो जब भीतर शक्ति का जागरण होने लग जाता है, तब नाना प्रकार की ध्वनियाँ बिना किसी आघात के सुनायी देने लगती हैं। दूसरे कान बन्द करके जब साधक नाद सुनने का प्रयत्न करता है, तब भीतर ही भीतर वायु की गूँज से अनाहत नाद सुनायी पड़ने लगता है। कबीर ने इसी दूसरे प्रकार के अनाहत नाद का विरोध किया है। योगियों के चक्कर में आकर साधक कान बन्द करके नाद सुनने की चेष्टा करते हैं और शीघ्र ही सरल रूप से वायु की गूँज मात्र से उनको जो नाद सुनायी पड़ता है, वे उसी को परमार्थ मान लेते हैं और जीवन का जो चरम लक्ष्य है—सदा विद्यमान चेतन का अनुभव—उसे खो बैठते हैं।

शक्ति के जागरण से जो नाद होता है, साधक का वह भी चरम लक्ष्य नहीं है। साधनरूप से वह उपादेय हो सकता है, साध्यरूप से वह हेय है।

(ii) पतंजलि के 'योगसूत्र' में भी एक ऐसा ही सूत्र है :—

'भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्' ॥ १९ ॥ (समाधिपाद) इसमें पतंजलि ने यह बतलाया है कि जो प्रकृति महत्तत्व, अहंकार या पंचतन्मात्ररूप अनात्म पदार्थों में से किसी एक में आत्मबुद्धि करके भावना करते हैं, वे प्रकृतिलय कहे जाते हैं अर्थात् उनका चित्त प्रकृति में लीन हो जाता है, किन्तु वह कैवल्य-पद को नहीं प्राप्त कर पाते। चित्त का प्रकृति में लीन हो जाना एक घोर निद्रा के समान है। कुछ समय के बाद मनुष्य जैसे नींद से जगता है, वैसे ही प्रकृति में लीन चित्त संसार में पुनः चक्कर काटता है। प्रकृति में लीन चित्त की अवस्था कैवल्य जैसी प्रतीत होती है, किन्तु वह कैवल्य नहीं है। प्रकृतिलीन व्यक्ति आवागमन से छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकता। भव-प्रत्यय अर्थात् संसार का कारण बना ही रहता है।

इसी प्रकार शून्य में चित्त के लीन होने का जो अनुभव है, वह आत्म-साक्षात्कार का अनुभव नहीं है। थोड़ी देर के लिए चित्त समाहित अवश्य हो जाता है, किन्तु इससे कैवल्य प्राप्त नहीं हो सकता है, अधिक से अधिक चित्तवृत्ति के निरोध का एक साधारण उपाय हो सकता है।

———

२०

(दुःखमय यातना प्रकरण)

अब गहु[1] सत्यनाम अविनासी, हरि तजि[2] जियरा कतहुँ[3] न जासी।
जहाँ जाहु तहाँ होहु पतंगा, अब जनि जरहु समुझि विषसंगा।
रामनाम[4] लौ लाय सो लीन्हा, भृंगी कीट समुझि मन[5] दीन्हा।
भव[6] अस गरुआ दुःख अति[7] भारी, करु जिन जतन जे देखु विचारी।
मन की बात है लहरि[8] विकारा, तें[9] नहिं सूझै वार न पारा॥

साखी—इच्छा करि भौ सागरे, वोहित[10] नाम[11] अधार।
कहैं कबीर हरि सरन[12] गहु, गो[13] बछ खुर विस्तार॥

शब्दार्थ—पतंग = शलभ। बोहित = (सं०) बोहित्थ, जहाज। भारी (संज्ञा) = भार, बोझ। जियरा = हृदय। विष = व्याप्त होना, जला डालना। लाय = लगाव। लौ = प्रेम से निवात, निष्कम्प दीपशिखा के समान सत्यनाम में चित्तवृत्ति का लगा रहना। भव = आवागमन। भृंगी = एक प्रकार का भौंरा। कीट = कीड़ा। बछ = बछड़ा।

सन्दर्भ—पिछली रमैनी की साखी में कबीर कह चुके हैं कि वास्तविक तत्त्व प्रत्येक जीव के भीतर विद्यमान साक्षीरूप चैतन्य राम हैं। उन्हीं का स्मरण करो। वह इसी भाव का प्रस्तुत रमैनी में विस्तार कर रहे हैं।

व्याख्या—वह कहते हैं कि हमारे अन्तस्तल में जो अविनाशी तत्त्व विद्यमान है, उसी सत्य का अनुसरण करते रहो। (कहीं-कहीं 'सत्यनाम' के स्थान पर 'रामनाम' है। इस पाठभेद से अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता)। वह तत्त्व अविनाशी है। गीता के शब्दों में वह 'अक्षर' है। क्षर और अक्षर का संयोग ही जीवन है। प्रकृति और उसके विकार को 'क्षर' कहते हैं। साक्षिचैतन्य को अक्षर अथवा अविनाशी कहते हैं। जीव अक्षर की ओर ध्यान न देकर विषयों की ओर आकृष्ट होता है, जो कि स्वभाव से क्षर हैं, अनित्य हैं। इसीलिए वह दुःख में पड़ता है। किन्तु जो नित्य, अविनाशी या अक्षर है, उसकी ओर जब जीव मुड़ता है और उसका ध्यान करता है, तब वह अनित्य, क्षर विषयों से मुक्त होने लगता है। इसीलिए कबीर ने कहा है कि अविनाशी नाम या राम का स्मरण या भजन करो। हे जीव ! हरि को छोड़कर तेरा हृदय अन्यत्र पदार्थों में कहीं न जाय। (यहाँ 'हरि' शब्द का प्रयोग बहुत व्यञ्जक

---

१. छ० कहु रामनाम; २. छ० छोड़ि; ३. छ० कितहु नहिं; ४. बलि०—सत्यनाम; ५. छ० लौ लीना; ६. छ०—भौ अस गरहुआ जे दुख पै भारी; ७. छ०—कै; ८. छ०—लहरी बेकारा; ९. बं०—त्वहिं; १०. छ०—तामँह बोहित; ११. छ०—राम; १२. छ०—शरन; १३. छ०—गोखुर बछ, ब०, ख०— गोखुर बछ।

है। 'हरि' का अर्थ है—'हरति दुःखानि इति हरिः' अर्थात् जो तापत्रय, अहन्ता (आपा) आदि को हर लेता है, वह हरि है)। इस शब्द के प्रयोग से कबीर का संकेत यह है कि यदि तुम सत्यनाम में चित्त लगाओगे तो तुम्हारे तापत्रय और सबके मूल आपा को वह हर लेगा।

हे जीव! अभिमानी नित्य तत्त्व को छोड़कर अनित्य पदार्थों की ओर जहाँ तुम जाते हो, वहाँ तुम्हारी वही गति होती है, जो उस पतंग (शलभ) की होती है जो दीप-शिखा की ज्योति से आकृष्ट होकर उसमें कूद पड़ता है अर्थात् अनित्य विषयों में आकृष्ट होकर जब वह उसमें संलग्न हो जाता है तो उसका विनाश अवश्यम्भावी है। विषय को विष के समान समझो। जैसे विष शरीर में व्याप्त होकर जला डालता है, वैसे ही विषय में यदि तुम आसक्त हुए तो दीप की लौ के समान वह तुम्हें जला डालेंगे। यह समझ लो। अब विषय में आसक्त होकर उसमें पतंग के समान मत जलो।

एक सुन्दर रूपक के द्वारा सद्गुरु यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि किस प्रकार जीव सत्यनाम के प्रकाश में अथवा सार-शब्द के स्पन्द में अपनी चित्तवृत्ति को लगा देने से रूपान्तरित हो जाता है। कीट भृंगी (एक प्रकार का भौंरा) की मधुर गुञ्जन को सुनने में अपने सारे चित्त को लगा देता है और उसका परिणाम यह होता है कि वह रूपान्तरित होकर स्वयं भृंगी बन जाता है। ऐसे ही जो सत्यनाम के मधुर स्पन्द में निवात दीपशिखा के समान सप्रेम हृदय से अपनी चित्तवृत्ति (लौ) लगाये रहता है, वह उसी नित्य, अविनाशी रूप में परिवर्तित हो जाता है।

भव अर्थात् चौरासी लाख योनियों में संसरण बहुत ही कष्टप्रद है। वह दुःख का एक भयानक बोझ है। तुम विवेचना कर अच्छी तरह देख लो, वही उपाय हृदय में ग्रहण करो। मन में नाना प्रकार के विकारों की लहर उठती रहती है। इसलिए मन में आपाततः जो बात आती है, उसको मत ग्रहण करो। इस लहर का कोई वार-पार अर्थात् अन्त नहीं है। मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प और इच्छाएँ लहर के समान उठती-गिरती रहती हैं। इसलिए मन का आश्रय लेकर कोई भव-सागर का अन्त नहीं पा सकता। इस भव-सागर को पार करने के लिए सार-शब्दरूपी जहाज का ही आश्रय लेना पड़ेगा।

साखी—नाना प्रकार की तृष्णाओं और अभिलाषाओं के भव-सागर में जीव डूबता-उतराता रहता है। एक सत्यनाम का आधार ही ऐसा जहाज है जिससे वह भव-सागर के पार जा सकता है। कबीर कहते हैं कि हे जीव! हरि की शरण लो। तब इस सागर का विस्तार गाय के बछड़े के खुर के समान लघु हो जायेगा।

———

२१

बहुत दुख है दुख कैं[1] खानी, तब बचिहहु जब रामहिं[2] जानी।
रामहिं[3] जानि जुक्ति जौं चलई, जुक्तिहिं तें फंदा[4] नहिं परई।
जुक्तिहि जुक्ति चला[5] संसारा, निश्चय कहा न मानु हमारा।
कनक कामिनी घोर पटोरा, संपति बहुत रहै[6] दिन थोरा।
थोरहि संपति गौ बौराई, धर्मराज[7] के खबरि न पाई।
देखि त्रास मुख गौ कुम्हिलाई, अमृत धोखै गौ विष खाई॥

साखी—मैं सिरजौं मैं मारौं, मैं जारौं मैं खाउँ।
जल थल नभ[8] मँह रमि[9] रहौं; मोर निरंजन नाउँ॥

शब्दार्थ--घोर = घोड़ा। पटोरा = रेशमी वस्त्र। धर्मराज = काल, निरंजन। निरंजन = काल, सत्यपुरुष का पुत्र।

सन्दर्भ--बीसवीं रमैनी में कबीर ने यह बतलाया है कि मानव का प्रथम कर्त्तव्य यह है कि वह अविनाशी रामनाम को अपने जीवन का मुख्य तत्त्व समझते हुए उसीके अनुकूल जीवन को ढाले। जो ऐसा नहीं करता है उसे नाना प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं। यही बात अब विस्तारपूर्वक इस रमैनी में बतायी गयी हैं।

व्याख्या--वही जीव भवसागररूपी दुःख में पड़ता है जो राम को अर्थात् जीवन के वास्तविक तत्त्व को नहीं समझता। उसके लिए संसार दुःख की खानि है। वह इस दुःख से तभी बच सकेगा, जब रामरूपी तत्त्व को समझेगा।

राम अर्थात् सार-शब्द को समझकर जो सद्‌गुरु के बताये हुए मार्ग से चलेगा, वह मायारूपी फन्दे में नहीं फँसेगा। संसार के लोग अपनी-अपनी युक्ति अर्थात् साधन या मार्ग से परम इष्ट को प्राप्त करना चाहते हैं और सद्‌गुरु के उपदेश को निश्चित रूप से नहीं मानते। वे ही दुःख के भागी होते हैं। लोगों का इष्ट प्रायः विलास की सामग्री ही होता है। कनक (धन), कामिनी (सुन्दरी स्त्रियाँ), घोड़ा (पशु आदि), पटोरा (रेशमी वस्त्र) आदि वस्तुएँ नाशवान हैं, थोड़े दिन ही रहती हैं। मानव सांसारिक ऐश्वर्य-भोगों में पड़कर अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है और सत्कर्म तथा दुष्कर्म का उसे विवेक नहीं रह जाता है। वह किसी भी प्रकार से अपने विषय-भोग की सामग्री को एकत्र करता है। उसे यह ध्यान नहीं रह जाता कि सिर पर काल मँड़रा रहा है और वह कर्मानुसार लोगों को फल देता है। वह अमृत के धोखे विषयरूपी विष का भोग करता रहता है और जब काल निकट आता है, तब वह उसके त्रास से भयभीत हो उठता है।

---

१. अन्य प्रतियों में–की; २. बलि०–नामहिं; ३. बलि०–नामहिं; ४. बा०–जुक्तिहिं फंदा; ५. बं० चलत; ६. ब०, ख०–रहल; ७. अन्य प्रतियों में–धर्मराय; ८. बा०–महियाँ, बा०–में ही; ९. ख०–आरमि।

साखी—निरंजन कहता है कि मैं ही सबकी सृष्टि करता हूँ। मैं ही सभी की मृत्यु का कारण हूँ। मैं ही त्रयताप में जलाता हूँ और अन्त में मैं ही सबको खा जाता हूँ अर्थात् नष्ट कर देता हूँ। मैं जल, थल, नभ सबमें व्याप्त हूँ। मेरा नाम निरंजन (काल) है। कहने का तात्पर्य यह है कि सारी सृष्टि के पदार्थ काल में ही उत्पन्न होते हैं और काल में ही उनका अन्त होता है। इसीलिए वे सब काल के अधीन हैं।

निरंजन

टिप्पणी—निरंजन शब्द का सीधा अर्थ है—अंजन अर्थात् कालिमा या दोष से रहित। यह परमतत्त्व का वाचक है। प्रारम्भ में योगियों और सन्तों के मत में निरंजन की यही अवधारणा थी। किन्तु धीरे-धीरे उसकी अवधारणा में थोड़ा परिवर्तन हो गया और वह हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। इन अवधारणाओं के परिवर्तन के क्रम को जानने के लिए देखिए—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी-कृत कबीर—(पृ० ५२ से ६८ तक)।

इस सन्दर्भ में ऊपर जो 'धर्मराय' शब्द आया है, उसी का पर्यायवाची 'निरंजन' प्रतीत होता है। यम, धर्मराज, निरंजन ये तीनों शब्द एक ही भाव के व्यंजक हैं। यद्यपि कबीरपन्थ में बाद में 'निरंजन' का पद हीन समझा जाने लगा तथापि कबीर के वचनों को सर्वांग दृष्टि से देखने से यह प्रतीत होता है कि स्वयं वह 'निरंजन' को उसके वास्तविक अर्थ अर्थात् परमतत्त्व, जो निर्गुण और निर्दोष है, में ही लेते थे। इस रमैनी में 'निरंजन' यम या काल का वाचक है।

२२

अलख निरंजन लखै न कोई, जेहि[1] बंधे बंधा सब[2] कोइ।
जेहि[3] झूठे बंधाय अयाना, झूठी बात[4] सांच कै जाना[5]।
धंधा बंधा किन्ह बेवहारा, करम विवरजित बसै निआरा[6]।
षट आश्रम षट[7] दरसन कीन्हा, षटरस वास[8] षट[9] वस्तुहिं चीन्हा।
चारि वृक्ष छव साख[10] बखानै, विद्या अगनित गनै न जानै।
अवरो आगम करै विचारा, ते नहिं सूझै वार न पारा।
जप तीरथ व्रत[11] कीजै पूजा, दान पुन्य[12] कीजै बहु दूजा॥

---

१. बं०-जेहिके; २. छ०-सभ; ३. छ०-जेहि झूठे बंधायो आना, बं० बा०-जेहि झूठे सो बंधो अयाना; ४. बा०-झूठा वचन; ५. अन्य प्रतियों में 'माना'; ६. छ०-निनारा; ७. छ०-औ ८. बा०, बं०-षटरस वस्तु खोट सब चीन्हा; ९. छ० षटै वस्तू; १०. छ०-सखा; ११. छ०-धर्म कीजै बहु पूजा, बं०-जप तीरथ व्रत पूजे भूता; १२. छ०-औ कीजै बहुता।

साखी—मंदिर तौ[1] है नेह का, मति कोइ पैठे धाय।
जो कोइ पैठे धायके, विनु सिर सेंतिहि[2] जाय॥

शब्दार्थ—अलख = जो दिखाई न दे। निरंजन = मायारहित, काल। निआरा = न्यारा, अलग। षट आश्रम = ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास—ये प्रसिद्ध चार आश्रम हैं। कबीरपन्थियों ने इनमें दो और जोड़ा है—हंस, परमहंस, इस प्रकार छः आश्रम हुए। षट दरसन = न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त। षट रस = मधुर, लवण, तिक्त, अम्ल, कटु, कषाय। चारि वृक्ष = चार वेद (ऋक्, यजु, साम, अथर्वण)। छव साख = छः शाखाएँ = छः वेदांग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, व्याकरण)। वार = सं०-आर, किनारा। दूजा = अतिरिक्त। नेह = तृष्णा, आसक्ति। सेंतिहि = व्यर्थ में।

सन्दर्भ—पूर्व रमैनी में कबीर ने यह बतलाया है कि काल या यम की माया में सभी लोग फँसे रहते हैं और विषय-विष को अमृत समझकर, उसका उपभोग करते हैं। इसीलिए उनको आवागमन से छुटकारा नहीं मिलता। इसी बात को वह इस रमैनी में विस्तारपूर्वक बतला रहे हैं :—

व्याख्या—निरंजन अर्थात् काल अलक्ष्य है। उसको कोई देख नहीं सकता। उसी के फन्दे में लोग फँसे हुए हैं। उसके मिथ्या बन्धन में अज्ञानी फँसते हैं और मिथ्या बातों को सच समझ बैठते हैं। वे बाँधने वाले कार्यों या उद्यम को ही व्यवहार में लाते हैं और अवश्यकर्त्तव्य सत्कर्मों से रहित होकर सत्पुरुष से न्यारा या पृथक् ही रहते हैं अर्थात् वास्तविक तत्त्व से वियुक्त रहते हैं। निरंजन या काल के ही प्रभाव में पण्डितों ने छः दर्शन बनाये और छः आश्रमों की व्यवस्था की। जीव का मन छः रसयुक्त वस्तुओं में ही बसता है और वह वस्तुतः उन्हीं को पहचानता है।

चार वेद बनाये गये और उनके छः वेदांग निर्मित हुए। (यहाँ चार वृक्ष चार वेदों के और छः शाखाएँ छः वेदांग की प्रतीक हैं)। अगणित विद्याएँ प्रचार में आयीं। किन्तु लोग तत्त्व को न समझ पाये। शास्त्रों ने और भी बहुत कुछ विचार किया, किन्तु किसी को आर-पार न सूझ पड़ा। लोगों ने समझा कि जप, तीर्थ आदि करने से निस्तार हो जायेगा। इसीलिए जप, तीर्थ, व्रत, पूजा आदि करने लगे और इनके अतिरिक्त बहुत कुछ दान-पुण्य भी किया। परन्तु तत्त्व की बात हाथ न आयी। कबीर के कहने का तात्पर्य यह है कि केवल वेद-शास्त्रादि के अध्ययन से और बाह्याचार से सत्य का सुन्दर मुख नहीं देखा जा सकता।

साखी—इस साखी में देह को मन्दिर कहा गया है। यहाँ 'नेह' का अर्थ तृष्णा या आसक्ति है। यह शरीररूपी मन्दिर अज्ञानजन्य आसक्ति का स्थल है। किसी को भी बिना सोचे-समझे दौड़कर नहीं घुस जाना चाहिए अर्थात् तृष्णा या आसक्ति के अधिष्ठान देह के वश में नहीं होना चाहिए। जो कोई इस तृष्णामय देह-मन्दिर में

---

१. छ०—तौ नेह का; २. बा०, बं०, बलि० सेंती।

बिना सोचे-समझे दौड़कर प्रवेश करता है, वह व्यर्थ में ही अपना सिर गवाँकर वापस आता है अर्थात् इन्द्रियों के वशीभूत होकर जो विषय-वासना में फँसता है, वह बन्धन में ही पड़ता है और परमार्थ से च्युत हो जाता है।

———

२३

(संसार की असारता प्रकरण)

अलप सुख दुख आदि औ[१] अंता, मन भुलान मैगर मैमंता।
सुख बिसराय मुक्ति कहँ पावै, परिहरि साँच झूठ कहँ[२] धावै।
अनल[३] जोति डाहै[४] एक संगा, नैन नेह जस जरै पतंगा।
करहु[५] विचार जे सब[६] दुःख जाई,[७] परिहर झूठा केरि सगाई।
लालच लागे जनम सिराई, जरा मरन नियरायल आई॥

साखी—भर्म[८] के बाँधल ई जग, यहिविधि आवै जाय।
मानुष जन्महि[९] पाय[१०] नर, काहे कै[११] जहँडाय॥

शब्दार्थ—मैगर = (सं० मदकल, जिसमें मद का अंश हो), हाथी। मैमंता = मदमस्त, अहंकारी। भर्म = भ्रम। जँहडाय = हानि उठाना, धोखे में पड़ना।

सन्दर्भ—पूर्व रमैनी में कबीर ने यह बतलाया है कि देह से तादात्म्य करने से मनुष्य परम लक्ष्य को खो बैठता है और दुःख भोगता है। प्रायः यह कहा जाता है कि इसी देह से सुख भी तो है। इस रमैनी में कबीरदास यह बतलाते हैं कि शरीर द्वारा जो विषय-सुख मिलता है, वह वास्तविक सुख नहीं है।

व्याख्या—कबीर का कहना है कि शरीर अथवा इन्द्रियों द्वारा जो सुख प्राप्त होता है, वह अल्प है। अतः वह वास्तविक सुख नहीं है। अल्प का सुख दुःख ही है, क्योंकि उसका आदि और अन्त है। जो वास्तविक सुख है, वह शास्वत और चिरन्तन होता है। वह केवल भूमा में है।

इस पंक्ति में दो भारतीय चिन्तन-धाराओं का समावेश है—एक छान्दोग्य उपनिषद, दूसरी गीता। छान्दोग्य उपनिषद में कहा गया है कि अल्प में सुख कभी नहीं है, सुख केवल भूमा में है :—

---

१. छ०-वो, बं०-आदिहु; २. छ०-निज; ३. छ०-अनिल; ४. छ० डहै, बा०-दाहै; ५. अन्य प्रतियों में-करु; ६. छ०-सम; ७. छ०-ई परिहरि झूठ केर सगाई; ८. अन्य प्रतियों में-भ्रम; ९. छ०-जन्म; १०. छ०-पायकै नल; ११. अन्य प्रतियों में-को।

'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति ।' (छान्दो० ७।२३।७) । दूसरी विचार-धारा यह है कि जो क्षणिक सुख है, वह एक प्रकार से दुःख ही है, क्योंकि उसका आदि और अन्त है :—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥
(गीता, ५।२२)

अर्थात् संस्पर्श से जो भी भोग या सुख मिलता है, वह दुःख का ही कारण है। वह सुख भी एक प्रकार से दुःख का कारण ही है, क्योंकि उसका आदि और अन्त है। जिसका आदि और अन्त है, वह कभी शाश्वत सुख नहीं हो सकता। उसमें परिवर्तन होगा ही।

इसी बात को कबीर इस प्रकार कहते हैं कि अल्प का जो सुख है, वह दुःख ही है, क्योंकि 'आदि औ अंता' अर्थात् उनका आदि और अन्त है।

मन उन्मत्त, मदग्रस्त हाथी के समान विषय-सुख में भूला रहता है। टीकाकारों ने दूसरी पंक्ति का अर्थ प्रायः इस प्रकार किया है—'मुक्ति बिसराय सुख कहँ पावै'— अर्थात् जीव मोक्ष को भूलकर सुख कहाँ पा सकता है ? इस अर्थ से दूरान्वय दोष आ जाता है, यद्यपि भाव ठीक है। दूसरा अर्थ जो अधिक समीचीन प्रतीत होता है, इस प्रकार है—'सुख बिसराय मुक्ति कहँ पावै'—अर्थात् जो जीव अल्प का सुख समझे हुए है, उस तथाकथित सुख को भुलाकर ही मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। यहाँ 'कहँ' का अर्थ है—को। ऐसा जीव सत्य को छोड़कर मिथ्या की ओर दौड़ता है। अल्प सुख मिथ्या सुख है।

जीव को विषयानल की ज्योति एक संग अर्थात् सम्पूर्णरूप से उसी प्रकार जला देती है जैसे पतग 'नैन नेह' अर्थात् रूप के अनुराग से दीपक की ज्योति से आकृष्ट होकर भस्म हो जाता है।

ऐसा विचार कर, जिससे सब दुःखों का अन्त हो जाये। मिथ्या सुख में आसक्ति को त्याग दे। तृष्णा में ही तेरा सारा जीवन बीत गया। अब वृद्धावस्था और मृत्यु निकट आ गयी।

साखी—यह सारा संसार अज्ञान के कारण बन्धन में पड़ा हुआ है। इसी अज्ञान से आवागमन होता रहता है। हे नर ! मानव-जन्म पाकर तू चिन्तन क्यों नहीं करता है जो कि तेरा एकाधिकार है। तू धोखे में क्यों पड़ता है ?

२४

चंद चकोर की[1] ऐसी बात जनाई, मानुस बुद्धि[2] दीन्ह पलटाई।
चारि अवस्था सपनै कहई,[3] झूठी फुरो[4] जानत रहई।
मिथ्या बात न जानै कोई, यहि विधि सब[5] गैल बिगोई।
आगे दे दे सभन्हि गँवाया, मानुस बुद्धि[6] न सपनेहु पाया।
चौंतिस अक्षर से निकलै जोई, पाप पुन्य जानैगा सोई॥

साखी—सोई कहंते सोई होहुगे, निकरि न बाहर आव।
हौं हजूर ठाढ़ो[7] कहौं,[8] धोखे न जन्म गवाँव॥

शब्दार्थ—चारि अवस्था = बाल्य, किशोर, युवा, वृद्ध। चौंतिस अक्षर = ५ वर्ग (कवर्ग, चवर्ग, खवर्ग, टवर्ग और पवर्ग और) य, र, ल, व, श, प, ह, ऊँ। हुजूर (फा०) = उपस्थिति, प्रत्यक्ष।

व्याख्या—गुरुओं ने लोगों को यह बतला रखा है कि जिस प्रकार चकोर चन्द्रमा की ओर एकटक देखता रहता है, उसी प्रकार त्रिकुटी आदि पर ध्यान लगाते रहो तो तुमको परमार्थ प्राप्त हो जायेगा। इस प्रकार लोगों ने मनुष्य की बुद्धि को पलटा दिया है जिससे वह विवेक खो बैठा है और वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करता।

वह चारो अवस्थाओं (बाल्य, कैशोर्य, युवा और वृद्धावस्था) अर्थात् जन्म भर तथ्य को स्वप्नवत् झूठ मानता रहता है और झूठ को सत्य मानता रहता है। इस प्रकार प्रारम्भ से अन्त तक जीव भ्रम में ही रहता है। वस्तुतः मिथ्या क्या है? यह कोई नहीं जानता। इस प्रकार सब लोग विनाश को प्राप्त होते रहते हैं।

गुरुओं ने भविष्य में लक्ष्य-प्राप्ति की आशा दे देकर लोगों को बहकाया और इस प्रकार सब लोगों ने तत्त्व को खो दिया। विवेकशील मानुषी बुद्धि को लोग स्वप्न में भी न पा सके। जो चौंतीस अक्षर अर्थात् शास्त्र-ज्ञान के जाल से निकल जाता है, वस्तुतः वही पाप-पुण्य के भेद को समझ सकेगा। तुलसीदास ने भी कहा है :—

वाक्यग्यान अत्यंत निपुन, भव पार न पावै कोई।
जिमि गृह मध्य दीप की बातन, तम निवृत नहिं होई॥

साखी—तुम जो कहते रहोगे, वही बन जाओगे। वाग्जाल से बाहर क्यों नहीं निकल आते? मैं प्रत्यक्ष खड़ा कह रहा हूँ। धोखे में अपने जन्म को नष्ट न करो। नामरूपादि के चक्कर में न फँसो। तत्त्व को पहचानो।

विशेष—'निकरि न बाहर आव' में काकुवक्रोक्ति अलंकार है।

---

१. बा०, ख०, ब०-असबात, बं०-कसिबात, बलि०-की बात; २. छ०-बुधि दिन्ह; ३. छ०-कहाई; ४. बं०-झूठे फूरे, अन्य प्रतियों में-फूरो; ५. छ०-सम, बा०-सिगरे; ६. छ०-बुधि की; ७. छ०-ठाढ़ कहत हौं; ८. छ०-ते का धोखै जन्म गंवाव।

२८

चौंतिस अच्छर का इहै विशेखा, सहसों नाम इहै[1] मँह देखा।
भूलि भटकि नर फिरि घट[2] आया, हो[3] अजान सो सभन्हि गँवाया।
खोजहि ब्रह्मा विस्नु[4] सिव सक्ती, अमित[5] लोक खोजहि बहु भक्ती।
खोजहि गन गंधर्व मुनि देवा, अमित[6] लोक खोजहिं बहु भेवा[7]।
साखी--जती सती सभ खोजहिं, मनहिं[8] न मानैं हार।
बड़-बड़ जीव[9] न बांचिहैं,[10] कहहिं कबीर पुकारि[11]॥

शब्दार्थ—घट = शरीर। सभन्हि = सब कुछ। गँवाया = नष्ट कर दिया। अमित = अनन्त। लोक = लोग। बहु भेवा = भिन्न-भिन्न रूप में।

व्याख्या--वाग्जाल की यही विशेषता है कि यद्यपि हैं तो केवल चौंतीस अक्षर (व्यञ्जन) ही, किन्तु उनसे सहस्रों शब्द बनते हैं और उन्हीं सहस्रों शब्दों के अनुसार सहस्रों विचार खड़े हो जाते हैं। यहाँ 'सहस्रों' शब्द लाक्षणिक है। इसका अर्थ है—अनेक।

शब्द-जाल के भ्रम में पड़कर मनुष्य भटक करके फिर शरीर धारण करता है और अज्ञानवश सब कुछ खो देता है। (ब०, ख० प्रतियों में 'हता जान' पाठ है। इसका अर्थ होगा---हत ज्ञान अर्थात् जिसका ज्ञान नष्ट हो गया है। पाठ-भेद से अर्थ-भेद नहीं है।) वह वाग्जाल के ही कारण अपने भीतर विद्यमान परम ज्योति या आत्मा को समझने की चेष्टा न करके देव-देवियों, यथा—ब्रह्मा, विष्णु, शिव और शक्ति की खोज में लगा रहता है। सभी लोग बड़ी भक्ति से अपने बाहर सत्य को खोजते रहते हैं। गण अर्थात् शिव के सेवकों का समुदाय, गन्धर्व, मुनि और देव आदि सभी लोग भिन्न-भिन्न रूप में पदार्थ को बाहर ही खोजते फिरते हैं। (यदि 'गण गंधर्व' आदि को 'खोजहिं' का कर्म माना जाय, जैसा कि ऊपरी पंक्ति में है तो इसका अर्थ होगा कि लोग गण, गन्धर्व, मुनि और देव के रूप में अर्थात् भिन्न-भिन्न रूप में उसी सत्य को खोजते फिरते हैं)।

साखी—यती अर्थात् योगी, संन्यासी, सती अर्थात् पतिव्रता स्त्रियाँ अथवा सत्यव्रतधारी सभी अपने बाहर ही सत्य को खोजते-फिरते हैं और कभी मन में हार नहीं मानते। कबीर पुकार कर कहते हैं कि बड़े-बड़े जीव भी जो सत्य को बाहर खोजते घूमते हैं, नहीं बच सकेंगे अर्थात् सदा अज्ञान और भ्रम में पड़े रहेंगे।

टिप्पणी—हिन्दी में स्वर-व्यञ्जन मिलाकर ४६ वर्ण होते हैं। इनमें १२ स्वर हैं, शेष व्यञ्जन। यहाँ 'चौंतीस' से कबीर का तात्पर्य सम्भवतः व्यञ्जन-वर्णों से है।

---

१. बा०-याहि में, बं०, बलि०-यही में; २. बं, बा०-घर; ३. छ०-होता जान, बा०-होत अजान, बं०-होत ज्ञान, ब०, ख०-हता जान; ४. छ०-औ; ५. छ०-अनंत; ६. छ०-अनंत; ७. छ० सेवा; ८. छ०-मानै नहिं मनमँह हारि; ९. बं०-बीर बचे नहीं; १०. बा०-बाँचहि; ११. बा०-विचारि।

२६

(सत्यकर्त्ता प्रकरण)

आपुहिं[1] करता भया कुलाला,[2] बहु विधि बासन गढ़ै कुंभारा[3]।
विधिना[4] सभै कीन्ह यक ठाँऊँ, जतन अनेक के बने बनाऊँ[5]।
जठर अगिनि मँह दीन्ह प्रजारी, तामे आपु भया प्रतिपाली।
बहुत जतन करि[6] बाहर आया, तब सिव सक्ती नाम धराया।
घर का[7] सुत जो होय अयाना, ताके सँग न जाहिं सयाना।
साँची बात कही मैं अपनी, भया दिवाना और की सपनीं[8]।
गुप्त प्रकट है एकै दूधा, काको कहिए ब्राह्मन सूदा[9]।
झूठ[10] गर्भ भूले मति कोई, हिन्दू तुरुक झूठ कुल दोई॥

साखी—जिन यह चित्र बनाइया, साँचा सो सुतधारि[11]।
कहहु कबीर ते जन भले, (जे) चित्रवंतहि लेहिं बिचारि॥

शब्दार्थ—कुलाला = कुम्भकार। विधि = विधान। जतन = प्रकार। जठर अगिनि = गर्भाशय। सिव सक्ती = (प्र० अ०) पुरुष-स्त्री। सुतधारि = सूत्रधार।

सार—इस रमैनी में कबीर ने मानव के प्रादुर्भाव को एक सुन्दर रूपक द्वारा बतलाकर यह उपदेश दिया है कि शरीर आदि से सभी एक ही प्रकार के हैं। ब्राह्मण-शूद्र आदि ऊँच-नीच का भाव निन्द्य है। इसमें मत भूलो। अपने कर्त्ता पर विचार करो, तभी तुम्हारा कल्याण होगा।

रूपक—इस रमैनी का रूपक इस प्रकार है—परमात्मा कुम्भकार के समान है। अन्तर यह है कि कुम्भकार को उपादान कारण मिट्टी को बाहर से लेना पड़ता है। किन्तु परमात्मारूपी कुम्भकार को बाह्य सामग्री नहीं लेनी पड़ती है। यह तथ्य 'आपुहिं' शब्द से ध्वनित होता है। जैसे कुम्भकार एक ही मिट्टी से नाना प्रकार के बर्तन बनाता है, वैसे ही परमात्मा पंचमहाभूत, मन, इन्द्रिय आदि साधनों से अनेक प्रकार के जीवों की सृष्टि करता है। जैसे कुम्भकार बर्तन बनाकर आवाँ में रखकर पकाता है और जब तक वह पकता है, तब तक उसकी देखभाल करता है, वैसे ही परमात्मा गर्भाशयरूपी आवाँ में नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं को परिपक्व करता है और उस असहाय अवस्था में उनका प्रतिपालन करता है। जैसे सभी बर्तन एक ही मिट्टी के बने होते हैं, केवल कार्य के अनुसार उनका नाम-रूप भिन्न होता है, वैसे ही सभी जीव एक ही पंचमहाभूत आदि से बने हैं, केवल कार्य के अनुसार उनका नाम-रूप भिन्न है।

---

१. छ०-आये; २. छ०-कलाला; ३. ख०-कुम्हाला, बलि०-कृपाला; ४. ख०, बलि०-विधि ने; ५. ब० ख०, बलि०-कनाऊँ; ६. बा०-से; ७. अन्य प्रतियों में-के; ८. छ०-का पुनी, ख०-की ध्वनी; ९. ब०, ख०-सुधा; १०. छ०, ब०, ख०-झूठी, बलि०-झूठे; ११. बा०-सुत्रधार।

व्याख्या--परमात्मा स्वयं कुम्भकार के समान है। वह निर्माता होता है और नाना प्रकार के बर्तन बनाता है अर्थात् नाना प्रकार के जीवों की सृष्टि करता है। संचित कर्म के विधान द्वारा उपयुक्त द्रव्य एकत्र किये जाते हैं और फिर बड़े यत्न से भिन्न-भिन्न प्रकार के बर्तन अर्थात् जीवों को परमात्मा बनाता है। वह जठराग्नि अर्थात् गर्भाशय में जीवों को नौ मास तक विकसित होने में सहायक बनता है और उस दशा में उनकी पूरी रक्षा करता है। इस प्रकार से जीव जब संसार में आता है, तब पुरुष या स्त्री के रूप में प्रकट होता है।

इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि यदि अपना ही पुत्र अज्ञानी हो गया हो तो विवेकी लोग उसका साथ नहीं देते। यहाँ 'सुत' शब्द से 'मन' का संकेत है। यद्यपि मन अपना ही है, किन्तु वह अज्ञानी है। इसीलिए जीवों को अपने विवेक से काम लेना चाहिए और उसकी वासनाओं में आसक्त नहीं होना चाहिए।

मैंने अपने अनुभव से जो जाना है, वह सत्य बात बतलाई है। प्रायः लोग औरों के स्वप्नवत् ज्ञान से भटक जाते हैं। यदि 'और की ध्वनी' पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा--ओरों की बातों से लोग दीवाने बन जाते हैं, भटक जाते हैं।

हम चाहे गुप्त अर्थात् अदृश्य आत्मा या सूक्ष्म शरीर की दृष्टि से देखें अथवा प्रगट या शरीर की दृष्टि से देखें, दोनों दृष्टियों से सभी एक ही दूध के हैं अर्थात् समान हैं। सबमें आत्मा एक है। सभी सूक्ष्म शरीर, पंच ज्ञानेन्द्रियों, पंच कर्मेन्द्रियों, मन, बुद्धि और अहंकार के बने हुए हैं और सभी का स्थूल शरीर पंचमहाभूतों का बना हुआ है। अतः तात्त्विक दृष्टि से सभी एक हैं। तात्त्विक दृष्टि से किसी को ब्राह्मण या शूद्र कहना ठीक नहीं। इसलिए कोई भी ऊँच-नीच जाति के झूठे गर्व में न भूले। हिन्दू मुस्लिम का भेद तात्त्विक दृष्टि से झूठा है।

साखी--जिसने चित्र-विचित्र नाम-रूप जीव-जगत् की सृष्टि की है, वह सच्चा सूत्रधार है। 'सूत्रधार' शब्द में कबीर की सूझ बहुत सुन्दर रूप से निखरी है। इसमें वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों सुन्दररूप से घटित होते हैं। कुम्भकार जब बर्तन बनाता है, तब हाथ में एक सूत्र धारण किये रहता है, जिससे वह मिट्टी को काट-काटकर अलग-अलग बर्तन का रूप देता है। इसी प्रकार परमात्मारूपी कुम्भकार भी जीवों को भिन्न-भिन्न रुप देता है। अतः परमात्मा के लिए 'सूत्रधार' शब्द वाच्यार्थ में उपयुक्त है। यह लक्ष्यार्थ में भी उपयुक्त है, क्योंकि सारे जीव जगत् का वही नियन्ता है। वह सबको कठपुतली की तरह नचाता रहता है। इसलिए वह सच्चा सूत्रधार है। कबीर कहते हैं कि वे ही लोग भले हैं जो भिन्न-भिन्न नर-नारी, ब्राह्मण-शूद्र आदि नाम-रूप भेद वाले बर्तनों के चक्कर में न पड़कर, उनके निर्माता परमात्मा की ओर सारे भेदभाव छोड़कर मुड़ते हैं।

२७

ब्रह्मा को दीन्हो ब्रह्मण्डा, सात दीप पुहुमी नव खण्डा।
सत्त[१] सत्त कै बिस्नु दिढाई, तीनि लोक मँह राखि[२] निजाई।
लिंग रूप तब संकर कीन्हा, धरती कीलि[३] रसातल दीन्हा।
तब अष्टंगी रची कुमारी, तीनि लोक मोहिनि सभ झारी।
दुतिया नाम पारवती भैऊ, तप[४] करते संकर कँह दैऊ।
एकै पुरुष एक है नारी; ताते रचेउ[५] खानि[६] भौ चारी।
सर्मन वर्मन देव औ दासा, रजसत[७] तमगुन धरति[८] अकासा।
साखी--एक अंड ओंकार ते, सब जग भयो पसार।
कहहिं कबीर सब[९] नारि के, अविचल पुरुष भतार॥

शब्दार्थ--सात दीप = जम्बू, कुश, प्लक्ष, क्रौंच, शक, पुष्कर, शाल्मलि। पुहुमी = पृथ्वी। नव खण्ड = नौ खण्ड--भारत, इलावृत, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य, कुश। निजाई--निजत्व, स्वामित्व, अधिकार। अष्टंगी = सुन्दर आठ अंगों वाली कन्या। आद्या प्रकृति के आठ अंग ये हैं--भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार। चारि खानि = अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज। सर्मन = शर्मा, ब्राह्मण। वर्मन = वर्मा, क्षत्रिय। अण्ड = बीज।

सन्दर्भ--कबीर का सृष्टि के विषय में वास्तविक मत यह है कि एक सत्पुरुष, सार-शब्द अथवा परमार्थ राम ही सम्पूर्ण सृष्टि के कर्त्ता, विधाता हैं। इसी विश्वास के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने लोक में सृष्टि के सम्बन्ध में जो प्रचलित पौराणिक विश्वास थे, उनकी संगति बैठाने का प्रयत्न किया है।

पिछली रमैनी में वह कह आये हैं कि एक ही सत्पुरुष है, जो कुलाल या सूत्रधार है और जिसने सभी जीवरूपी बर्तनों को रचा है। प्रस्तुत रमैनी में वह कहते हैं कि वस्तुतः ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि जगत् के स्रष्टा नहीं हैं। उनको वास्तविक परमार्थ-रूपी स्रष्टा से भिन्न-भिन्न प्रकार के अधिकार मिले हुए हैं।

व्याख्या--उस परमज्योति ने ब्रह्मा को ब्रह्माण्ड पर अर्थात् पृथ्वी और उसके सात द्वीपों और नव खण्डों पर अधिकार दिया। सत्यरूप विष्णु को अधिष्ठित किया और. उन्होंने तीनों लोकों में अपनी निजाई अर्थात् प्रभुत्व को स्थापित किया। लिंगरूप शंकर द्वारा धरती से रसातल तक कीलित कर दिया। फिर अष्टांगी कुमारी को रचा। अष्टांगी का भाव गीता के निम्न श्लोक से स्पष्ट होता है :—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥ (७।४)

---

१. ब०, ख०, बलि०-सत्य सत्य; २. बा०- राखिनि जाई; ३. बा०-खीलि, ब०, ख०-खिला; ४. ब०, ख०-सो कर्त्ता; ५. छ०-रचिन्हि, ब०, ख०-रची; ६. बलि०-भये बरण जग चारी; ७ छ०-रजगुन तमगुन; ८. छ०, ब०-धरती, बलि-धरणि; ९. बा०-सब नारि राम की।

अर्थात् मेरी अष्टधा प्रकृति इस प्रकार है—भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार। यहाँ अष्टांगी प्रकृति ही कुमारी है। इसने तीनों लोकों को मोहित कर दिया है। उसी शक्ति का दूसरा नाम पार्वती है जो कि तपस्या द्वारा शंकर को मिली।

वस्तुतः एक ही सत्पुरुष है और उसकी इच्छा या माया ही एक नारी है जिससे चारों खानि या आकर (अण्डज, स्वेदज, जरायुज, उद्भिज) बने। संसार में चारों वर्ण शर्मन (ब्राह्मण), वर्मन (क्षत्रिय), देव (वैश्य), दास (शूद्र) आदि भी उसी ने रचा। धरती, आकाश और तीनों गुण—सत-रज-तम उसी के द्वारा रचे गये।

साखी—एक बीज रूप ओंकार से सारे संसार का प्रसार हुआ। कबीर का कथन है कि एक ही अविनाशी पुरुष अर्थात् राम या सत्पुरुष सबके भर्त्ता हैं और जगत् में अन्य जो कुछ भी है, वह सब उसी भर्त्ता की भार्या है।

२८

अस जोलहा का मरम न जाना, जिन जग आय पसारिन्हि ताना।
महि[1] अकास दुइ गाड़ खँदाया, चाँद सुरुज दुइ नरी[2] बनाया।
सहस तार लै पूरिन पूरी, अजहुँ बिनव[3] कठिन है दूरी।
कहहिं कबीर करम[4] सो जोरी, सूत - कुसूत बिनै भल कोरी।

शब्दार्थ—जोलहा = बुनकर (प्र० अ०) ईश्वर, आत्मा, मन। ताना = (प्र० अ०) माया। महि = (प्र० अ०) अधोभाग, पिण्ड, पृथ्वी। अकास = (प्र० अ०) ऊर्ध्वभाग, ब्रह्माण्ड, आकाश। गाड़ = गड्ढा। खँदाया = खोदा। चाँद = (प्र० अ०) बाएँ नासारन्ध्र से चलने वाली नाड़ी। इसे योगशास्त्र में 'इड़ा' कहते हैं। इसे चन्द्रनाड़ी भी कहते हैं। कहीं-कहीं इसे गंगा भी कहा गया है। सुरुज = सूर्य (प्र० अ०), दाहिने नासारन्ध्र से चलने वाली नाड़ी। इसे पिंगला अथवा सूर्यनाड़ी भी कहते हैं। नरी = नली या नलिका (ढरकी के भीतर की नली जिस पर तार लपेटा रहता है)। ढरकी = जुलाहों का वह औजार जिससे वे बाने का सूत फेंकते हैं। सहस तार = (प्र० अ०) श्वास, हजारों नाड़ियाँ। पूरिन = पूर्ण किया, सम्पन्न किया। पूरी = भरनी (ताना का तार जिसके भीतर से जाता है)। बिनव = बीनना, कपड़ा बुनना। सूत-कुसूत = (प्र० अ०) शुभाशुभ कर्म। कोरी = कर्त्ता, बुनने वाला।

---

१. छ०, व०, ख०-धरती; २. छ०-नारि; ३. बा०-बिनै; ४. छ०-कर्म ते, अन्य प्रतियों में-कर्मसे

भूमिका—इस रमैनी में कबीर ने एक सारगर्भित तथ्य को सुन्दर रूपक (allegory) द्वारा व्यक्त किया है। निम्नलिखित व्याख्या में हम पहले इस रमैनी का प्रस्तुतार्थ देंगे। उसके अनन्तर इसका प्रतीकार्थ दो ढंग से दिया जायगा—एक समष्टिपरक और दूसरा व्यष्टिपरक।

प्रस्तुतार्थ--कबीरदास ने प्रस्तुतार्थ के रूप में जुलाहे के कपड़ा बुनने की प्रक्रिया का वर्णन किया है। वह कपड़ा बुनने के लिए ताना तैयार करता है, दो गड्ढे खोदकर उसमें करघा प्रतिष्ठापित करता है, ढरकी में रखी हुई नरी के द्वारा बाना तैयार करता है। वह पूरी या भरनी को हजारों तागों से भरता है और फिर ताने-बाने के द्वारा सभी प्रकार के तागों को (सूत-कुसूत) मिलाता हुआ कपड़ा तैयार करता है।

प्रतीकार्थ--(१) ऐसे विश्वविधातारूपी जुलाहे के रहस्य को कोई समझ न सका, जिसने जगत्‌रूपी ताने को पसारा है। जिस प्रकार जुलाहा करघे को स्थापित करने के लिए दो गड्ढे तैयार करता है, उसी प्रकार विधाता सृष्टि के लिए पृथ्वी और आकाश नामक दो गड्ढे बनाता है। चन्द्रमा और सूर्यरूपी दो नरी के द्वारा जगत् का क्रम चलता रहता है। यहाँ सूर्य दिन का द्योतक है और चन्द्र रात्रि का। जगत् का कार्य दिन और रात्रि के द्वारा चलता है। इसीलिए सूर्य और चन्द्र को दो नरी कहा गया है। जगत् का सारा कार्य दिन और रात्रि में होता है। जुलाहे के पास दो प्रकार की नरी होती है—एक बाने के लिए और दूसरी ताने के लिए। 'सहस तार लै पूरिन पूरी' में 'सहस' शब्द असंख्यवाचक है और 'तार' शब्द में श्लेष है। जुलाहे के पक्ष में इसका अर्थ है—तागा और विधाता के पक्ष में अर्थ है—तारा या नक्षत्र।

जिस प्रकार वस्त्र को तैयार करने के लिए जुलाहे को अनेक तागों से युक्त भरनी की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार विधाता को सृष्टि के लिए सूर्य और चन्द्ररूपी नरी के अतिरिक्त असंख्य नक्षत्ररूपी तागों की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार अभी तक विधातारूपी जुलाहा सृष्टिरूपी वस्त्र बुनता जा रहा है अर्थात् सृष्टि की क्रिया सतत है। इसका न आदि है और न अन्त। किन्तु हम लोगों के लिए उसका समझना अत्यन्त कठिन और हमारी बुद्धि से परे है—दूरी।

तन्तुवाय अच्छे-बुरे दोनों प्रकार के सूत से निरपेक्ष भाव से वस्त्र बुनता है, उसी प्रकार जीव शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों (सूत-कुसूत) से शरीररूपी वस्त्र धारण करता है और विधाता इसमें निरपेक्ष है।

प्रतीकार्थ (२)—जीव के सम्बन्ध में धरती और आकाश में मूलाधार और सहस्रार का संकेत है और 'चाँद' और 'सूरुज' इड़ा-पिंगला के प्रतीक हैं। योगशास्त्र में इड़ा और पिंगला को चन्द्र और सूर्यनाड़ी कहते भी हैं। 'नरी' में श्लेष है, जिसका एक अर्थ है—जुलाहे की नरी और दूसरा अर्थ है—नाड़ी। 'सहसतार' शरीर में प्रसरित असंख्य नाड़ियों के लिए आया है।

—

२९*

वज्रहुं ते त्रिन खिन में होई, त्रिन ते वज्र करै पुनि सोई।
निझरुहिं[1] नीरु[2] जानि परिहरिया[3], करम[4] क बाँधल लालच करिया[5]।
कर्म धर्म मति बुधि परिहरिया, झूठा[6] नाम साँच लै धरिया।
रज गति[7] त्रिविध कीन्ह परगासा, कर्म धर्म बुधि केर विनासा।
रवि[8] के उदै तार भौ छीना, चर बीहर दोनों मँह लीना।
विष के खाए विष नहिं जावै, गारुड़ि सो जो मरत जियावै।
साखी—अलख[9] जो लागी पलक में, पलकहिं मँह डसि जाय।
विषहर मंत्र न मानै, तौ गारुड़ि काह कराय॥

शब्दार्थ—त्रिन = तृण, तिनका। निझरुहिं = निर्झर, सोता, (प्र० अ०) ब्रह्म। नीरु = जल (प्र० अ०) भवसागर, जगत्। परिहरिया = छोड़ देता है। विष = विषय वासना। बीहर = अचर। गारुड़ि = मन्त्र से सर्प का विष उतारने वाला (इस मन्त्र का देवता गरुड़ है। इसी लिए इस मन्त्र को 'गरुड़ मन्त्र' कहते हैं और मन्त्र को जानने वाले को 'गारुड़ि' कहते हैं।) अलख = अलक्ष्य, माया। पलकहिं = क्षण भर में। विषहर = विष का हरण करने वाला।

व्याख्या—प्रभु की महाशक्ति ऐसी है जिससे वज्र के समान कठोर वस्तु क्षण भर में तृण में परिवर्तित हो जाती है और वह शक्ति पुनः तृण को वज्र में परिवर्तित कर सकती है। यहाँ महाशक्ति प्रलय और सृष्टि की प्रतीक प्रतीत होती है। जो पार्थिव पदार्थ सघन और कठोर प्रतीत होते हैं, वे प्रलय में बिलकुल समाप्तप्राय हो जाते हैं और जो तत्व समाप्तप्राय अवस्था में पड़ा हुआ है, वह फिर सृष्टि में सघन रुप में आ जाता है।

जीव मूल स्रोत या निर्झर के महत्त्व को न समझ कर नीर या जल, जो प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है, को सब कुछ समझ कर, उसके मूल को त्याग देता है या भूल जाता है। यहाँ पर 'निर्झर' ब्रह्म का प्रतीक है और 'नीर' जगत् का प्रतीक है। जगत् को भवसागर कहा भी गया है। अज्ञानी जीव जगत् को ही सब कुछ समझ कर उसके स्रोत ब्रह्म को छोड़ देता है। अपने कर्म के अनुसार उसके भीतर जो वासनाएँ हैं, उनके बन्धन में पड़कर वह विषयों के लिए लोभ करता है।

वह वास्तव में कर्म, धर्म, मति और निश्चयात्मक ज्ञान को छोड़ कर, झूठे नाम को सचा मानकर उसे पकड़े रहता है। कबीर का 'झूठे नाम' से तात्पर्य हो सकता है—विभिन्न देवी-देवता अथवा शास्त्र—पुस्तकें आदि।

---

* टिप्पणी—ब० ७० के प्रतियों में यह रमैनी नं० ३१ पर है। उनमें इसके स्थानपर जो रमैनी है, वह अन्य प्रतियों में नं० ३८ की रमैनी है।

१. बा०-निझरू; २. बा० नरु; ३. बा०-परिहरै; ४. बा०के; ५. बा०-करै; ६. छ०-झूठी.बलि०, झूठहिं; ७. छ०-राजगति; ८. बलि० उदय भानु; ९. बा०-अलक।

रजोगुण का वेग तीन प्रकार से (तीव्र, मध्यम, मन्द गति) अपने को प्रकाशित कर अपना अधिकार जमाता है और इस प्रकार वह वास्तविक कर्म, धर्म और बुद्धि का नाश कर देता है। ठीक यही भाव गीता में श्री कृष्ण की उक्ति में आया है कि जीव काम और क्रोध के द्वारा पाप करता है जो कि रजोगुण से उद्भूत होता है—

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥ (३।३७)

कुछ लोगों ने 'त्रिविध' का अर्थ—सत्व, रजस्, तमस् – लिया है। किन्तु दो दृष्टियों से यह अर्थ उपयुक्त नहीं है—एक तो रमैनी में स्पष्टरूप से रजगति के लिए ही 'त्रिविध' शब्द आया है, दूसरे सत्त्व कर्म, धर्म और बुद्धि का विनाश नहीं करता। इसका विनाश रजोगुण के प्राबल्य से ही होता है।

जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर तारागण का प्रकाश क्षीण हो जाता है, उसी प्रकार आत्मप्रकाश होने पर मिथ्याज्ञान, जो चर-अचर दोनों में व्याप्त है, नष्ट हो जाता है।

'विष के खाए विष नहिं जाए'—इस चरण में प्रथम 'विष' विषय के लिए आया है और दूसरा—वासना के लिए। जिस प्रकार विष के खाने से विष नहीं दूर होता, उसी प्रकार विषय-भोग से वासना दूर नहीं होती। 'मनुस्मृति' में कहा गया है:—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ (२।९४)

"कभी काम की कामना उपभोग से शान्त नहीं होती है। जिस प्रकार आग घृत डालने से और धधक उठती है, उसी प्रकार काम भोग करने से और तीव्र हो उठता है।"

सच्चा गारुड़ अर्थात् मन्त्रवेत्ता वही है जो मरते हुए को जिला दे। वैसे ही सद्गुरु वह है जो भवसागर में डूबते हुए को बचा ले।

साखी—'अलख' शब्द का अर्थ है—अलक्ष्य, जो देखा न जा सके। अतः यह शब्द ब्रह्म, इन्द्रियातीत सत्ता और माया के लिए प्रयुक्त होता है। माया पलक अर्थात् क्षण भर में लगती है और क्षण भर में ही जीव को डँस लेती है। जीव विष को हरण करने वाले मन्त्र को अंगीकार ही नहीं करता। बेचारा मन्त्रवेत्ता सद्गुरु क्या करे?

टिप्पणी—इस साखी में माया को सर्पिणी बताया गया है। और उसके राग को विष बतलाया गया है। विषय-भोगी जीव को सर्पदंशित व्यक्ति कहा गया है। सद्गुरु के सच्चे उपदेश को गारुड़ बताया गया है जो मोहरूपी विषय को दूर करने का मन्त्र जानता है। यहाँ 'विषहर' का अर्थ है—विष के प्रभाव को हरने वाला (दे०—बृहत् हिन्दी कोश, १२८८)।

———

३०

वे[1] भूले षट दरसन भाई, पाषंड भेष रहा लपटाई।
जीव सीव का आहि नसौना, चारिउ वेद[2] चतुर गुन मौना।[3]
जैनी धर्म क मर्म न जाना, पाती तोरि देवघर आना।
दौना[4] मरुआ चंपा कै फूला, मानहुँ जीव कोटि सम तूला।
औ प्रिथिमी के रोम उचारै[5], देखत जन्म आपनो हारै।
मनमथ विंद[6] करै असरारा, अलपै[7] बिंद खसै[8] नहिं द्वारा।
ताकर हाल होय अधकूचा,[9] छव दरसन मँह जैनि विगूचा।[10]
साखी—ग्यान अमर पद वाहिरे, नियरे ते है दूरि।
जौं[11] जानै तिहि निकट है, रहा सकल घट पूरि॥

शब्दार्थ—सीव = कल्याण। नसौना = नाश करने वाला। चतुर गुन = चौगुना, सब प्रकार से। देवघर = मन्दिर। दौना = (सं० दमनक) एक पौधा जिसकी पत्तियों में तेज, पर कुछ कड़ुई गंध होती है। मरुआ = बन तुलसी। चम्पा = (सं० चम्पक) मझोले कद का एक पेड़ जिसमें हल्के पीले रंग के कड़ी महक के फूल लगते हैं। प्रिथिमी = पृथ्वी। असरारा = (फा०—इसरार) हठ। अधकूचा = अधकचरा। विगूचा = (सं०—विकुंचन) असमंजस, किंकर्त्तव्यविमूढ़। घट = शरीर, पिण्ड, मन, हृदय।

व्याख्या—कबीरदास ने इस रमैनी में शास्त्र-ज्ञान अर्थात् षट्दर्शन, जैनियों की कथनी-करनी में अन्तर तथा हठयोगियों की वज्रौली आदि क्रियाओं पर तीखा व्यंग्य किया है।

वह कहते हैं कि लोग षट्दर्शन अर्थात् शास्त्रीय ज्ञान में भटके हुए हैं और पाषण्ड के वेश से लिपटे हुए हैं अर्थात् पाखण्ड से ग्रस्त हैं। इस प्रकार का पाषण्ड जीव के शिव अर्थात् कल्याण का विनाशक है। चारों वेद चौगुने रूप में अर्थात् सब प्रकार से सत्य के सम्बन्ध में मौन हैं।

यद्यपि जैनी अहिंसा का प्रतिपादक है तथापि वह भी इन्हीं बाह्याचारों में पड़ा रहता है। वह वास्तविक धर्म का रहस्य नहीं जानता। वह फूल पत्ती तोड़कर देवालय में महावीर अथवा पार्श्वनाथ के चरणों में चढ़ाता है। वह यह नहीं सोचता कि पत्ती और फूल में भी जीव है और जिस अहिंसा के प्रतिपादन का वह दम्भ भरता है, उसी का वह विनाश करता है। वह जिन दौना और मरुआ की पत्तियों तथा चम्पा के पुष्पों को तोड़ता है वे भी मानों करोड़ों जीवों के तुल्य हैं। यहाँ 'प्रिथिमी के रोम'

---

१. बा०-औ; २. बा०-वद्ध; ३. छ०-मैना; ४. ब०-दमना, अन्य प्रतियों में दवना; ५. ब०, ख०, बलि०-उपारै; ६. ब०, बलि०-विन्दु; ७. बा०-कलपै; ८. ख०-खरवै; ९. छ०- अदबूदा, ब०, ख०-अदभूता, बलि०-अवबूचा; १०. ब०, ख०-बिगूता; ११. ब०, ख०-जानै ताको निकट है, अनजाने को दूर।

का लाक्षणिक प्रयोग हुआ है। इसका तात्पर्य है—घास, कुश आदि। वह घास, कुश आदि तोड़ता है। यह जानते हुए भी कि वह सजीव हैं, वह उनको उखाड़ता है और इस प्रकार समझते हुए भी हिंसा करके अपना जन्म नष्ट करता है।

हठयोगी हठपूर्वक वज्रौली क्रिया करता है जिससे कि अल्प वीर्य भी पतित नहीं होने पाता। इन सब लोगों का ज्ञान अधकचरा है। जैनी भी षट्दर्शनों में उलझा रहता है। (यहाँ पर कबीरदास ने भूल की है। षट्दर्शन हिन्दुओं के हैं, जैनी की इसमें निष्ठा नहीं है।)

साखी—जो ज्ञान के अमरपद से बाहर है, वह निकट से दूर हो जाता है अर्थात् वह अपने भीतर स्थित आत्मतत्त्व से पृथक् हो जाता है। जो इस रहस्य को जानता है, उसके लिए आत्मतत्त्व निकट है। वह सभी जीवों में एक समान व्याप्त है। (यदि 'अनजाने को दूर' पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा—जो नहीं जानता, उसके लिए दूर है।)

टिप्पणी—हठयोग में सहजौली, वज्रौली, अमरौली आदि अनेक क्रियाओं का विधान है। वज्रौली में वीर्य को भोग के समय ऊपर चढ़ाया जाता है। (विस्तार के लिए देखिये—हठयोग प्रदीपिका ३।९३)

३१*

(सत्यानुभव विना दुर्दशा प्रकरण)

सुम्रिति[1] आहि गुननि को चीन्हा, पाप पुन्न को मारग कीन्हा।
सुम्रिति वेद पढ़ै असरारा, पाखंड रूप करै हंकारा[3]।
पढ़ै वेद औ करै बड़ाई, संसै[4] गांठि अजहुँ नहिं जाई।
पढ़िकै[5] सास्त्र जीव वध करई, मूड़[6] काटि अगुवन के धरई॥
साखी—कहहिं कबीर ई[8] पाखंड, बहुतक जीव सताय[9]।
अनभौ भाव न दरसै, जियत न आप लखाय[11]॥

शब्दार्थ—सुम्रिति = स्मृतिशास्त्र, धर्मशास्त्र (मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि)। श्रुति = वेद, ब्राह्मण; आरण्यक, उपनिषद्। अगुवन = सामने। लखाय = दर्शन।

---

* ब०, ख० प्रतियों में नं० ३१ पर अन्य रमैनी में है। यह रमैनी नं० ३२ पर है।

१. बलि०, बं०-स्म्रति; बलि०, बं०-पुण्य; ३. बं०-अहंकार; ४, बं, बलि०-संशय; ५. छ०-पढ़ही सतशै; ६. छ०-मुण्डी; ७. अन्य प्रतियों में-अगमन; ८. बं०, इला०.पाषण्ड ते; ९. बा०-सताव; १०. अन्य प्रतियों में-अनुभव; ११. बा०-लखाव।

व्याख्या—स्मृतियों अर्थात् धर्मशास्त्रों ने गुणों अर्थात् धर्म-अधर्म का निर्णय किया है और पाप-पुण्य का मार्ग बताया है। दुराग्रही लोग स्मृति और श्रुति (वेद) दोनों को पढ़ते हैं, परन्तु उनके वास्तविक रहस्य को नहीं समझते हैं। वे पाषण्ड का दिखावा करते हैं और अहंकार से परिपूर्ण रहते हैं। वे वेद को पढ़ते हैं। वे केवल उसके शब्द को समझते हैं और उसकी महिमा गाते हैं। किन्तु वेदाध्ययन करने पर भी भ्रम की गाँठ नहीं टूटती। शास्त्र पढ़ने पर भी वे जीव का वध करते हैं। इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि मन्त्र पढ़कर वे जीव का वध करते हैं। प्रायः ऐसे अनुष्ठानों में, जिनमें पशु-बलि विहित है, उनमें पुजारी लोग मन्त्रोच्चारण के साथ ही पशु का वध करते हैं और उसका सिर काटकर देवमूर्ति के सामने रखते हैं।

साखी—कबीर का कहना है कि अपने को वेद और शास्त्र का अनुयायी बतलाने वाले पाषण्डी बहुत-से जीवों को पीड़ित करते हैं। उनको आत्मानुभव का दर्शन नहीं हो पाता। आत्मानुभव होने पर सभी प्राणियों में वही चेतन तत्त्व दिखलाई देगा। वे समदर्शी हो जायेंगे और फिर ऐसा हत्याकर्म नहीं करेंगे।

वे सारे जीवन आत्मस्वरूप को नहीं लख पाते। जिसने आत्म-परिचय नहीं प्राप्त किया, उसका वेद आदि का पाठ व्यर्थ है।

३२

अंध सो दरपन वेद पुराना, दरबी[1] कहा महारस जाना।
जस खर चंदन लादे भारा, परिमल बास न जान[2] गँवारा[3]।
कहहिं[4] कबीर खोजै असमाना, सो न मिला जिहिं[5] जाय गुमाना॥

शब्दार्थ—दरबी = करछुल। कहा = कैसे, क्या। खर = गधा। परिमल = सुगन्ध। असमाना = सातवाँ आसमान, स्वर्ग। गुमाना = अहंकार।

व्याख्या—अज्ञानी के लिए वेद और पुराण अन्धे के हाथ में दर्पण के समान है। जिस प्रकार हाथ में दर्पण होते हुए भी अन्धा उसमें अपना मुँह नहीं देख सकता, उसी प्रकार जिसमें प्रज्ञा नहीं है, केवल शब्दार्थ को जानता है, वह अन्धे के समान है। वह वेद-पुराणरूपी दर्पण में वास्तविक सत्य का स्वरूप नहीं देख पाता। जिस प्रकार करछुल पाक के मधुर रस में पड़ी रहती है, किन्तु उसके रस को नहीं जानती; वैसे ही अज्ञानी दिन-रात वेद-पुराण में रत रहने पर भी उसके सार को नहीं समझते। एक नीति-कथन है:—

---

१. छ०-गर्वी काह; २. छ०, इला०-जाने; ३. ख०. बा०- जानु गमारा; ४. बं०-कह; ५. बा०-जो जाय अभिमाना, बलि०-सो न मिले जेहि नहिं अभिमाना।

यस्य नास्ति निजा प्रज्ञा केवलं तु बहुश्रुतः।
न स जानाति शास्त्रार्थं दर्वी पाकरसं यथा॥

अर्थात् जिसके भीतर अपनी प्रज्ञा नहीं है, केवल बहुत पढ़ लिया है, वह उसी प्रकार शास्त्र के अर्थ को नहीं जानता जैसे करछुल पके हुए खाद्य में पड़े रहने पर भी उसके स्वाद को नहीं जानती। जैसे गधे के ऊपर भार लाद दिया जाय, किन्तु वह अज्ञ पशु उसकी विशेषता और सुगन्ध को नहीं जान पाता, वैसे ही शास्त्रियों और वेदपाठियों के सिर पर ग्रन्थों का केवल भार-सा है। वह उसके मर्म को नहीं जानते।

कबीरदास कहते हैं कि लोग स्वर्गादि लोकों, गगनमण्डल अथवा सातवें आसमान को जीवन का लक्ष्य बनाये रहते हैं और वहाँ सत्य की खोज करते हैं, किन्तु वह तत्त्व उनके हाथ में नहीं आता जिससे उनका अभिमान, अर्थात् देहात्म में मिथ्या तादात्म्य चला जाय और सत्य का अनुभव हो।

———

३३

वेद की[1] पुत्री सुम्रिति भाई, सो जेंवरि[2] कर लेतहि आई।
आपुहिं[3] बरी आपु[4] गर बंधा, झूठा[5] मोह काल को फंदा[6]।
बाँधत[7] बंधन छोरि न[8] जाई, विषै[9] रूप भूली दुनियाई।
हमरे लखत[10] सकल जग लूटा, दास कबीर राम कहि छूटा।
साखी—रामहिं राम पुकारते, जिभ्या परिगौ रौंस।
सूधा जल पीवै नहीं, खोदि पियन की हौंस॥

शब्दार्थ—जेंवरि = रस्सी (आ० अ०) कर्मकाण्ड। बरी = बटना (आ० अ०) कर्मकाण्ड-रचना। गर = गला, कण्ठ। मोह = आसक्ति। दुनियाई = सांसारिक, जगत्। रौंस = घट्टा, निशान। हौंस (अरबी-हवस) = प्रबल इच्छा, लालसा।

सन्दर्भ—पूर्व रमैनी में कबीर ने यह बतलाया है कि अज्ञानी लोग, जिनका चित्त शुद्ध नहीं है, वेद पढ़कर भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते। जैसे अन्धे को दर्पण प्राप्त होने पर भी अपना स्वरूप दिखलाई नहीं पड़ता, वैसे ही अज्ञानी को वेद मिलने पर भी अपने स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता।

व्याख्या—स्मृति भी वेद की पुत्री है अर्थात् वेद से निकली है। वह अपने हाथ में कर्म की डोरी लिये हुए आयी है। वाह्याचार से कभी मोक्ष नहीं मिलता, जीव बन्धन में फँसता जाता है। स्मृति ने कर्मों के जो भिन्न-भिन्न अनुष्ठान बतलाये हैं, वे

१. इला०-कि पुत्री है; २. बा०-जेवरि; ३. छ०-अपने; ४. छ०-अपन; ५. छ०,बा०-झूठी; ६. यं०-धन्धा, ७. बा० बँधवत बँधा; ८. बा०- नहिं; ९. छ०-विषिस रूप; १०. बा०-देखत।

केवल बन्धनरूप ही हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित कर्मों को करके जीव स्वयं अपने बन्धन की तैयारी करता है। वह अपने ही हाथों कर्मरूपी डोरी को बटकर अपने गले को बाँधता है। कर्म का मोह या आसक्ति झूठी है जिसमें कर्म करने वाला जीव फँसता जाता है।

प्रत्येक बाह्याचार का करना मानो अपने को बाँधना है। जीव समझता है कि इससे मेरा कल्याण होगा, परन्तु वह उसके लिए बन्धन सिद्ध हो जाता है। वह ऐसे जितने कर्म करता है, उतनी ही उसकी डोरी में ऐंठन पर ऐंठन पड़ती जाती है और बाद में किसी प्रकार भी छुड़ाने से नहीं छूटती। जीव केवल विषयरूप सांसारिकता में भटकता रहता है जिसका उपचार बाह्य अनुष्ठानों से नहीं हो सकता। हमारे देखते हुए सारा संसार कामना युक्त कर्मों के द्वारा लूटा गया। कबीरदास बाह्याचार से अलग रहकर राम के मर्म को पकड़कर इस बन्धन से बच गये अर्थात् मनुष्य की मुक्ति का यही उपाय है।

साखी—साधारणतः बिना मर्म समझे केवल 'राम-राम' रटने से लोगों के जिह्वा में घट्टे पड़ जाते हैं, परन्तु उनका उद्धार नहीं होता। जिस प्रकार सद्यः प्राप्त जल कोई न पिये और प्यास बुझाने के लिए कुआँ खोदकर पानी पीने की लालसा करे, उसी प्रकार इन लोगों की दशा है जो अपरोक्ष रूप से अपने भीतर ही विद्यमान ब्रह्म से अभिन्न प्रत्यगात्मा को न समझकर, नाना प्रकार के कर्मों के अनुष्ठान करके परोक्ष स्वर्ग में अपने कल्याण को खोजते हैं

———

३४

(मोक्ष स्थानाभावादि प्रकरण)

पढ़ि-पढ़ि पंडित करु चतुराई, निज मुक्ती मोहिं कहु[१] समुझाई।
कहँ[२] बस पुरुष कहाँ[३] सो गाऊँ, पंडित मोहिं सुनावहु नाऊँ।
चारि वेद ब्रह्मे निज ठाना, मुक्तिक मर्म उनहुँ नहिं जाना।
दान-पुन्य उन बहुत बखाना; अपने मरन की खबरि न जाना।
एक नाम है अगम गँभीरा, तहवाँ स्थिर[४] दास कबीरा॥
साखी—चिउँटी जहाँ न चढ़ि सकै, राई ना ठहराय।
आवागमन[५] की गम नहीं, तहँ सकलो जग जाय॥

शब्दार्थ—ठाना = रचा : चिउँटी = पिपीलिका, चींटी (आ० अ०) मन, वाणी। राइ = (सं०-राजिका) एक प्रकार की बहुत छोटी सरसों (आ० अ०) बुद्धि। गम = पहुँच।

१. इला०, बं०-कहहु, बुझाई; २. बा०-कहँ बसै; ३. इला०, बं०-कवन; ४. बा०-अस्थिर, छ०-अस्थल; ५. छ०-अवन गवन।

व्याख्या—हे पण्डित ! तुम शास्त्र पढ़कर चतुराई की बातें करते हो और मुक्ति के विषय में लोगों को बहुत उपदेश देते हो। जरा मुझे तो बताओ कि तुमने मुक्ति का क्या अनुभव किया है ? इसका क्या स्वरूप है ? पढ़ी हुई बातों का कहना तो केवल परोक्ष ज्ञान है। वह दूसरों के कथन का उद्धरण मात्र है। मुक्ति के विषय में वही कुछ कहने का अधिकारी है जिसे अपरोक्षानुभूति हुई हो। प्रायः पण्डित लोग मुक्ति के विषय में कहा करते हैं कि वह एक परम पुरुष से मिलन है। वह एक ऐसा लोक है जहाँ पहुँचने से हमारी मुक्ति हो जायगी। मैं यह पूछना चाहता हूँ कि जिस पुरुष से वे मिलने की बात करते हैं, वह कहाँ बसता है ? वह गाँव अर्थात् स्थान कहाँ है, जहाँ वह रहता है। उसका नाम तो कृपा कर बतलाइए।

ब्रह्मा ने चार वेदों की रचना की, किन्तु मुक्ति का वास्तविक स्वरूप वह भी न जान पाये। (यहाँ पर जो साधारणतः लोक प्रसिद्ध मान्यता है कि ब्रह्मा ने चार वेद बनाये और उनमें बतलाया कि दान-पुण्य करने से मनुष्य की मुक्ति हो जाती है, उसी लोकमान्यता पर कबीर ने प्रहार किया है)। तुम कहते हो कि ब्रह्मा ने वेदों में दान-पुण्य का बहुत बखान किया है और बतलाया है कि इससे मुक्ति मिल जायगी। लेकिन क्या उन्हें भी खबर है कि मृत्यु के बाद क्या गति होती है ?

एक तत्त्व है जो अगम और गम्भीर है अर्थात् वाणी, मन, बुद्धि से परे है। वहाँ कबीरदास स्थिर रूप में अवस्थित है। वही मोक्ष है। मोक्ष का कोई स्थान नहीं है। वह एक तत्त्व है जो सदा सिद्ध है, साध्य नहीं; सनातन है, कार्य नहीं। वह उत्पाद्य नहीं है, केवल चित् जड़ की ग्रन्थि के कारण उस तत्त्व का हमें बोध नहीं होता। चित्-जड़ ग्रन्थि का भेदन, अज्ञानरूपी पर्दे का हट जाना ही मोक्ष है। वह तत्त्व तो जैसा है, वैसा है। वह किसी के द्वारा सम्पाद्य नहीं है। इसी तथ्य को कबीर ने इस रमैनी में प्रतिपादित किया है। अभिनवगुप्तपादाचार्य ने इसी तथ्य का 'परमार्थ-सार' में अत्यन्त सुन्दर रूप में इस प्रकार वर्णन किया है:—

मोक्षस्य नैव किञ्चिद्,
धामास्ति न चापि गमनमन्यत्र।
अज्ञानग्रन्थिभिदा,
स्वशक्त्यभिव्यक्तता मोक्षः ॥ ६० ॥

(परमार्थ-सारः—पृष्ठ ११५)

अर्थात् मोक्ष का कोई वास-स्थान नहीं है। न मोक्ष के लिए कहीं अन्यत्र जाना होता है। अज्ञान की ग्रन्थि के भेद करने से अपने आत्मा की स्वातन्त्र्य-शक्ति की अभिव्यक्ति ही मोक्ष है।

साखी—साखी में दो शब्द 'चिउँटी' और 'राई' प्रतीकात्मक हैं। 'चिउँटी' सूक्ष्म से सूक्ष्म, छोटे से छोटे, ऊँचे से ऊँचे स्थान पर रेंगती हुई पहुँच जाती है। मन की भी यही दशा है कि वह चारों ओर भ्रमण कर सकता है। अतः 'चिउँटी' मन का प्रतीक है। 'राई' एक अत्यन्त क्षुद्र अन्नकण होता है जो कि सूक्ष्म से सूक्ष्म,

छोटे से छोटे पदार्थ पर स्थित रह सकता है। बुद्धि भी सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ में प्रवेश कर सकती है। अतः 'राई' बुद्धि की प्रतीक है।

जहाँ मन और वाणी नहीं जा सकते, जहाँ बुद्धि भी नहीं टहर सकती (यतो वाचो निवर्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह), जो आवागमन अर्थात् आने-जाने के परे है, वही परमतत्त्व है। वह देश, काल, आकार आदि से परे है। अज्ञान के बन्धन से छुटकारा पाकर उस परम तत्त्व की अनुभूति ही मोक्ष दशा है। कबीर कहते हैं कि यद्यपि वहाँ न आना है, न जाना है, वह सदा वर्तमान है, फिर भी आश्चर्य है कि पण्डितों के उपदेश से सारा जगत् उस ओर जाने का प्रयत्न करता है। कबीरदास 'बीजक' में ही अन्यत्र कहते हैं:—

नेरे न खोजै बतावै दूरि।
चहुँ दिशि बागुरि रही पूरि॥

मोक्ष या मुक्ति शब्द निषेधात्मक है। उसका भाव है—अज्ञान से छुटकारा पा जाना। अज्ञान से छुटकारा पाने पर ही अपने भीतर सदा विद्यमान परमतत्त्व की अनुभूति होती है। प्रश्न हो सकता है कि फिर साधना से क्या लाभ ? कबीर ने क्यों कहा कि गुरु की शरण में जाओ। इसका उत्तर यह है कि यद्यपि वह परम तत्त्व सिद्ध है, साध्य नहीं है; विद्यमान है, सम्पाद्य नहीं है; किन्तु उस पर भयङ्कर अन्धकार या अज्ञान का आवरण पड़ा हुआ है। सभी साधनाएँ योग आदि उसी परदे को हटाने के लिए हैं।

३५

(ज्ञान बिना मिथ्याऽहंकार प्रकरण)

पंडित भूले पढ़ि गुनि वेदा, आपु अपनपौ जान न भेदा।
संझा तरपन औ षट कर्मा, ई वहु रूप करहिं अस धर्मा।
गाइत्री जुग चारि पढ़ाई, पूछहु जाय मुक्ति किन पाई।
और[1] के छुए लेत हौ सींचा[2], तुमते कहत कौन है नीचा।
ये[3] गुन गर्व करहु अधिकाई, अधिके[4] गर्व न होय भलाई।
जासु नाम है गर्व प्रहारी, सो कस गर्वहिं सकै सहारी[5]॥
साखी—कुल मरजादा खोय कै, खोजिनि पद निर्वान।
अंकुर[6] बीज नसाय कै, भए[7] विदेही थान॥

शब्दार्थ—अपनपौ = आत्मस्वरूप। संझा = सन्ध्या (तीन समय की पूजा)। षटकर्मा = नित्य षट्कर्म (स्नान, सन्ध्या, पूजा, तर्पण, जप, होम)। सींचा = सींचना, स्नान करना। सहारी = बर्दाश्त करना, सहन करना। विदेही = मुक्ति। थान = स्थान।

---

१. ख०-और कछू ये, इला०, बलि०-छिपे; २. छ०-छोचा; ३. ब०-अबगुन; ४. ब०, बं०, ख०- ऊति के; ५. बा०-संहारी, ब०-सम्हारी; ६. बा० अंकुल; ७ छ०-नल भये।

सन्दर्भ—पिछली रमैनी में सद्गुरु ने यह बतलाया है कि वेदशास्त्र के पढ़ने-सुनने से मुक्ति नहीं मिलती। उसी विचार का विस्तार इस रमैनी में किया गया है।

व्याख्या—बड़े-बड़े विद्वान् वेद पढ़कर और विचारकर भी अज्ञान में पड़े हुए हैं, क्योंकि केवल ग्रन्थों के अध्ययन से कोई आत्मस्वरूप के महत्व को नहीं जान सकता। और जब तक आत्मस्वरूप का साक्षात्कार न हो जाए, तब तक मुक्ति नहीं मिल सकती। वेद-शास्त्र का ज्ञान तो केवल वाक्य-ज्ञान है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है;

वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन भव पार न पावै कोई।

निसि गृह मध्य दीप की बातनि, तम निवृति नहिं होई॥ (विनय-पद १२३)। पण्डित कहलाने वाले लोग सन्ध्या, तर्पण आदि षटकर्म करते हैं। इस प्रकार वे लोग बहुत से तथाकथित धर्म या बाह्याचार करते हैं। किन्तु सन्ध्या-गायत्री आदि से मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। पण्डित लोग गायत्री आदि मन्त्र चारों युगों अर्थात् अनन्त काल से पढ़ाते आ रहे हैं, किन्तु कोई इनसे जाकर पूछे कि गायत्री के जपमात्र से किसने मुक्ति पायी है ?

हे पण्डितो ! तुम उपदेश देते हो 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का, किन्तु अपने को इतना पवित्र और दूसरों को इतना अपवित्र समझते हो कि उनके स्पर्श मात्र से अपने को जल से सींचने लग जाते हो। इस प्रकार के तुच्छ भाव वाले तुम से नीच और कौन है ? क्या इन्हीं गुणों पर इतना गर्व करते हो ? (यदि 'अवगुन कर्म करहु अधिकाई' पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा—औरों के स्पर्श से स्वयं को सींचना अवगुन ही है। इसी अवगुन पर इतना गर्व करते हो)। अधिक गर्व करने से कल्याण नहीं होगा। जो परमात्मा सर्व गर्व-विनाशक है, वह इस प्रकार का गर्व कैसे सह सकता है ?

साखी—ऊँच-नीच अथवा जातिगत मर्यादा को छोड़कर या मिटाकर वासना रूपी बीज और अहंकाररूपी अंकुर को नष्ट कर जिसने निर्वाण-पद को खोजा है, वही 'विदेही' पद को प्राप्त करता है अर्थात् देह के रहते हुए भी उसे देह का अभिमान नहीं रह जाता है। वह 'केवली' हो जाता है।

टिप्पणी—मुक्ति दो प्रकार की मानी गयी है--जीवन-मुक्ति और विदेह-मुक्ति। इस जीवन में ही आत्मसाक्षात्कार हो जाना जीवन-मुक्ति है। इस दशा में देह और उसके व्यापार बने रहते हैं। ऐसा ज्ञानी मरने के बाद जब ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है कि पुनः देह नहीं प्राप्त करता, तब उस स्थिति को 'विदेह-मुक्ति' कहते हैं। 'विदेही थान' का अर्थ है—विदेही पद। जीवन में भी देह के रहते हुए जिसे देह का अभिमान नहीं है, वह 'विदेही' है। यहाँ पर 'विदेही थान' में 'विदेह-मुक्ति' का भाव नहीं है, किन्तु उस पद का संकेत है जो कि देह के रहते हुए भी, देह के अभिमान के न रहने से प्राप्त होता है। 'वि' उपसर्ग का अर्थ है—विगत। 'विदेही' का अर्थ

हुआ—विगत हो गया है देह का भाव जिसमें से, वह है—विदेही अर्थात् जो कैवल्य को प्राप्त हो चुका है वह विदेही है। कैवल्य से तात्पर्य है—देह या शरीर से सर्वथा भिन्न, केवल आत्मभाव।

३६

(ज्ञान भूमिकादि प्रकरण)

ग्यानी चतुर विचच्छन लोई, एक सयान सयान न होई।
दुसर सयान को मरम न जाना, उतपति परलै[1] रैनि[2] विहाना।
बानिज एक सभन मिलि ठाना, नेम धरम संजम भगवाना।
हरि अस ठाकुर तजा[3] न जाई, बालन[4] भिस्त गाव[5] दुलहाई।
साखी—ते नर कहहु[6] कहाँ गए, जिन्हहिं[7] दीन्ह गुर घोंटि।
रामनाम[8] निज जानि के, छाड़हु वस्तुहिं[9] खोंटि॥

शब्दार्थ—विचच्छन = बारीकी छाँटने वाला। लोई = लोग। परलै = प्रलय। रैनि = रात्रि। विहाना = प्रातः। बानिज = वाणिज्य; व्यापार। बालन = बाल बुद्धि वाले, नासमझ। भिस्त = बहिश्त, स्वर्ग। दुलहाई = विवाह का गीत। घोंटि = घुट्टी। खोंटि = दोष।

सन्दर्भ—पिछली रमैनी में ऐसे विद्वानों के मिथ्या-ज्ञान का थोथापन दिखलाया गया है, जिन्हें प्रत्यगात्मा का साक्षात्कार नहीं है। उसी क्रम में इस रमैनी में भी वाक्य ज्ञान और शास्त्रीय-पाण्डित्य के बल पर आत्मानुभूति की अप्राप्ति का वर्णन किया गया है।

व्याख्या—एक प्रकार के वे सयाने लोग हैं जो वाक्य-ज्ञानी, पण्डित और वेद-शास्त्र की बारीकी छाँटने वाले हैं। वे वस्तुतः सयाने नहीं हैं। दूसरे सयाने वे हैं जिनको अपरोक्षानुभूति है, ब्रह्म से अभिन्न प्रत्यगात्मा का अनुभव है। वे ही वास्तविक सयाने हैं। उनके मर्म को लोग नहीं जानते। केवल वेदशास्त्र के पाण्डित्य को आधार मानने से उत्पत्ति और प्रलय अर्थात् आवागमन का चक्र वैसे ही चलता रहेगा, जैसे दिन और रात्रि।

सभी पण्डितों ने मिलकर एक विचित्र व्यापार चला रखा है। नियम, धर्म, संयम, भगवान आदि उस व्यापार के साधन हैं। वे यह बतलाते हैं कि स्वर्ग में विष्णु भगवान से मिलन होगा, तब जीव सब दुःखों से मुक्त हो जायगा। हरि अर्थात् विष्णु

---

१. ब०-परलय; २. इला०- रयनि; ३. बा०- तेजि न, बं०, इला०-ते जिन; ४. ब०-बहिस्त; ५. छ०-गावै; ६. बा०-कहवाँ चलि गए, बं०-मरिकै कँह गए; ७. बा०-जिन्ह दीन्हा; ८. बलि०-सत्य नाम; ९. बा०-वस्तू।

जैसे स्वामी को छोड़ा नहीं जा सकता। नासमझ लोग स्वर्ग में भगवान विष्णु से मिलन अर्थात् विवाह के गीत गाते रहते हैं।

साखी—बतलाओ तो सही कि जिनको गुरुआ लोगों ने बड़े-बड़े मंत्रों की घुट्टी पिलाई थी, वे लोग कहाँ गये ? क्या वस्तुतः वे मुक्त हो गये। निज अर्थात् अपने भीतर ही प्रत्यगात्मा को राम नाम समझकर, उसीके अनुभव के लिए प्रयत्न करो। व्यर्थ की बातों को छोड़ दो।

—

३७

एक सयान सयान न होई, दोसर सयान न जानै कोई।
तीसर सयान सयानहिं खाई, चौथ सयान तहाँ लै जाई।
पँचये सयान न जानै कोई, छठवे मा[1] सभ गैल विगोई।
सतये सयान जो जानहु[2] भाई, लोक वेद मा देहु देखाई।
साखी—बीजक बिन[3] बतावई, जो वित गुप्ता होय।
सब्द[4] बतावै जीव को, बूझै बिरला कोय॥

शब्दार्थ—सयानहिं = स्थूल ज्ञान का हेतु अर्थात् मन। विगोई = विगोपन, नष्ट कर देना; खो देना। बीजक = (i) गुप्त धन को बताने वाली सूची, (ii) परमार्थ का रहस्य बताने वाला।

सन्दर्भ—पूर्व रमैनियों में कबीरदास इस बात पर बल देते रहे हैं कि बाह्याचार से कुछ लाभ नहीं होता है। आत्मसाक्षात्कार ही जीवन का चरम लक्ष्य है। गुरु द्वारा उपदिष्ट पद्धति पर साधना करने से तथा शरीर, मन, बुद्धि आदि में आत्मभाव का त्याग करने से ही उस भूमि का उदय होता है जिससे वास्तविक तथ्य प्रत्यक्ष हो जाता है। प्रस्तुत रमैनी में कबीर ने उसी को 'सातवाँ सयान' कहा है।

व्याख्या—कबीर ने प्रस्तुत रमैनी में ज्ञान अथवा योग की सात भूमियों का उल्लेख किया है। योग पथ के सभी अनुगामी इन सात भूमियों से परिचित हैं। पहली भूमि 'शुभेच्छा' की है। शुभेच्छा मात्र से कोई सयाना या ज्ञानी नहीं हो जाता। इसी के लिए कबीर ने कहा है—'एक सयान सयान न होई।' दूसरी भूमि 'विचारणा' की है। इस भूमि में जो स्थित होता है, वह केवल मानसिक व्यापार की दशा में रहता है। इसी लिए उसे वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। उसे आत्मा का ज्ञान नहीं होता। इसी लिए कबीर ने कहा है—'दोसर सयान न जानै कोई' अर्थात् दूसरी भूमि में रहने वाला ज्ञानी या योगी कुछ नहीं जानता।

---

१. बं०-माँह; २. बा०-जाने; ३. बा०-बतावै वित्त को; ४. बा०-प्रति में 'वैसे सब्द' है।

तीसरी भूमि 'तनुमानसा' की है। इस भूमि में सब प्रकार के ज्ञान के हेतु मन को योगी खा जाता है अर्थात् मन सूक्ष्म होने लग जाता है। इसीलिए कबीर कहते हैं—'तीसर सयान सयानहिं खाई'। यहाँ 'तीसर सयान' का अर्थ है—तीसरी भूमि में स्थित ज्ञानी और 'सयानहिं' का अर्थ है—स्थूल ज्ञान के हेतु मन को ही। चौथी भूमि 'सत्त्वापत्ति' की है। इसमें स्थित योगी या ज्ञानी मन को 'तहाँ' अर्थात् आत्मतत्त्व में ले जाता है। भावार्थ यह है कि शुद्ध सत्त्व की अवस्था में मन आत्मतत्त्व के साक्षात्कार के लिए सक्षम हो जाता है।

पाँचवीं भूमि 'असंसक्ति' ज्ञान भूमि की है। यहाँ से 'असम्प्रज्ञात समाधि' प्रारम्भ होती है। इस अवस्था में योगी के सामने आत्मतत्त्व को छोड़कर अन्य कोई पदार्थ नहीं रह जाता है। इसी को कबीर ने कहा है—'पँचये सयान न जानै कोई' अर्थात् इस भूमि में पहुँचने पर आत्मतत्त्व को छोड़कर अन्य किसी पदार्थ का बोध नहीं रहता। छठी भूमि 'परार्थाभाविनी' कही गयी है। इस भूमि में एक आत्मतत्त्व को छोड़कर शेष सब पदार्थों का विगोपन अर्थात् अभाव हो जाता है। इसी बात को कबीर ने कहा है—'छटये मा सब गैल बिगोई'। सातवीं 'तुर्यगा' भूमि है। इसमें स्थित ज्ञानी या योगी सदा स्व-स्वरूप में स्थित रहता है। यह अवस्था अत्यन्त दुर्लभ है। ऐसे ज्ञानी का दर्शन अत्यन्त कठिन है। इसीलिए कबीर कहते हैं— हे भाइ! यदि 'सातवें सयान' को जानते हो तो लोक में उसे दिखा दो अथवा वेद में उसकी चर्चा बताओ। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसे ज्ञानी बिरले ही होते हैं और साधारण लोग उन्हें पहचान नहीं पाते।

साखी—जो वित्त या धन गुप्त होता है अर्थात् कहीं पृथ्वी में गाड़कर या अन्यत्र छिपाकर रखा रहता है, उसका पता केवल उसके बीजक अर्थात् गुप्तधन बताने वाली सूची से ही लगता है; उसी प्रकार जीव के गुप्तधन को अर्थात् वास्तविक स्वरूप को शब्दरूपी बीजक (गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान-दीक्षा) बतलाता है। इसे कोई बिरला ही समझता-बूझता है।

टिप्पणी (१)—योगवाशिष्ठ में ज्ञान अथवा योग की सात भूमियाँ इस प्रकार बतायी गयी है :

ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता।
विचारणा द्वितीया स्यात्तृतीया तनुमानसा॥
सत्त्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका।
पदार्थाभाविनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता॥

(i) **शुभेच्छा**—परम तत्त्व की इच्छा, सत्य को पाने की कामना, मुमुक्षा।

(ii) **विचारणा**—गुरु द्वारा प्राप्त उपदेश का मनन, चिन्तन।

(iii) **तनुमानसा**—मन का क्षीण होना। अनेक अर्थों को छोड़कर जब मन सत्य को ग्रहण करता है और वही चित्त के सामने रखता है, तब मन की स्थूलता नष्ट हो जाती है। वह केवल एक लक्ष्य में एकाग्र हो जाता है। उसकी वासनाएँ क्षीण होने लगती हैं। अनेक पदार्थों की लालसा और वासान

के क्षय के कारण यह 'तनुमानसा' भूमि कहलाती है। ये तीनों साधना भूमियाँ हैं। इन तीन भूमियों में रहने वाला केवल साधक कहलाता है।

(iv) **सत्त्वापत्ति**—शुद्ध अन्तःकरण जिसमें सत्त्वगुण प्रधान हो जाय, उसमें चित्त का अपरोक्ष रूप से लगा रहना। सत्त्व में चित्त की स्थिति 'सत्त्वापत्ति' नामक चौथी ज्ञानभूमि है। 'सत्त्वापत्ति' का अर्थ है—सत्त्व की सम्यक् अवस्था। यह फलभूमि है। यह सम्प्रज्ञात योगभूमि है। इसके बाद की तीन भूमियाँ असम्प्रज्ञात योगभूमियाँ हैं।

(v) **असंसक्ति**—शुद्ध सत्त्वलाभ के अनन्तर विषयों से सारी आसक्ति का हट जाना पाँचवीं असंसक्ति ज्ञानभूमि है।

(vi) **परार्थाभाविनी**—जो ज्ञानभूमि परब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी की भावना नहीं करती, वह परार्थाभाविनी भूमि है।

(vii) **तुर्यगा**—इसमें जीव चौथी अवस्था (तुरीयावस्था) में पहुँच जाता है और सर्वदा प्रबुद्ध रहता है। इस स्थिति में उसे सब ब्रह्ममय प्रतीत होता है।

टिप्पणी (२)—इस रमैनी में जो 'एक', 'दोसर', 'तीसर' आदि शब्द आये हैं, उनका कुछ विद्वानों ने इस प्रकार अर्थ किया है :

एक	=	अद्वैतवादी।
दोसर	=	मायावादी।
तीसर	=	जीववादी।
चौथ	=	तटस्थ ईश्वरवादी।
पँचये	=	इन्द्रियात्मवादी।
छठये	=	मन आत्मवादी।
सतये	=	देहात्मवादी।

परन्तु यह अर्थ उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। कारण यह है कि प्रथमतः 'एक', 'दोसर', 'तेसर' आदि के साथ 'सयान' शब्द जुड़ा हुआ है, जिसका अर्थ 'चतुर या ज्ञानी' होता है। उपर्युक्त अर्थ के साथ उसकी संगति नहीं बैठती। दूसरे यहाँ पर कबीर ने सभी ज्ञानियों या 'सयानों' का एक आरोही क्रम बतलाया है। यह क्रम उपर्युक्त अर्थ में लुप्त हो जाता है। इसलिए यह अर्थ ग्राह्य नहीं प्रतीत होता।

टिप्पणी (३)—कुछ विद्वानों ने इस रमैनी में अद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैत-वाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद आदि का भाव देखा है। किन्तु यह अर्थ भी अग्राह्य है, क्योंकि पहले तो कबीर का दर्शन से विशेष प्रयोजन नहीं था। सम्भवतः वह इतने प्रकार के दर्शन जानते भी न थे। दूसरे ये सभी 'वाद' बिना खींचातानी के इस रमैनी में लगाये भी नहीं जा सकते। तीसरे यहाँ कबीर ने 'सयानों' अर्थात् ज्ञानियों का क्रम बतलाया है, वादों का क्रम नहीं।

३८

यहि विधि कहौं कहा नहिं माना, मारग माँहि[1] पसारिन ताना।
रात्रि दिवस मिलि जोरिन तागा, ओटत[2] कातत भरम न भागा।
भरमै सभ जग[3] रहा समाई, भरम छोड़ि कतहूँ नहि जाई।
परै न पूरि दिनहु दिन छीना, तँहई[4] जाय जहँ अंग विहीना[5]।
जो मत आदि अंत चलि आवा[6], सो मत सभ उन प्रगट सुनावा[7]॥
साखी—यह संदेस फुर मानिकै, लीन्हेउ[8] सीस चढ़ाय।
संतो है संतोष सुख, रहहु तो हिरदय जुड़ाय॥

शब्दार्थ—ओटत = कपास को चरखी में दबाकर रुई और बिनौला अलग करना। ओटत-कातत = (प्र० अ०) तर्क-वितर्क या वाद-विवाद करते हुए। पूरि = पूर्णता। अंग विहीना = ज्ञान-चक्षु से रहित। फुर = सत्य।

सन्दर्भ—पूर्व रमैनी में कबीर ने कहा है कि केवल सद्गुरु ही सार शब्द को बतला सकता है। बहुत कम लोग उसको समझने की चेष्टा करते हैं। प्रायः लोग शास्त्र-पुराण और उनके प्रतिपादकों के मत-मतान्तर में उलझे रहते हैं। वह इसी तथ्य का इस रमैनी में विस्तार करते हैं:—

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि मैं इस प्रकार समझाकर कहता हूँ कि चरम सत्य सातवीं भूमि में है। उसी को जानने की चेष्टा करो। परन्तु मेरी बात कोई नहीं मानता।

इसके बाद कबीर जुलाहे के रूपक द्वारा उन जीवों की दशा का वर्णन करते हैं जो गुरुआ लोगों के उपदेश को सत्य मानकर बाह्याचार में लगे रहते हैं और मत-मतान्तर तथा वाद-विवाद में उलझे रहते हैं।

जुलाहा प्रायः किसी मार्ग में अपना ताना-बाना फैलाता है। वह दिन-रात अपना ताना बुनने और जोड़ने में लगा रहता है। वह कपास को ओट कर रुई बनाता है और फिर उसे कातकर तागा बनाने में लगा रहता है। यही दशा सांसारिक जीवों की है। वे संसार-रूपी मार्ग में अपना ताना-बाना फैलाते हैं। वे मत-मतान्तर के ओटने-कातने अर्थात् वाद-विवाद या तर्क-वितर्क के चक्कर में पड़े रहते हैं। दिन-रात परिश्रम कर किसी एक मत का तागा जोड़ पाते हैं, किन्तु वास्तविकता से दूर ही रहते हैं। सभी सांसारिक जीवों में अज्ञान-रूपी भ्रम समाया हुआ है। वही भ्रम उनके लिए प्रिय हो गया है। वे उससे चिपके रहते हैं। उसे छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाना चाहते। इतना सब करते हुए भी वे पूर्णता या परमार्थ को नहीं पाते। 'परै न पूरि' का अर्थ है—पूर्णता सिद्ध नहीं हो पाती। वे दिन-प्रतिदिन वाद-विवाद के

टिप्पणी—बड़ौदा तथा खड्गविलास वाली प्रति में यह रमैनी संख्या २९ पर है।

१. छ०-माँझ; २. छ०-वोटत; ३. बां०-घट; ४. बा०-जंहाँ जाय; ५. बा०-बिहूना; ६. बं०-आया; ७. बं०-लखाया; ८. ब०-लीन्हों।

कारण क्षीण होते जाते हैं। यहाँ 'छीना' में व्यञ्जना यह है कि उनका ज्ञान क्षीण होता जाता है। फिर भी वे सद्गुरु की खोज में नहीं जाते। वे फिर वहीं जाते हैं, जहाँ अंग विहीन अर्थात् ज्ञान-चक्षु से रहित गुरुआ लोग हैं। ऐसे गुरुआ लोग उनका अज्ञान दूर नहीं कर पाते। वे उनको वही मत दिखलाते हैं जो आदि से अन्त तक उनके सम्प्रदाय में रूढ़ हो गया है।

साखी—जीवों ने शास्त्रियों और कर्मकाण्डियों के उपदेश को सत्य मानकर, उसे शिरोधार्य कर रखा है। परन्तु हे सन्तो! वास्तविक सुख सकाम कर्म और विषय-वासना में नहीं है। वह उस सन्तोष में है जो आशा-तृष्णा से परे हैं। यदि वह सन्तोष प्राप्त हो जाय तो हृदय शीतल हो जाय।

३९

(ज्ञान बिना कलमा सुन्नति इत्यादि की निरर्थकता)

जिन[1] कलमा[2] कलि माँह पढ़ाया, कुदरत[3] खोजि तिनहु नहिं पाया।
कर्म[4] ते कर्म करै करतूती[5], वेद कितेब भयीं[6] सब रीतीं[7]।
कर्म तो सो जो भव[8] औतरिया, कर्म तो सो निमाज[9] को धरिया।
कर्म ते सुन्नति और[10] जनेऊ, हिन्दू तुरुक न जानै भेऊ॥
साखी—पानी पौन संजोय के, रचिया यह[11] यह उतपात।
सुन्नहि सुरति समाइया[12], कासों कहिए जात॥

शब्दार्थ—कलमा = वह वाक्य जो मुसलमानों के धर्म-विश्वास का मूल मन्त्र है—ला इलाह इल्लिल्लाह, मुहम्मदुर्रसूलिल्लाह। ला = नहीं। इल = सिवा। इलाह = पूजनीय। रसूल = भेजा हुआ, पैगम्बर। कुदरत = ईश्वरीय शक्ति, प्रकृति। कितेब = 'किताब' का विकृत रूप, पवित्र किताब, (इसका साधारण अर्थ है—पुस्तक, किन्तु प्रायः 'कुरान' के अर्थ में प्रयुक्त होता है।) निमाज = मुसलमानों की ईश्वर प्रार्थना जो नित्य पाँच बार होती है। सुन्नति = खतना, मुसलमानी। भेऊ = भेद, रहस्य। पानी-पवन = संक्षेप में पञ्चभूतों के प्रतीक। सुन्नहि = आत्मा, जो शरीर आदि के धर्म से सर्वथा शून्य (रहित) है। सुरति = चित्त की अनुरागात्मिका वृत्ति। समाइया = समाविष्ट हो गया।

---

१. छ०, बं०-जिन्ह; २. बा०-कलिमा; ३. बा०-कुदरति; ४. छ० करमत, बलि०-कर्मत, बं०-करि सतकर्म; ५. बा०-करतूता; ६. बा०-भया; ७. बा०-रीता; ८. बा०-गर्भ, छ०-गर्भे; ९. बा०-जो नामहि, छ०-नाम जाके; १०. छ०-अरु; ११. छ०, ब०-ई; १२. छ०-समाय के, ब०, ख०-समोय के, इला०, बं०- समानिया, बलि०-समोइय।

सन्दर्भ—इसके पहले की रमैनी में कबीर ने सामान्य रूप से नाना प्रकार के साम्प्रदायिक गुरुओं के विरुद्ध आवाज उठायी है जो कि भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों से जीवों को भटकाते रहते हैं। अब इस रमैनी में वह विशेष रूप से उन पीरों और मुसलमान सन्तों के विरोध में कहते हैं जो कि यह विश्वास दिलाते हैं कि कलमा के पढ़ने से कुदरत या ईश्वरीय शक्ति का पता चल जाता है।

व्याख्या—जिन लोगों ने कलियुग में कलमा पढ़ाकर यह विश्वास दिलाया कि इससे ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है, वे स्वयं ही उसको खोजते-खोजते हार गये और कभी ईश्वर को न प्राप्त कर सके। लोग एक सकाम कर्म के अनन्तर दूसरे सकाम कर्म करते रहते हैं। चाहे वेद हों या कुरान सभी कर्म की ही रीति बतलाते हैं। सकाम कर्म से ही जीव बार-बार संसार में अवतरण करता है अर्थात् जन्म लेता है। नमाज भी उसी प्रकार का एक बाह्याचार है। उससे भी आत्मसाक्षात्कार नहीं हो सकता। हिन्दू यज्ञोपवीत का कर्म स्वीकार करता है और मुसलमान सुन्नत का। किन्तु वास्तविक कर्म को न हिन्दू जानता है, न मुसलमान।

साखी—कर्म से ही जल और वायु अर्थात् पञ्चमहाभूतों को संयुक्त कर यह शरीर-रूपी बखेड़ा (उत्पात) रचा गया। जाति-धर्म आदि का भेद शरीर और कर्म के ही आधार पर है। जो शरीर आदि के धर्म से सर्वथा विहीन (शून्य) शुद्ध आत्मा है, उसमें यदि चित्तवृत्ति लगायें तो यह पता चलेगा कि जाति, सम्प्रदाय आदि के भेद कृत्रिम हैं। आत्मा में जाति सम्प्रदाय आदि का कोई भेद नहीं है। आत्म-दृष्टि से सभी एक हैं। फिर जाति-पाँति की बात किससे कही जाय ? उस स्थिति में यह बोध होता है कि जाति-सम्प्रदायगत भेद वास्तविक नहीं है।

४०

आदम आदि सुद्धि[१] नहिं पाई, मामा हौवा कहाँ ते आई[२]।
तहिया[३] होते तुरुक न हिन्दू, न मा के रुधिर पिता के बिंदू।
तब नहिं होते गाय कसाई, तब कहु बिसमिल किन फुरमाई।
तब न इ होते कुल औ जाती, दोजख भिस्त[४] कवन उतपाती।
मन मसले[५] की खबरि[६] न जानै, मति भुलान दुइ दीन बखानै॥
साखी—संयोगे का गुन रवै, बिजोगे[७] का गुन जाय।
जिभ्या स्वाद[८] के कारने, कीन्हें बहुत उपाय॥

---

१. बा०-सुधिना, बं०-सुद्धि नहिं पावा; २. बं०-पावा: ३. बा०-तब नहिं होत तुरुक औ हिन्दू, माय के रुधिर पिता के बिन्दू; ४. ब०-बहिस्त; ५. ब०, ख०- मुसले; ६. बा० सुधि; ७. बं०-बिन योगे का; ८. ब०-स्वारथ।

शब्दार्थ—आदम = सामी मतों के अनुसार सृष्टि का सबसे पहला पुरुष। मामा (अरबी) = स्त्री। हौवा = आदम के साथ उत्पन्न की गयी स्त्री। रुधिर = रज। बिन्दू = वीर्य। बिसमिल = घायल करना, काटना। दोजख = नरक। भिस्त = (फा०—बिहिस्त), स्वर्ग। उतपाती = उत्पन्न किया। मसले = विचारणीय विषय। दीन = धर्म। गुन = होना, परिणाम, पदार्थ। रवै = (फा०—रवा) गति, चलना, प्रसार, वृद्धि।

सन्दर्भ—पिछली रमैनी में कबीर ने यह कहा है कि जो मुल्ला लोग यह दावा करते हैं कि कलमा पढ़ने पर मनुष्य को सत्य का साक्षात्कार हो जायगा, वे भी कुदरत या ईश्वर की शक्ति को खोजते-खोजते थक गये, किन्तु उसे समझ न पाये। प्रस्तुत रमैनी में कबीर सभी धर्म (यहूदी, इस्लाम, इसाई) की इसी प्रकार की अन्य धारणाओं की असारता बतला रहे हैं।

व्याख्या—सभी सामी धर्मों के मानने वालों की यह धारणा है कि सृष्टि के प्रारम्भ में आदम नामक एक पुरुष हुआ और हव्वा नामक एक स्त्री हुई और उन्हीं से यह सृष्टि चली। कबीर का कहना है कि यह धारणा सर्वथा भ्रान्त है।

आदि पुरुष को यह पता भी न था कि उसकी स्त्री हव्वा कहाँ से आ ग़यी ? इस प्रकार के विश्वास से सामी धर्मावलम्बी यह सिद्ध करना चाहते हैं कि सामी धर्म को ही आदि सत्य का पता है और वह ईश्वर-निर्मित है। कबीर यह कहते हैं कि सृष्टिके आदि में न कोई तुर्क था और न कोई हिन्दू। प्रारम्भ में स्त्री के रज और पुरुष के वीर्य से सृष्टि का उद्भव मानना सर्वथा भ्रान्त है। यदि इसे माना जाय तो यह प्रश्न उठता है कि आदि स्त्री-पुरुष कौन थे ? इस प्रकार से 'अनवस्था दोष' आ जायगा।

मुसलमानों का यह विश्वास है कि गाय आदि पशुओं को 'बिस्मिल्लाह' मन्त्र पढ़कर, हलाल करके खाने से कोई दोष नहीं लगता और 'बिस्मिल्लाह' का मन्त्र आदि काल से चला आया है। कबीर कहते हैं कि आदि में न तो गाय थी और न कसाई। फिर यह 'बिस्मिल्लाह' पढ़कर हलाल करने का प्रश्न कहाँ से आया ?

आदि में न कुल था और न जाति, न स्वर्ग था, न नरक। यह केवल मानव की कल्पना है। यह समझना कि जो किसी विशेष धर्म का अनुयायी है अथवा विशेष कुल या जाति में पैदा हुआ है, वह स्वर्ग प्राप्त करेगा, अन्य लोग नरक में जायेंगे, सर्वथा निराधार है।

बेचारा मन इन सब समस्याओं के रहस्य को बिलकुल नहीं जानता। वह स्वर्ग-नरक की कल्पना मात्र करता रहता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है आदि में हिन्दू-तुर्क इत्यादि कोई धर्म नहीं थे, भ्रान्त-मति मनुष्य ने तो इन दोनों धर्मों को गढ़ लिया है।

साखी—कबीर का कहना है कि 'बिस्मिल्लाह' पढ़कर गाय आदि के वध का

अनुमोदन करने के लिए जो आदम-हव्वा, स्वर्ग-नरक आदि की कल्पना की गयी है, वह सब निराधार है। सच बात तो यह है कि संयोग से ही गुण की वृद्धि या प्रसार होता है और वियोग से गुण का विलय हो जाता है। इन्द्रिय और विषय के संयोग से ही स्वाद का गुण उत्पन्न होता है, और इसी स्वाद के लिए 'बिस्मिल्लाह' और 'हलाल' के उपाय ढूँढ़े गये हैं।

४१

(देवादि मोह विडम्बना प्रकरण)

अंबु कि[1] रासि[2] समुद्र कि[3] खाँई, रवि ससि कोटि तैतिसो भाई।
भौंर[4] जाल मँह आसन माँड़ा, चाहत सुख, दुख संग न छाँड़ा।
दुख कै मर्म न[5] काहू पाया, बहुत भाँति के जग भरमाया[6]।
आपुहि[7] बाउर आपु सयाना, हिरदय बसे सो राम न जाना॥

साखी— तेई हरि तेइ ठाकुर, तेई हरि के दास।
नाँ[8] जम भया न जामिनी, भामिनि चली निरास॥

शब्दार्थ—अम्बु = जलबिन्दु (प्र० अ०) तन्मात्रा, परमाणु आदि। समुद्र = सागर (प्र० अ०) प्रकृति। भौंर = (सं०—भ्रमर) चक्कर, आवर्त (भ्रमं राति इति भ्रमरः) (प्र० अ०) गमनागमन। माँड़ा = मारा, लगाया, रचा। ठाकुर = स्वामी। जम = (सं० यम) काल, मृत्यु, आवागमन का प्रतीक। जामिनी = यामिनी, रात्रि (प्र० अ०) अज्ञान। भामिनि (संस्कृतभामिनी) = स्त्री (भामः अस्ति अस्याम् इति भामिनी, भामः शब्द के कई अर्थ होते हैं, जिसमें एक है—काम। अतः 'भामिनी' का अर्थ हुआ—कामिनी) (प्र० अ०) माया।

व्याख्या—जिस प्रकार जलबिन्दु से महासमुद्र बनता है, उसी प्रकार तन्मात्राओं, परमाणुओं आदि से प्रकृति बनी हुई है। यहाँ पर समुद्र प्रकृति अर्थात् संसार का प्रतीक है। यहाँ प्रकृति को ही संसार-सागर बतलाया गया है। वह अथाह है, इसलिए उसे समुद्र की खाँई कहा गया है। चन्द्र-सूर्य आदि तैंतीस करोड़ देवी-देवता हैं। वे भी संसार-सागर के भ्रमरजाल में आसन मारे हुए बैठे हैं अर्थात् वे भी अज्ञान-वश गमनागमन के चक्कर में फँसे हुए हैं। सभी लोग चाहते तो सुख हैं, परन्तु विषय-तृष्णा से, जो दुःख का कारण है, संग नहीं छोड़ते।

वस्तुतः दुःख का रहस्य कोई न जान पाया। दुःख का कारण विषय नहीं है,

---

१. बा०-की; २. बं०, ब०, ख०, बलि०-राशि; ३. बा०-को; ४. अन्य प्रतियों में-भँवर; ५. बं०-काहु नहिं; ६. बा० बौराया; ७. बलि०-आपु बावला; ८. बं०-जामे भया न।

विषय की तृष्णा है। इस तथ्य को न जानने के कारण लोग संसार में भटकते रहते हैं।

जीव अज्ञानवश है तो बावला, किन्तु अपने को चतुर समझता है। वह अपने भीतर विद्यमान रामरूपी वास्तविक तत्त्व को नहीं जानता।

साखी—हृदय में बसने वाले अन्तर्यामी तत्त्व राम ही भगवान हैं। वे ही पूज्य स्वामी हैं और जो हरि का दास पूजक-रूपी जीव है, उसका भी वास्तविक स्वरूप वही है। भाव यह है कि जीवरूप से वह पूजक है और स्वरूप से वह पूज्य है। इस ज्ञान के होने पर न तो यम अर्थात् मृत्यु रह जाती है और न अज्ञान-रूपी अँधेरी रात रह जाती है। और माया, जो अज्ञान के कारण ही बहकाती रहती है, इस ज्ञान के उदय होने पर निराश होकर चली जाती है अर्थात् उसका प्रभाव समाप्त हो जाता है।

टिप्पणी—साखी के दूसरे चरण में एक सुन्दर व्यञ्जना निहित है। प्रेयसी अपने प्रिय से मिलने के लिए अभिसारिका रूप में अपने विशिष्ट काल में विशिष्ट स्थान पर जाती है। यहाँ पर पुरुष या जीवात्मा प्रेमी है, माया प्रेयसी है जो उससे मिलने के लिए आतुर है। यामिनी (अन्धकार) अज्ञान का प्रतीक है जिसके रहने पर ही वह पुरुष से मिल सकती है, किन्तु अपने स्वरूप की प्रत्यभिज्ञा होने के अनन्तर पुरुष से अन्धकार का निर्गमन हो जाता है। बेचारी प्रेयसी माया ज्ञान के प्रकाश में उससे कैसे मिले? उसे निराश होकर वापस जाना पड़ता है। इस प्रकार से निराश लौटी नायिका को 'विप्रलब्धा कहते हैं :—

प्रियः कृत्वापि संकेतं यस्या नायाति संनिधिम्।
विप्रलब्धेति सा ज्ञेया नितान्तमवमानिता ॥ ११८ ॥

(साहित्यदर्पण)

४२

जब हम रहल[1], रहल नहिं कोई, हमरे माँह रहल सब[2] कोई।
कहहु[3] राम कौन तोर[4] सेवा, सो समुझाय कहौ मोहि देवा।
फुर-फुर कहत[5] मार सब कोई, झूठहिं झूठा संगति[6] होई।
आँधर कहै सबै हम देखा, तहँ दिठियार बैठि[7] मुख पेखा।
यहि विधि कहौं मानु जौ कोई, जस मुख तस जौ हृदया[8] होई।
कहहिं कबीर हंस मुसुकाई[9], हमरहिं कहै छूटिहौ भाई।

---

१ बा० रहलीं; २. बा०-सम; ३. बा०-कहु हो, बलि०-भगवन कहहु; ४. बा०-तोरी; ५. बलि०, बं०, इला०-कहउँ; ६. ब०, ख०-साधुति; ७. बं०-पैठि; ८. बा० हिरदया; ९. बं० मुकुताई।

शब्दार्थ—फुर = सत्य। दिठियार = दृष्टि-सम्पन्न व्यक्ति, नेत्रों वाला। हंस = (प्र० अ०) जीव।

सन्दर्भ—पूर्व रमैनी में यह कहा गया है कि एक ही रामरूपी सत्य या आत्मा सबमें निवास करता है, उसको जानने की कोई चेष्टा नहीं करता। वही सबका वास्तविक स्वरूप है। परन्तु अज्ञानी पुरुष व्यर्थ में बाह्य देव की पूजा करते फिरते हैं। इसी भाव का विस्तार इस रमैनी में किया गया है।

व्याख्या—अनादि काल से आत्मा ही एक परम तत्त्व और सत्ता है। सृष्टि के पूर्व वही था। उस समय उससे भिन्न कोई नहीं था। यहाँ 'हम' शब्द उसी आत्मा के लिए प्रयुक्त हुआ है। आत्मा में ही सब कुछ बीज-रूप से विद्यमान था। मनुस्मृति में भी कहा गया है :—

'आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्।'

ऐतरेय उपनिषद् में भी कहा गया है कि पहले एकमात्र आत्मा ही था और कुछ नहीं था :—

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत् किञ्चनमिषत्।

(ऐ० उ० १।१)

राम भी वही आत्मा हैं। कबीर कहते हैं कि जब उसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं तो कौन सेवक और कौन सेव्य बन सकता है? इस दृष्टि से वह कहते हैं कि हे राम! कहो, उस समय तुम्हारी कौन-सी सेवा होती थी? हे देव! वह मुझे समझा-कर बताओ।

सत्य किसी को अच्छा नहीं लगता। सत्य कहने से सब कोई मारने को दौड़ते हैं। झूठे को झूठे की ही संगति भली लगती है। (यदि 'साधुति' पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा—झूठे को झूठे में ही साधुता प्रतीत होती है)।

अन्धा यह दावा करता है कि उसने सब कुछ देख लिया है और दृष्टि-सम्पन्न बैठा-बैठा उसका मुख देखता है कि यह अन्धा कितना बड़ा दावा कर रहा है? इसी प्रकार अज्ञानी यह दावा करता है कि उसने सब कुछ जान लिया है और ज्ञानी उसके दावे से चकित रह जाता है। यदि कोई माने तो मैं सत्य कहूँ। परन्तु शर्त यह है कि लोगों का जैसा मुख है, वैसा ही हृदय हो अर्थात् वे निष्कपट हों और सत्य का स्वागत कर सकें। कबीर जीव से मुस्कुराकर कहते हैं कि हे भाई! हमारे उपदेश से ही मुक्ति मिलेगी।

——

४३

जिन्ह जिव कीन्हु आपु विसवासा, नर्क गए[1] तेहि नरकहिं बासा।
आवत जात न लागै बारा, काल अहेरी साँझ सकारा।
चौदह विद्या पढ़ि समुझावै, अपने मरन की खबरि न पावै।
जाने जिव कँह[2] परा अँदेसा, झूठहिं आय[3] के कहैं सँदेसा।
संगति छोड़ि करै असरारा, उवहै मोट नर्क कर धारा॥
साखी—गुरु द्रोही औ मनमुखी, नारि पुरुष विविचार[4]।
ते नर चौरासी भरमि हैं, जौं लगि ससि दिनकार॥

शब्दार्थ—बारा = विलम्ब। अहेरी = शिकारी। सकारा = सुबह, प्रातःकाल। चौदह विद्या = छः वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्ति, छन्द, ज्योतिष), चार वेद (ऋक्, यजु, साम, अथर्वण) और मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण। असरारा = हठ, दुराग्रह। उबहै = (सं०—उद्वहन), उलीचना। मोट = चमड़े का वह थैला जिससे पानी फेंका जाता है मनमुखी = स्वेच्छाचारी। दिनकार = दिनकर, सूर्य।

सन्दर्भ—पिछली रमैनी में कबीर बतला चुके हैं कि सद्गुरु के उपदेश से ही त्रिताप से छुटकारा मिल सकता है। इस रमैनी में वह बतला रहे हैं कि जो सद्गुरु के मार्गदर्शन के विना, केवल मन्त्र पढ़कर अपने पर भरोसा रखता है, उसकी क्या गति होती है?

व्याख्या—जिन जीवों ने सद्गुरु के मार्गदर्शन के विना अपने ऊपर केवल ग्रन्थों को पढ़कर विश्वास कर लिया है, वे नरक जाते हैं और नरक में ही वास करते हैं। जन्म-मरण में देर नहीं लगती। काल-रूपी शिकारी सन्ध्या-सवेरे शिकार करता रहता है।

लोग चौदह विद्या पढ़कर विना किसी साक्षात्कार के औरों को उपदेश देते फिरते हैं। ऐसे लोगों को अपने ही मरण का पता नहीं चलता। 'जाने' अर्थात् पुस्तकीय ज्ञान वाले पण्डितों को सदैव संशय बना रहता है। वे स्वयं संशय में रहते हैं। अतः दूसरे लोगों को भी झूठा सन्देश देते हैं।

सद्गुरु की संगति छोड़कर अपने मनगढ़न्त मत पर हठ करते हैं। ऐसे लोग मोट के द्वारा नरक की धारा उलीचते हैं अर्थात् लोगों को नरक की ओर ले जाते हैं।

साखी—गुरुद्रोही, स्वेच्छाचारी और मनमानी बात करने वाले विचारहीन नारी और पुरुष तब तक चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हैं, जब तक चन्द्र-सूर्य विद्यमान हैं।

---

१. बा०-परे; २. ब० सो, अन्य प्रतियों में-को; ३. बा-आनि; ४. बा०-कै मारा; ५. बलि०, शु क०, बना०-विचार।

४४

(सत्संगादि बिना दुःखादि प्रकरण)

कबहुँ न भयउ संग अरु साथा, ऐसो जनम गवाँयउ हाथा[1]।
बहुरि न पइहउ ऐसो थाना, साधु संग[2] तुम नहिं पहिचाना।
अब तोर[3] होय नरक महँ वासा, निसु दिन बसेउ[4] लबार क पासा॥
साखी—जात सभँन्हि कहँ देखिया, कहहिं कबीर पुकार।
चेतवा[5] है तौ चेतहु, नहिं[7] दिवसु परतु है धार॥

शब्दार्थ—थाना = स्थान, योनि। लबार = झूठा। धार = डाका।

सन्दर्भ—पूर्व रमैनीमें यह कहा गया है कि सद्गुरु के मार्ग दर्शनके बिना केवल पुस्तकीय ज्ञानसे मुक्ति नहीं मिलती, प्रत्युत असंगत ज्ञानसे नरक में ही स्थान मिलता है। इस रमैनी में इसी भाव की पुष्टि की गयी है।

व्याख्या—जो सत्गुरु से कभी सत्संग नहीं करते, वे अमूल्य मानव जीवन-रूपी अवसर हाथ से खो बैठते हैं। हे जीवो! तुमको फिर ऐसा नर-शरीररूपी स्थान वास करने के लिए नहीं मिलेगा। यह तुम्हारा दुर्भाग्य है कि तुमने सत्संग की महिमा को नहीं पहचाना। परिणाम यह होगा कि मिथ्या ज्ञान के कारण केवल नरक में ही तुम्हारा वास होगा, क्योंकि तुम दिन-रात झूठों के पास रहते हो अर्थात् साधुओं का संग न करके मिथ्याचारी, मिथ्यावादी ग्रन्थाभिमानियों की संगति करते हो।

साखी—कबीर पुकार कर कहते हैं कि कुसंग के कारण हमने सबको नरक में ही जाते देखा है। चेतना हो तो चेत जाओ, नहीं तो दिन-दहाड़े पामर मोह, तृष्णा, अज्ञान आदि डाकू छापा मारेंगे।

४५

हिरनाकुस रावन गौ[1] कंसा, कृस्न गए सुर नर मुनि बंसा।
ब्रह्मा गए मर्म नहिं जाना, बड़ सब गयल जो रहल सयाना।
समुझि[3] परी नहिं राम कहानी, निरबक दूध कि[4] सरबक पानी।
रहिगौ पंथ थकित भौ पौना, दसो दिसा उजारि[5] भौ गौना।
मीन जाल भौ ई संसारा, लोह कनाव[6] पषान क[7] भारा।
खेवै सभै मर्म नहिं जानी, तहियो कहै रहै उतरानी॥
साखी—मछरी मुख जस केंचुवा, मुसवन मुख गिरदान।
सर्पन मुख[8] गहेजुआ, जात सभन की जान॥

४४—१. बा०—आछा; २. बलि०, व०, ख०—संगति; ३. बलि; वं०, ख०—तो; ४. बलि०—बस, ख०—रहेउ, वं०—परे; ५. बा०—के; ६. बलि०—चेतन हो तो चेत लो; ७. अन्य प्रतियों में 'नहिं' नहीं है।

४५—१. वं०—गए; २. वं०, बना०—गए; ३. बलि०, ख०—समझ; ४. बा०—की; ५. विचार०—करि उजाड; ६. बा०—कै; ७. बा० कै; ८. बा०—माँहि।

शब्दार्थ—निरवक = निरा, मात्र। सरवक = सर्व। पंथ = कर्त्तव्य। पौना = स्वास। लोह = (प्र० अ०) अज्ञान। पषान = (प्र० अ०) सकाम कर्म। गिरदान = गिरगिट। गहेजुआ = छछूँदर।

सन्दर्भ—पिछली रमैनी में सद्गुरु ने कहा है कि कोई भी इस शरीर से संसार में अजर-अमर नहीं है। सभी जीर्ण हो जाते हैं और सभी को यहाँ से जाना पड़ता है। किन्तु फिर भी विषयों का आकर्षण हृदय से नहीं जाता। इसी तथ्य का विस्तार इस रमैनी में कई रूपकों द्वारा किया गया है।

व्याख्या—हिरण्यकशिपु, रावण और कंस जैसे प्रतापी और बलवान लोग चले गये। कृष्ण जैसे महात्मा और बड़े-बड़े देव, नर और मुनि लोग भी न बचे। सभी को यहाँसे जाना पड़ा। ब्रह्मा भी चले गये और इस जीवन के मर्म को न जान पाये। अपने को परम चतुर समझने वाले बड़े-बड़े योगी भी चले गये। राम की कहानी अर्थात् आत्मा की जीवन-यात्रा का रहस्य किसी की समझ में न आया। विषयों की ओर लोगों का आकर्षण होता रहता है। वे समझते हैं कि यह स्वच्छ दूध के समान है। उनकी समझ में यह नहीं आता है कि वह सर्वथा जल के समान है जिसमें जीव के संवर्धन और विकास का कोई साधन नहीं है।

जीव का गन्तव्य मार्ग पूरा न हुआ, प्राण शिथिल हो गये और दसों इन्द्रियों को उजाड़ कर तथा छोड़कर चले गये। यह संसार जो विषयों का भाण्डार है, वैसे ही बन्धन का हेतु हो जाता है जैसे मछली के लिए जाल। बेचारा जीव विषय और सम्पत्ति को बहुत प्रबल और ठोस साधन समझकर उसका उपयोग करता है, किन्तु वह यह नहीं जान पाता कि हम भव-सागर को लोहे की नौका से पार करना चाहते हैं। लोहा बहुत ठोस और दृढ़ होता है अवश्य, किन्तु वह पानी में डूब जाता है। जीव ने अज्ञानवश विषय-सम्पत्ति की नाव पर सकाम-कर्मों के पाषाण का बोझ भी लाद रखा है। लोहे की नौका में पत्थर का भार हो तो उसे डूबने से कौन बचा सकता है? फिर भी विषय-वासना और सकाम-कर्मों के भार को लादे हुए वह भव-सागर में जीवन-नौका खेना चाहता है। वह यह मर्म नहीं समझता कि उसकी नौका डूबने से बच नहीं सकती। फिर भी वह यही कहता रहता है कि यह नाव तो उतराती हुई चल रही है अर्थात् डूबेगी नहीं।

साखी—जैसे मछली केंचुए के आकर्षण से काँटे में फँस जाती है, जैसे चूहा गिरगिट को हितकर खाद्य समझकर पकड़ लेता है और कष्ट में पड़ता है और जैसे साँप छछूँदर को निगलने के प्रयास में कष्ट में फँसता है, उसी प्रकार जीव विषयों के आपात सौन्दर्य और माधुर्य से आकृष्ट होकर उनका सेवन करता है। परिणामतः बन्धन में फँसकर विनाश को प्राप्त होता है। यह अच्छी तरह समझ लो।

———

४६

(मायाकृत विनाश प्रकरण)

विनसे नाग, गरुड़ गलि जाई, विनसे कपटी, औ सत भाई।
विनसे पाप पुन्य जिन्ह कीन्हा, विनसे गुन निरगुन जिन चीन्हा।
विनसे अगिनि पौन औ पानी, विनसे सिष्टि कहाँ लौ गानी[1]।
विस्नु लोक विनसे छिन माँही, हौं देखा परलै[2] की छाँही॥

साखी—मच्छ रूप माया भई, जबरहिं[3] खेले अहेर।
विधि[4] हरि हर नहिं ऊबरे, सुर नर मुनि केहि केर॥

शब्दार्थ—नाग = शेषनाग, सर्प। हौं = मैं। गानी = गाऊँ। मच्छ = मछली। जबरहिं = बलपूर्वक।

सन्दर्भ—पूर्व रमैनी में कबीर ने कार्य-रूपी जगत् की अनित्यता का प्रतिपादन किया है और यह दिखलाया है कि विषय अनित्य हैं, उनमें वासना या काम से फँसने से मानव का विनाश होता है। इसी अनित्यता को वह इस रमैनी में विशेष-रूप से साधकों के सम्मुख रख रहे हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि इस रमैनी में उन्होंने यह दिखलाया है कि अनित्यता या विनाश मायाकृत है। पूर्व रमैनी में अनित्यता के जितने उदाहरण लिये गये हैं वे या तो मृत्युलोक के हैं या देवों के हैं। इस रमैनी में वह यह दिखला रहे हैं कि मृत्युलोक के अतिरिक्त पाताललोक और स्वर्गलोक भी काल के चंगुल से नहीं बचते।

व्याख्या—कुछ लोग यह कहते हैं कि नाग जो पाताललोक में हैं, वे माया के विनाशकारी प्रभाव से बचे रहते हैं, किन्तु कबीर साहब कहते हैं कि पातालवासी शेषनाग का भी विनाश होता है। यह सोचा जा सकता है कि नाग का भक्षण करने वाला गरुड़ तो बच जाता होगा, किन्तु यह कटु सत्य है कि बेचारा गरुड़ भी नष्ट हो जाता है। कपटी शकुनि और सौ भाई दुर्योधन आदि भी माया के विनाशकारी परिणाम से नहीं बच सके। केवल पापी ही विनाश को नहीं प्राप्त होते। वस्तुतः पापी और पुण्यात्मा दोनों विनाश को प्राप्त होते हैं। सभी शरीरधारी जीव चाहे उन्होंने सगुणतत्त्व के ज्ञान को प्राप्त किया हो या निर्गुण के ज्ञान को, विनाश के व्यापक प्रभाव से नहीं बचते।

आग जो सबको जला डालती है, पवन जो सबको उड़ा ले जाता है, जल जो सबको बहा ले जाता है, वे भी विनाशको प्राप्त होते हैं। संक्षेप में, पञ्चमहाभूत भी विनाशसे नहीं बचते। सारी सृष्टि का ही एक दिन प्रलय हो जाता है। कहाँ तक गाऊँ? (यदि 'गनी' पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा—मैं कहाँतक गिनाऊँ?)।

---

१. बा०-गनी; २. ब०-परलय; ३. बा०-जौरा, ब०, ख०-जौरहिं, शु०, वि०-यमरा; ४. बा०-हरि हर ब्रह्म न उबरे।

मृत्युलोक और पाताललोक नष्ट हो ही जाते हैं, कुछ लोग सोच सकते हैं कि वैकुण्ठलोक या विष्णुलोक तो नित्य होगा। कबीर कहते हैं कि स्वर्गलोक या वैकुण्ठ भी नित्य नहीं है। वह भी क्षण भर में विनाश को प्राप्त होता है। सद्गुरु कहते हैं कि मैंने सबको प्रलय के प्रतिबिम्ब के रूप में देखा है अर्थात् विश्व भर का प्रलय अवश्यम्भावी है।

सम्पूर्ण रमैनी में जिस अटल सत्य का सद्गुरु ने प्रतिपादन किया है, उसका भाव यह है कि जो कुछ भी कार्य-रूप या परिणाम-रूप है उसका लय अथवा विनाश नितान्त होता है। जो परिच्छिन्न है, ससीम है, किसी भी प्रकारसे कार्य में परिणत हुआ है, वह अपने कारण में अवश्य लय को प्राप्त होगा। इसीलिए जो बाह्य पदार्थ कार्य-रूप में हैं, चाहे वे स्वर्गलोकके हों या मृत्युलोक के अथवा पाताल के सभी क्षण-भंगुर हैं। उनमें कामना करना अज्ञान है।

साखी—माया मछली के समान है। मछली में यह विशेषता होती है कि बड़ी मछली छोटी मछलीको खा जाती है। माया को मछली कहने का तात्पर्य यही है कि मछली के समान माया सबको खा जाती है। वह बलपूर्वक सबका शिकार कर डालती है। (यदि 'जौरां' पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा—उसके पास में जो कुछ है, वह सबका विनाश कर डालती है। तीसरा पाठ है—'यमरा'। इसका अर्थ होगा—यम-राज जो माया का ही एक रूप है, सबका शिकार कर डालता है। इसमें से कोई भी पाठ लिया जाय, मुख्य भाव अर्थात् कृत पदार्थ अनित्य होता है, वह कारण में अवश्य विलीन होता है, इसमें कोई अन्तर नहीं आता)। यहाँतक कि विष्णु, शिव, ब्रह्मा भी विनाश से नहीं बचते। सुर, नर, मुनि की तो गिनती ही क्या है ?

४७

जरासिंधु सिसुपाल संहारा, सहस अरजुन छल तें[1] मारा।
बड़ छलीं[2] रावन सो गौ बीती, लंका रहल कंचन की भीती।
दुरजोधन अभिमानहि गैऊ, पंडव केर भेद नहिं पैऊ।
माया[3] के डिंभ गैल सभ राजा, उत्तम मद्धिम बाजन बाजा।
सब[4] चकवे बित[5] धरनि समाना, एको जीव परतीत न माना।
कहँ लगि कहौं[6] अचेतहि गैऊ, चेत अचेत झगर[7] एक भैऊ।
साखी—ई माया जग[8] मोहनी, मोहिसि सब जग धाय।
हरीचन्द सत कारने, घर घर गयें[9] बिकाय॥

१. ख०, बलि०, शु०-सो; २. ब०, ख०, बलि०, शु०, बं०-छल; ३. ब०, ख०, बलि०-माया डिंभ; ४. बा०-छत्र, ब०, ख०-चक्रवर्ती सब; ५. खं०-बिति; ६. बा०-कहो; ७. बा०-झगरा; ८. ब०, ख०, बलि०-है; ९. बा०-सोग।

शब्दार्थ—सो = वह। भीती = दीवाल। डिंभ = दंभ, अभिमान। चकवे = चक्रवर्ती राजा। चेत-अचेत = ज्ञानी-अज्ञानी। अचेतहिं = अज्ञान। वित = नष्ट।

सन्दर्भ—पूर्व रमैनी में यह बताया गया है कि माया किस प्रकार सबका विनाश करती है। माया की दो शक्तियाँ हैं—विक्षेप और आवरण। आवरण-शक्ति के द्वारा जीव मोहित हो जाता है और अभिमान, दम्भ, राग-द्वेष, मोह आदि का शिकार बनता है। इस रमैनी में माया की आवरण या मोहिनी-शक्ति के विनाशकारी प्रभाव को दिखाया गया है।

व्याख्या—मायाने जरासंध और शिशुपाल-जैसे प्रतापी राजाओं का विनाश कर दिया। कार्तवीर्य अर्जुन भी जिस छल से मारा गया, वह माया का ही खेल था। वह ऐश्वर्यशाली रावण भी माया के मोह के वश में आकर नष्ट हो गया, जिसकी लंका सोने की दीवालों की सजी थी। (माया की आवरण-शक्ति या मोह-शक्ति से रावण ने छल से सीता का हरण किया। परिणामस्वरूप वह राम के द्वारा मारा गया)।

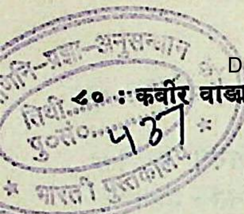
अभिमान भी माया की आवरण-शक्ति की अभिव्यक्ति है। उसी अभिमान से दुर्योधन नष्ट हुआ और उसको पाण्डवों की इस शक्ति का रहस्य ज्ञात न हो सका कि उनके सहायक श्री कृष्ण हैं।

सभी बड़े-बड़े सम्राट्, जिनके नाम पर उत्तम और मध्यम बाजे बजते थे अर्थात् जो कीर्तिशाली थे, वे भी मायाजन्य अभिमान के कारण नष्ट हो गये। सभी चक्रवर्ती सम्राट् भी माया के वश में आकर धरती में विलीन हो गये अर्थात् नष्ट हो गये। (यदि 'छह अथवा छव चकवे' पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा—छः प्रसिद्ध चक्रवर्ती सम्राट् (वेनु, बलि, कंस, दुर्योधन, पृथु, त्रिविक्रम) भी माया के कारण नष्ट (वित) होकर पृथ्वी में विलीन हो गये।) फिर औरों की क्या गिनती ! इतना होने पर भी किसी जीव को विश्वास नहीं होता कि माया संहारकारिणी है।

कहाँ तक कहूँ ! सब अज्ञान के ही कारण नष्ट हो गये। ज्ञान और अज्ञान का एक झगड़ा मचा हुआ है। माया के कारण अज्ञान का जो साम्राज्य है, वह ज्ञान के मार्ग में बाधक रहता है।

साखी—यह माया मोहिनी-शक्ति है और सारे संसार में व्याप्त होकर इसने सबको मोह में डाल रखा है। हरिश्चन्द्र, जिनका परम सिद्धान्त सत्य था, वह भी अपने सत्यके आदर्श के कारण माया के द्वारा छले गये और घर-घर बिकने के लिए गये। (यदि 'घर घर सोग बिकाय', पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा—शोक से व्याकुल होकर घर-घर बिके)।

———



४८

(सूफ़ियों की बाह्याचार-समीक्षा प्रकरण)

मानिकपुरहि कबीर बसेरी, मद्दति सुनी सेख तकी केरी।
ऊ जे सुनी जौनपुर धामा,[1] झूँसी सुनि पीरन को नामा।
इकइस पीर लिखे तेहि ठामा, खतमा पढ़ैं पैगम्बर नामा।
सुनत बोल मोहि रहा न जाई, देखि मुकरबा रहा भुलाई।
नबीं[2] हबीबी के जो कामा, जहँ लै अमल सो सबै हरामा॥

साखी—सेख अकरदी सेख सकरदी, मानहु वचन हमार।
आदि अंत[3] उतपति प्रलय, देखहु दिष्टि पसार॥

शब्दार्थ—मानिकपुर = इलाहाबाद से झाँसी जाने के मार्ग में एक रेलवे जंकशन तथा कस्बा। कबीर साहब वहाँ कुछ दिन रहे थे।

मद्दति = प्रशंसा, सहारा। खतमा = (फा० खुत्बः) प्रार्थना विशेष। मुकरबा = कब्र या समाधि। नबी = ईश्वर के दूत, पैगम्बर। हबीबी = हजरत मुहम्मद। अमल = जप, रूढ़-कर्म, लोकाचार। हरामा = अपवित्र, अविहित। सेख अकरदी, सेख सकरदी = सूफ़ी-सम्प्रदाय के साधु। कबीर से इनका संवाद हुआ था। सेख तकी = प्रसिद्ध सूफ़ी सन्त। ये इलहाबाद के पास झूँसी में रहते थे। सिकन्दर लोदी के गुरु थे। कबीर से इनका सत्संग हुआ था।

पीर (फा०) = गुरु, उस्ताद! नामा = नाम का।

सन्दर्भ—पिछली रमैनी में सद्‌गुरु ने यह बतलाया है कि माया के मोह से किस प्रकार बड़े-बड़े प्रतापी राजा भी नष्ट ही गये। इस रमैनी में वह उसी माया के मोह का दूसरा परिणाम बतलाते हैं कि किस प्रकार उससे बड़े-बड़े सूफ़ी और मौलाना भी अज्ञान के अन्धकारवश लोकाचार और काम्य कर्मों में लगे रहते हैं तथा वास्तविक तत्त्व को जानने का प्रयत्न नहीं करते। इसमें कबीर ने यह भी संकेत किया है कि जो बुतपरस्ती या मूर्ति-पूजा के विरुद्ध हैं, वे भी पीरों की कब्र के सामने ऐसे कृत्य करते हैं, जो लोकाचार से कम नहीं हैं। इस रमैनी से यह भी पता चलता है कि कबीर किसी समय मानिकपुर में रहे थे।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि जब मैंने मानिकपुर में निवास किया था, उस समय शेख तक़ी नामक सूफ़ी की प्रशंसा सुनी थी। वहाँ पर मैंने जौनपुर नामक स्थान के सम्बन्ध में सुना और यह जाना कि झूँसी पीरों (धर्म-गुरुओं) का स्थान है। वहाँ पर ऐसे इक्कीस पीरों के नाम कब्रों पर लिखे हुए हैं जिनके सामने पैगम्बर के नाम का खुत्बा (प्रार्थना) पढ़ा जाता है। यह बात सुनकर मुझसे न रहा गया। मैंने

---

१. बा०-थाना; २. शु०, बलि०-हबीब औ नबी के, बा०-हबी नबी नबी को कामा; ३. बा०-औ जुग जुग।

कहा कि तुम लोग मकबरा या कब्र देखकर भूल गये हो। हबीब (प्रियतम) पैगम्बर के काम को लोकाचार में उपयोग करना निषिद्ध है।

साखी—हे शेख अकरदी और सकरदी ! हमारी बात मानो और आँख खोलकर देखो। आदि-अंत अर्थात् उत्पत्ति और प्रलय सब माया के भीतर हैं। मकबरों के सामने धर्म-ग्रन्थों का पाठ माया-राज्य के भीतर ही है। तत्त्व कुछ और ही है।

४९

दर की बात कहौ दरवेसा, पातसाह है कौने भेसा।
कहाँ कूच कहँ[1] करै मुकामा,[2] कवन सुरति के करहु सलामा।
मैं तोहिं पूछौं मूसलमाना, लाल जरद की नाना बाना।
काजी काज करहु तुम कैसा, घर-घर जब्रह करावहु भैसा।
बकरी मुरगा किन फरमाया, किसके हुकुम तुम छुरी चलाया।
दरद न जानहु पीर कहावहु, बैता[3] पढ़ि-पढ़ि जग भरमावहु।
कहहिं कबीर एक सैयद कहावै,[4] आपु सरीखे जग कबुलावै॥
साखी—दिन[5] को रोजा रहतु हौ, राति हनत[6] हो गाय।
यह[7] तो खून वह वंदगी, क्यों कर खुसी खोदाय॥

शब्दार्थ—दर = पता, स्थान। दरवेस = फकीर, पुनीतात्मा, सिद्ध। पातसाह = बादशाह, खुदा। कूच = यात्रा प्रस्थान, रवानगी। मुकामा = पड़ाव, स्थान। जरद = पीला। की = अथवा। नाना = विचित्र, अनुपम। सुरति = स्वरूप। काजी = न्यायकर्त्ता। जबह = काटना, हत्या करना। फरमाया = आदेश किया। बैता = (फा० बैत) = कविता, शायरी। सैयद = (अरबी०—सैयिद), प्रतिष्ठित मुसल्मान, हजरत इमाम हुसेन की औलाद के वंशज। खुदा = स्वयंभू, ईश्वर। पीर = धर्मगुरु। कबुलावै = स्वीकार करवाना।

संदर्भ—मुसलमान प्रायः दूसरे धर्मों के बाह्याचार की निन्दा करते हैं। कबीर ने इस रमैनी में मुसलमानों में व्याप्त बाह्याचार पर तीखा प्रहार किया है।

व्याख्या—कबीर पूछते हैं कि अपने को सिद्ध फकीर कहलाने वाले दरवेश यह तो बतलाओ कि खुदा का दर या आवास कहाँ है ? तुम्हारे बादशाह या ईश्वर का स्वरूप कैसा है ? वह कहाँ की यात्रा करता है और कहाँ पड़ाव करता है ? तुम किस आकार या रूप की वंदना करते हो ? हे इस्लाम में विश्वास करने वाले सज्जन ! मैं तुमसे पूछता हूँ कि उसका वर्ण लाल है या पीला अथवा वह अनेक वर्णों वाला है ?

---

१. बा०-कहाँ; २. बा० प्रति का पाठ—मैं तोहिं पूछौं मूसलमाना। लाल जरद की नाना बाना, कवन सुरति के करहु सलामा।; २. बा०-कहे; ३. बा०-बेता; ४. बा०-बोहाई; ५. बा०-दिने धरतु हो रोजा; ६. बा० कुहतु; ७ बा०-इह।

६

हे काजी ! यह तुम्हारा कैसा कार्य या न्याय है ? तुम घर-घर में भैंसे का वध करवाते हो। यह किसने आदेश दिया है कि बकरी और मुर्गे को कटवाओ ? किसके आदेश से तुम निरीह पशुओं पर छुरी चलवाते हो ? तुम्हारा धर्मोपदेशक पीर कहलाता है, किन्तु वह दूसरों की पीड़ा नहीं जानता है, प्रत्युत धर्मवाक्यों को पढ़-पढ़कर लोगों को हिंसा का पाठ पढ़ाता है।

कबीर कहते हैं कि मुसलमानों में जो सर्वोच्च वर्ग सैयद है और जो सबके आदर का पात्र है, वह भी हिंसा से विरत नहीं होता और सारे संसार को अपने मत का अनुयायी बनाने की चेष्टा करता है।

साखी—ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए और अपने को पवित्र बनाने के लिए तुम दिन भर उपवास करते हो और रात को गाय का वध करते हो। यह कैसी विडम्बना है कि आचार में तुम हत्या करते हो और ईश्वर की वंदना भी करते रहते हो, जिससे वह प्रसन्न हो। कथनी-करनी के इस विरोध में ईश्वर कैसे प्रसन्न हो सकता है ?

टिप्पणी—(i) इस रमैनी में दर, दरवेश, पीर, काजी, काज आदि शब्दों में श्लेष और वक्रोक्ति का चमत्कार द्रष्टव्य है।

(ii) कबीर ने अन्यत्र भी कहा है :—

काजी सो जो काज बनावै,
नहिं अकाज से राजी।
जो अकाज की बात चलावै,
सो काजी नहिं पाजी॥

× ×

कबिरा सोई पीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर॥

५०

(आसक्ति से ज्ञान की दुर्लभता प्रकरण)

कहइत मोहि भयल जुग चारी, समुझत नाहिं मोह[१] सुत नारी।
वंस[२] आगि लगि वंसै जरिया, भर्म भूलि नर धंधे[३] परिया[४]।
हस्तिनि[५] फंदे हस्ती रहई, मृगी के फंदे मृगा परई।
लौहे[६] लोह जस[७] काटि सयाना, त्रिया कै तत्तु त्रियै पै[८] जाना॥

---

१. ब०, ख, शु०-मोर; २. वा०-बंसहि; ३. वा०-भूला नल; ४. वा०-हस्ती के; ५. वा०-रहईः ६. वा० लोहहिं लोह काटि जु सयाना; ७. ब०, ख०-काटि जस आना; ८. बलि०, शु०, वि०, बना०-पहिचाना।

साखी—नारि रचंते पुरुषा, पुरुष रचंते नार।
पुर्षहिं पुर्षा जो रचै, सो[1] विरला संसार॥

शब्दार्थ—बंस = बाँस, परिवार। धंधे = कर्म-बंधन। रचै = प्रेम करना।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि मुझे उपदेश करते हुए चार युग बीत गये अर्थात् काल-कालान्तर से सद्गुरु एक सामान्य उपदेश देते आये हैं, किन्तु लोग पुत्र-पत्नी आदि के मोह में पड़े रहते हैं और उस उपदेश को समझने की चेष्टा नहीं करते। जैसे बाँस की रगड़ से बाँस में आग लग जाती है और वह जल जाता है, वैसे ही मनुष्य अज्ञान के कारण भूलकर कर्म में आसक्त रहता है और उसी कर्म की आसक्ति से नष्ट हो जाता है। जैसे हाथी हथिनी से आकृष्ट होकर शिकारियों द्वारा बंधन में पड़ता है, जैसे मृगी से आकृष्ट होकर मृग जाल में फँसता है, जैसे चतुर लोगों के द्वारा लोहा लोहे से काटा जाता है और जैसे स्त्री के रहस्य को स्त्री द्वारा जाना जाता है, वैसे ही मनुष्य (अज्ञानी) के द्वारा ही मनुष्य फँसता है।

साखी—नारी पुरुष में अनुरक्त होती है और पुरुष नारी में। किन्तु जो पुरुष-पुरुष में अनुरक्त होता है, ऐसा पुरुष संसार में विरला ही होता है।

'पुरुष' शब्द के दो अर्थ होते हैं—(i) मनुष्य (ii) आत्मा। पुरि शेते इति पुरुषः अर्थात् देह रूपी पुरी में जो शयन करता है, वह पुरुष अर्थात् आत्मा है। यहाँ 'पुरुष' का तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य पुरुष अर्थात् आत्मा की ओर आकृष्ट होता है, ऐसा संसार में विरला ही होता है।

दूसरी पंक्ति में दृष्टान्त अलंकार है।

टिप्पणी—(i) कठोपनिषद में कहा गया है कि परमात्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुख बनाया है। वह इनसे केवल बाह्य विषयों को देखता है, अन्तरात्मा को नहीं। जो अमरत्व की इच्छा करते हुए आँखों को उलटकर (अन्तर्मुखी होकर) देखता है, ऐसा कोई विरला धीर पुरुष प्रत्यगात्मा को देख पाता है :—

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभू
स्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष—
दावृतचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥ (कठो० २।१)

(ii) कबीर चारो युगों में थे—

कबीरपंथी यह मानते हैं कि कबीर चारो युगों में पैदा हुए। 'कबीर मन्सूर' के अनुसार सत्य पुरुष समस्त जगत् का उत्पादनकर्त्ता है। वह कभी गर्भ में नहीं आता। कबीर साहब उसी सत्य पुरुष के अनागतवक्ता (भविष्यवक्ता) हैं। यही कबीर-साहब सत्ययुग में 'सुकृति' नाम से, त्रेता युग में 'मुनीन्द्र' नाम से, द्वापर में 'करुणामय स्वामी' नाम से और कलिकाल में 'कबीर' नाम से अवतीर्ण हुए।

---

१. बा०-ते बिरले।

किन्तु इस रमैनी में यह भाव नहीं है कि देह धारण करके कबीर ने प्रत्येक युग में उपदेश दिया। सद्गुरु एक सामान्य उपदेश प्रत्येक युग में देता है, उसी सामान्य उपदेश की ओर यहाँ संकेत किया गया है।

५१

(धारणारहस्य प्रकरण)

जाकर नाम अकहुआ रे[१] भाई, ताकर काह[२] रमैनी गाई।
कहौं[३] तातपर्ज एक[४] ऐसा, जस पंथी बोहित चढ़ि बैसा।
है कछु रहनि गहनि की बाता, बैसा रहे[५] चला पुनि जाता।
रहै बदन नहिं स्वाँग सुभाऊ, मन अस्थिर[६] नहिं बोलै काऊ॥
साखी—तन रहित[७] मन जात है, मन रहित[८] तन जाय
तन मन एकै होय रहै, हंस कबीर कहाय॥

शब्दार्थ—अकहुआ = कहने में न आने वाला, अनिर्वाच्य। रमैनी = गुणानुवाद, कथा। तातपर्ज = तात्पर्य, भाव। बोहित = (सं०—बोहित्थ) नौका, जहाज। रहनि = आचरण, रहने का ढंग। गहनि = ग्रहण करना। पंथी = यात्री। बैसा = बैठा। बाता = रहस्य।

व्याख्या—कबीर कहते हैं कि कुछ लोग कीर्तन और जप के द्वारा ही प्रभु का साक्षात्कार करना चाहते हैं, किन्तु जिसका कोई नाम ही नहीं है, जो अनिर्वाच्य है, उसकी क्या गाथा गायी जाय? उसका क्या कीर्तन किया जाय? कहने का भाव यह है कि वह कथन या कीर्तन के द्वारा नहीं जाना जा सकता है। जैसे यात्री जब अपने गन्तव्य स्थान को जाना चाहता है तो बातों से वहाँ नहीं पहुँच सकता, उसको जहाज पर चढ़कर बैठना होता है। वास्तव में रहनी अर्थात् आचरण के ग्रहण की ही मुख्य बात या रहस्य है। जैसे यात्री नाव या जहाज पर बैठा रहता है, परन्तु वह आगे चलता जाता है, वैसे ही साधक आचरण या क्रिया को ग्रहण करके अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता चला जाता है। नौका या जहाज के इस रूपक में इन बातों पर ध्यान देना चाहिए कि साधना को नौका बतलाया गया है और साधक को यात्री। नाविक गुरु के अर्थ में अध्याहृत है। साधना को आचरण में ग्रहण करके ही मनुष्य आगे बढ़ सकता है। सद्गुरु वह नाविक है जो यह जानता है कि अनुकूल वायु की ओर से ही नाव को ले चलना चाहिए अर्थात् वह अपने शिष्य को विघ्न-बाधाओं से बचाकर अनुकूल पथ से ले चलता है।

---

१. अन्य प्रतियों में 'रे' नहीं है। २. बं०-कहो; ३. बा०-कहे के; ४. बा०-है; ५. बं०-रहत; ६. बं०, शु०-स्थिर; ७. ब०-रहये, बलि०, बना०, शु०-राता, बं०-रहते; ८. ब०, ख०-रहये, बलि०, बना०, शु० राता, बं०-रहते; ९. बा०-तब हंस।

न तो शरीर से तादात्म्य रखना चाहिए अर्थात् न तो देहाभिमान रहना चाहिए और न तो नाना प्रकार के वेश (तिलक, भस्म आदि) बनाने का स्वभाव रहना चाहिए। किसी से भी चंचल मन से नहीं बोलना चाहिए। (यदि 'मन स्थिर' पाठ लिया जाय तो अर्थ होगा—मन को स्थिर रखना चाहिए और किसी से व्यर्थ में बातें नहीं करनी चाहिए)।

साखी—साधना में प्रायः यह होता है कि कहीं मन तो अच्छी बातों में, उत्तम ध्येय में लगता है, किन्तु उसका व्यवहार या आचरण में व्यक्तीकरण नहीं होता और कहीं-कहीं तो शरीर से क्रिया होती रहती है, परन्तु मन ध्येय में नहीं लगता। जहाँ शरीर और मन एकरस हो जाते हैं अर्थात् ध्येय और आचरण का पूर्ण सामञ्जस्य हो जाता है, कबीर कहते हैं कि वहीं विवेकी जीवात्मा परमात्मा से तादात्म्य का अनुभव करता है और तभी वह 'हंस' कहा जाता है।

टिप्पणी—हंस—(i) यह शब्द 'अहं सः' से बना है। 'अ' और विसर्ग का लोप हो गया है। इसका अर्थ है—मैं वही हूँ अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है।

(ii) हंस पक्षी में नीर-क्षीर-विवेक होता है, यह कवि-समय है। यहाँ तात्पर्य है—विवेकी जीव, सत्यासत्य पारखी।

(iii) हंस वर्षाकाल में मानसरोवर में चला जाता है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि वह जीव जो संसार को छोड़कर मोक्ष की ओर चला जाता है, वह हंस का प्रतीक है।

(iv) प्रत्येक व्यक्ति में श्वास के साथ 'अहं' और प्रश्वास के साथ 'सः' की सहज ध्वनि रहती है। किन्तु जीव इसे जानता नहीं। 'अजपाजपा' में योगी श्वास-प्रश्वास के साथ 'अहं सः' का सचेतन रूप से जप करता है। 'अहं सः' से निरन्तर यह चेतावनी मिलती रहती है कि मैं वही हूँ अर्थात् ब्रह्म हूँ।

५२

जेहि कारन सिव अजहुँ वियोगी, अंग विभूति लाय भौ[1] जोगी।
सेस सहस मुख पार न पावा,[2] सो अब खसम सही[3] समुझावा[4]।
ऐसी विधि जो मो कहँ ध्यावै,[5] छठये माँह दरस[6] सो पावै।
कवनेहु भाव दिखाई देऊँ,[7] गुप्ते रहि सुभाउ सब लेऊँ[8] ॥
साखी—कहहिं कवीर पुकारि के, सभ का इहै[9] हवाल[10]।
कहा हमार मानै नहीं, कैसे छूटै भ्रम[11] जाल ॥

१. बं०, शु०-भे; २. अन्य प्रतियों में-पावै; ३. बं०, शु०-सहित; ४. अन्य प्रतियों में-समुझावै; ५. ब०, वि०, शु०-धावै; ६. बा०-दरसन; ७. ख०, शु०-देहौं; ८. ख०, शु०-लेहौं; ९. अन्य प्रतियों में-उहै; १०. बा०-विचार; ११. बा०-भम।

शब्दार्थ—कारन = लिए। लाय = लगाकर।
खसम = (i) ख + सम—आकाश के समान अर्थात् निर्गुण ब्रह्म।
(ii) (फा०—खस्म) पति, स्वामी। छठये माँह = शुद्ध अन्तःकरण में, मन में। भाव = प्रकार।

संदर्भ—पूर्व रमैनी में यह बतलाया गया है कि अनिर्वाच्य ब्रह्म का अनुभव कथनी से नहीं होता, करनी से ही होता है। उसी करनी का विस्तार इस रमैनी में किया जा रहा है।

व्याख्या—जिसके कारण शिव अंगों में भस्म लगाकर योगी हुए, किन्तु अभी तक वियोगी ही हैं अर्थात् परमात्मा से मिलन न हो सका। जिसकी महिमा को शेष सहस्रमुख से भी वर्णन करके पार नहीं पाते। उसी परमात्मा ने, जो सबका स्वामी है, सत्यमार्ग को समझा दिया है। उस रहस्यपूर्ण सार शब्द द्वारा जो मेरा ध्यान करता है, वह छः माह में मेरा दर्शन कर पाता है। 'माँह' शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—महीना अथवा में। यदि 'में' अर्थ लिया जाय तो भाव होगा—पाँच इन्द्रियों के अतिरिक्त छठीं इन्द्रिय मन के भीतर मेरा अनुभव कर सकता है।

मैं किसी भी प्रकार से दिखलाई दे सकता हूँ और गुप्त रहकर भी सुभाव-सुन्दर भाव अर्थात् भक्ति-भाव को स्वीकार करता हूँ।

साखी—कबीर पुकार करके कहते हैं कि शंकर से लेकर साधारण साधक तक का वही हाल है। जब तक कोई मिलन के रहस्य को नहीं जानेगा, तब तक जीव का परमात्मा से वियोग बना रहेगा। लोग मेरा कहना नहीं मानते तो वे भ्रमजाल से कैसे छूट सकते हैं?

टिप्पणी—शेष—शेष के हजार मुख और दो हजार जिह्वाएँ हैं, जिनसे वे नित्य निरन्तर प्रसन्नता और उत्साहपूर्वक भगवान् का गुणगान करते रहते हैं।

५३

महादेव मुनि अंत न पाया, उमा सहित उन्ह जन्म गँवाया।
उनते[1] सिध[2] साधक नहिं कोई, मन निश्चय[3] कहु कैसे होई।
जौ लगि तन मैं आहै सोई, तब लगि चेति न देखै कोई।
तब चेतिहौ जब तजिहहु प्राना, भया अंत[4] तब मन पछिताना।
इतना सुनत निकट चलि आई, मन[5] विकार नहिं छूटी भाई॥
साखी—तीनि लोक यों आय के, छूटि न काहु[6] कि आस।
इक अँधरे जग खाइया, सबका भया विनास॥

१. बा०-उनहूँ से सिध साधक होई; २. बं०-सिद्ध साधु नहिं कोई। ३. बा०-निश्चल; ४. ब०, ख०-यान; ५. बा०-मन कै विकार न छूटे भाई। ६. बा०-काहू की; ७. बा०-निपात।

शब्दार्थ—सोई = (सं० तत् का अनुवाद) परमतत्व। इतना सुनत = वेद शास्त्रादि का श्रवण। अँधरे = (प्र० अ०) मन। आस = आशा, तृष्णा।

संदर्भ—पिछली रमैनी में सद्गुरु ने यह बतलाया है कि शंकर जैसे योगी भी आजतक वियोगी बने रहे और परमार्थ से मिलन के रहस्य को न जान पाये। उसी क्रम में अब वह यह बतलाते हैं कि वह रहस्य हमारे भीतर ही है, परन्तु तृष्णा के प्राबल्य के कारण हम उस ओर उन्मुख नहीं हो पाते।

व्याख्या—महादेव जैसे मुनि ने भी उमा सहित तपस्या करते-करते सारा जन्म गवाँ दिया, किन्तु परमार्थ का अन्त न पा सके। साधारणतः लोग उनको सिद्ध अथवा साधक कहते हैं। क्या उनसे भी बढ़कर कोई सिद्ध या साधक हो सकता है ? परन्तु जिस मार्ग से वे साधक गये हैं, उस मार्ग से जब महादेव जैसे सिद्ध-साधक को वास्तविकता का निश्चय न हो सका तो बताओ औरों का मन कैसे निश्चय पर पहुँच सकता है ? (यदि 'निश्चल' पाठ लिया जाय तो भी अर्थ में अन्तर नहीं आता। तब अर्थ होगा—महादेव जैसे बड़े-बड़े साधकों का मन संशय-विपर्यय में चलायमान होता रहता है और परमतत्व को नहीं पकड़ पाता तो कहो औरों का मन कैसे अंतिम तथ्य को पकड़ सकेगा, जिससे वह चलायमान न हो)।

जब तक शरीर में प्राण है अर्थात् जब तक जीवन है, तब तक सचेत होकर कोई देखने की चेष्टा नहीं करता, यही आश्चर्य है। जीवन भर नहीं चेते, तब क्या जब प्राण निकलने को होंगे, तब चेतोगे ? जब अन्त समय आ जाता है, तब मन में पछताने के सिवाय और कुछ नहीं रह जाता है। नाना प्रकार के उपदेशों को सुनते-सुनते मृत्यु निकट आ गई, किन्तु फिर भी मन का विकार नहीं छूटा।

साखी—जीव तीनों लोकों में घूमता फिरता है, परन्तु तृष्णा नहीं छूटती। एक अंधा मन सारे जगत् को कवलित करता रहता है और उससे सारे जगत का विनाश होता रहता है।

टिप्पणी—(i) 'तीन लोक' के दो अर्थ हो सकते हैं :—

(अ) स्वर्गलोक, मृत्युलोक, पाताल लोक।

(आ) भू, भुव, स्व लोक अर्थात् अन्नमय, प्राणमय और मनोमय लोक। इन तीन लोकों में मृत्यु का प्रभाव विद्यमान है। इनमें सदा परिवर्तन होता रहता है।

(ii) मन स्वभावतः विकल्पमय है। विकल्पमय मन निर्विकल्प सत्य को नहीं जान पाता। इसीलिए उसे अंधा कहा गया है। परन्तु समस्त जगत् उसी विकल्पमय मन के वश में है। इसलिए सबका विनाश होता रहता है। परमतत्व मन के धरातल से ऊपर उठने पर ही जाना जा सकता है।

(iii) 'तब चेतिहौ जब तजिहहु प्राना'—में काकु वक्रोक्ति अलंकार है।

५४

मरि गये ब्रह्मा नभ[1] के वासी, सीव सहित मुए अविनासी।
मथुरा मरिगो कृस्न गुवारा, मरि मरि गए दसौ अवतारा।
मरि मरि गए भगति जिन ठानी, सरगुन महँ जिन निरगुन आनी॥
साखी—नाथ मछंदर बाँचें[2] नहीं, गोरख दत्त औ व्यास।
कहहिं कबीर पुकारिकै, सभ[3] परे काल की फाँस॥

शब्दार्थ—अविनासी = देवता। गुवारा = ग्वाल, गोपाल। दस अवतार = मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि। व्यास = वेद और पुराणों के संग्रहकर्त्ता।

संदर्भ—पिछली रमैनी में सद्गुरु ने यह बताया है कि संसार में जन्म लेकर कोई भी मरण से छुटकारा नहीं पाता। यह प्रश्न हो सकता है कि मनुष्य मरण से छुटकारा नहीं पाता, किन्तु ब्रह्मा और शिव जैसे देवता, कृष्ण जैसे अवतारी, व्यास जैसे ऋषि और मत्स्येन्द्रनाथ तथा गोरखनाथ जैसे योगी तो मरण से परे होंगे?

व्याख्या—इस रमैनी में सद्गुरु बतलाते हैं कि इन लोगों को भी मरण से छुटकारा नहीं मिला। शरीरधारी की मृत्यु अवश्यंभावी है।

ब्रह्मा जो आकाश के वासी समझे जाते हैं, वह भी मृत्यु से न बच सके। देवता जो अमर समझे जाते हैं, वे भी परमदेव शिव के सहित मृत्यु के चंगुल में आ गये। मथुरावासी कृष्ण गोपाल भी मृत्यु को प्राप्त हुए। दसो अवतार भी मृत्यु से छुटकारा न पा सके। बड़े-बड़े भक्त भी, जिन्होंने सगुण में निर्गुण की कामना की, काल कवलित हो गये।

साखी—मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ जो कि योगबल से अपना शरीर-परिवर्तन कर सकते थे, वे भी नहीं बचे। और दत्तात्रेय तथा व्यास भी मृत्यु को प्राप्त हुए। कबीर पुकार कर कहते हैं कि सभी काल के पाश में फँस गये।

५५

गये राम औ गये लछमना, संग न गई सीता अस[1] धना।
जात कौरवहिं[2] लागु न वारा, गये भोज जिन साजल धारा।
गये पंडु[3] कुन्ती सी[4] रानी, सहदेवहु[5] जिन बुधि मति ठानी।
सर्व[6] सोन की लंक उठाई, चलत बार कछु संग न लाई।

५४—१. बा०-कासी के; २. ब०, ख०-छूटे; ३. अन्य प्रतियों में 'सभ' नहीं है।

५५—१. बा०-ऐसी; २. वि०-कौरवन; ३. बा० पंडो; ४. बा०-ऐसी, शु०, बलि०-अस; ५. बा०-गये सहदेव; ६. वि० सरब।

जाकी पुरी[1] अंतरिछ छाई, सो हरिचन्द देखल[2] नहिं जाई।
मुरुख मानुस बहुत सँजोवै, अपने मरे अवर लगि रोवै।
ना[3] जानै अपनों मरि जैवे, टका[4] दस बढ़ै अवर लै खैवे॥

साखी—अपनी अपनी करि गये, लागि न काहु के साथ।
अपनी करि गो[5] रावणा, अपनी दसरथ नाथ॥

शब्दार्थ—धना = (सं०-धनिका) स्त्री। साजल = सजाया। धारा = मालवा में धारा नामक नगरी। पुरी = महल, मकान। अवर लगि = दूसरों के लिए। उठाई = बनवाई। सँजोवै = संचय करता है। बढ़ै = वृद्धि, व्याज अथवा अनुचित रीति से।

सन्दर्भ—कबीर ने पूर्व रमैनी में यह बतलाया है कि ब्रह्मा, शिव आदि देवता और कृष्ण आदि अवतार सभी मृत्यु के शिकार हुए। इस रमैनी में बड़े-बड़े वीर राजा-रानियों आदि को भी मरणशील दिखलाते हुए, वह मृत्यु और ममत्व के प्राबल्य को और अधिक रूप से स्पष्ट करते हैं और यह उपदेश देते हैं कि मानव को धन, पुत्र आदि से ममत्व नहीं रखना चाहिए।

व्याख्या—लक्ष्मण मृत्यु को प्राप्त हुए और राम भी उससे न बच सके। उनकी सीता जैसी पतिव्रता पत्नी भी मृत्यु के समय उनके साथ न जा सकीं। कौरव जैसे प्रतापी राजाओं को भी इस संसार से जाने में विलम्ब न लगा। राजा भोज, जिन्होंने धारा नगरी को सुन्दर रूप से सजाया था, वह भी इस लोक से चले गये। पाण्डु जैसे राजा गये और उनकी कुन्ती जैसी रानी भी इस लोक से चली गईं। वह सहदेव भी गये जिन्होंने मति और बुद्धि दोनों को निश्चित रूप से सिद्ध कर लिया था।

रावण जिसने सारी लंका को सोने से बनवाया था, वह भी संसार से चलते समय कुछ साथ न ले जा सका। राजा हरिश्चन्द्र, जिनका महल गगनचुम्बी था, वह भी अब नहीं दिखलाई देते अर्थात् वह भी मृत्यु को प्राप्त हुए।

विचारहीन मनुष्य बहुत कुछ संग्रह करता है। वह यह नहीं जानता कि उसकी धन-सम्पत्ति उसके मरने पर यहीं रह जायेगी। वह पुत्र-पत्नी आदि के लिए तो रोता रहता है, किन्तु यह नहीं सोचता कि वह स्वयं ही एक दिन संसार से चला जायगा। वह धन-संग्रह में लगा रहता है। यह नहीं सोचता कि वह एक दिन मर जायेगा और यह धन किसी काम न आयेगा। अपने ममत्व के वश में वह व्याज अथवा छल से धन को बढ़ाने का ही प्रयत्न करता रहता है, यह कभी नहीं सोचता कि उसकी मृत्यु के अनंतर अन्य लोग उसका भोग करेंगे। (यहाँ 'दस' शब्द का तात्पर्य है—अनेक)।

---

१. बा०-कुरिया; २. शु०-देखि; ३. अन्य प्रतियों में—इन; ४. वि०-विभव टका दस-
५. बा०-गये रावन।

साखी—लोग जीवन भर ममत्व में फँसे रहते हैं और प्रत्येक वस्तु को अपनी समझकर उसकी रक्षा में लगे रहते हैं। लेकिन किसी की भी सम्पत्ति मरते समय साथ नहीं जाती। रावण ममत्व के चक्कर में पड़ा रहा और चलते समय कुछ साथ न ले गया। राजा दशरथ भी इसी प्रकार अपने साथ कुछ न ले गये।

सारी रमैनी का मुख्य भाव यही है कि पुत्र, कलत्र, सम्पत्ति आदि में ममत्व का भाव व्यर्थ है, क्योंकि मरणशील प्राणी को इनको यहीं छोड़कर जाना है।

टिप्पणी—साधारणतः बुद्धि और मति पर्यायवाची माने जाते हैं, किन्तु इनमें थोड़ा सूक्ष्म भेद माना गया है। 'मति' आगामी बात को जानने वाली शक्ति को कहते हैं और तात्कालिक बात का ज्ञान कराने वाली शक्ति को 'बुद्धि' कहते हैं :—

'बुद्धिस्तात्कालिकी ज्ञेया, मतिरागामि गोचरा।'

५६

(ममत्वादि फल प्रकरण)

दिन दिन जरै जलन[1] के पाऊँ, डाढ़ें[2] जाय न उमँगे काऊ।
कंध न देइ मसखरी करई, कहु[3] धौं कौनि भाँति निस्तरई।
अकरम करै करम को धावै, पढ़ि गुनि वेद जगत समुझावै।
छूँछा परे अकारथ जाई, कहहिं कबीर चित चेतहु भाई॥

शब्दार्थ—पाऊँ = पैर। डाढ़े = दग्ध। उमँगे = उद्धार होना, निकलना। कंध = सहारा। मसखरी = उपहास। निस्तरई = उद्धार। अकरम = कर्म न करना, निष्काम। पढ़ि गुनि = पढ़ना-रटना।

संदर्भ—पूर्व रमैनी में सद्गुरु ने यह बतलाया है कि आशा या तृष्णा और उसके जनक अज्ञान से जीव बार-बार जन्म-मरण के चक्कर में पड़ता है। वह जिन देवादि की उपासना करता है, वे भी अनित्य हैं। इस लोक का कोई भी पदार्थ साथ नहीं जा सकता। इसलिए सत्संग करके अपने भीतर विद्यमान नित्य-तत्त्व आत्मा की ओर मुड़ना चाहिए। इस रमैनी में वह पिछली बातों को और सम्पुष्ट करने के लिए यह बतलाते हैं कि साधारण उपदेशक लोग भी ऐसे ही हैं जो कि जीव को कुमार्ग की ओर ले जाते हैं।

व्याख्या—साधारणतः जीव और उनके उपदेशक दोनों राग-द्वेष, तृष्णा, मोह आदि में दग्ध होते रहते हैं। फिर भी वे लोभ से सकाम कर्म करते रहते हैं, जिससे जलन में ही उनका पाँव स्थित होता है अर्थात् वे उसी राग-द्वेष आदि में स्थित रहते

---

१. बा०-जरल; २. बा०-गाड़े, ३. व० खं०-दुई भाँति।

हैं। ऐसा सकाम कर्म करने से जीव और दग्ध होता रहता है और उससे कोई निकल नहीं पाता। (यदि 'डाढ़े जाय' के स्थान पर 'गाड़े जाय' पाठ लिया जाय तो उसका सम्बन्ध 'पाऊँ' से होगा, जिसका अर्थ होगा—उसका पैर राग-द्वेष में और गड़ता जाता है और वह उससे निकल नहीं पाता)।

कोई सत्य को सहारा नहीं देता, प्रत्युत सभी उसका उपहास करते रहते हैं। कहो ऐसे लोगों का कब और किस प्रकार उद्धार हो सकता है ?

गुरुआ लोग ऊपर से तो ऐसा दिखलाते हैं मानो उन्होंने सकाम कर्म का त्याग कर दिया है, परन्तु मनसे वह सकाम कर्म की ओर ही दौड़ते रहते हैं। वेद को पढ़-गुन करके, वह जगत् को काम्य कर्म ही समझाते रहते हैं। उनका इस प्रकार का उपदेश बिलकुल खोखला होता है और उससे जीव का लक्ष्य सिद्ध नहीं हो पाता। कबीर कहते हैं कि हे भाई ! चित्त में विचार करो—ऐसे उपदेश और ऐसे आचरण से कोई लाभ नहीं होगा।

५७

क्रितिया सूत्र[1] लोक एक अहई, लाख पचास के आयू[2] कहई।
विद्या वेद पढ़ै पुनि सोई, वचन कहत परतछै होई॥
पहुँची बात विद्या के पेटा[3], बाहू के भर्म भया संकेता[4]॥
साखी—खग के खोजन तुम परे, पीछे अगम अपार।
बिनु परचै कस[5] जानिहौ, झूठा है हंकार[6]॥

शब्दार्थ—क्रितिया = कृत्रिम, काल्पनिक, बनावटी। सूत्र = संक्षेप में कहा हुआ वचन जो बहुत अर्थ प्रकट करे। अहइ = है। हंकार = अहंकार।

संदर्भ—पिछली रमैनियों में कहा गया है कि इस लोक में मनुष्य अल्पायु है राम, कृष्ण जैसे अवतारी भी अल्पायु रहे हैं तो कोई कैसे कह सकता है कि ब्रह्मलोक में ब्रह्मा की आयु असंख्य वर्षों की होती है। इस रमैनी में कबीर इन सभी वचनों को काल्पनिक बताते हुए यह प्रतिपादित करते हैं कि आत्मा काल और देश से परे है। अमरत्व का अर्थ काल से नहीं लेना चाहिए। काल का केवल देहाभिमान से सम्बंध है। अमर आत्मा के सम्बंध में देश और काल का प्रयोग उपयुक्त नहीं है।

व्याख्या—यह वचन कि एक ऐसा लोक है जिसमें पचास लाख वर्ष की आयु होती है, सर्वथा कृत्रिम अथवा काल्पनिक है। ('कृतिया' शब्द सूत्र और लोक दोनों का विशेषण हो सकता है, किन्तु इससे अर्थ में कोई अन्तर नहीं आता)।

---

१. ब०, ख०-लोक सूत्र; २. बा०-आऊ, शु०-आइस; ३. ब०, ख०-बेता; ४. ख०-साकेता; ५. ब०-ते जातहू; ६. दा०-संसार।

ऐसी ही काल्पनिक वाणी को कहने वाले लोग विद्या और वेद पढ़ते हैं और इस ढंग से बोलते हैं मानो उन्होंने उस लोक अथवा सत्य का प्रत्यक्ष किया हो। इस विद्या की बात श्रोताओं के पेट में अर्थात् भीतर पहुँची और उनमें नाना प्रकार के भ्रम और भय का संचार हो गया।

साखी—इस साखी में 'खग' शब्द आत्मा का प्रतीक है। 'खग' शब्द की व्याकरणिक व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई—खे (आकाशे) गच्छति इति खगः अर्थात् आकाश में गमन करने वाला। आत्मा खग के समान है। उसको खोजने में तुम क्या पड़े हो ? उसके पीछे अगम और अपार रहस्य है। वह बिना अपरोक्षानुभूति के नहीं जाना जा सकता। विद्या आदि का अहंकार झूठा है अर्थात् केवल बौद्धिक स्तर पर आत्मा का परिचय नहीं हो सकता।

टिप्पणी—(i) महाभारत में आत्मा की तुलना 'खग' से इन शब्दों में की गई है :—

शकुन्तानामिवाकाशे मत्स्यानामिव चोदके।
पदम् यथा न दृश्यते तथा ज्ञानविदाम् गतिः॥
(शान्ति पर्व—१८१।१२)

'जिस प्रकार आकाश में पक्षियों के पद-चिह्न और जल में तैरती मछलियों के चिह्न नहीं दिखाई देते, उसी प्रकार सत्य का साक्षात्कार कर लेने वालों की गमन-गति का पता नहीं चलता।'

(ii) सूत्र का लक्षण—

स्वरूपाक्षरमसंदिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

'जिसमें कम अक्षर हों, जो स्पष्ट हो, सार रूप में कहा गया हो, विषय से सम्बद्ध सभी बातें आ जायँ, निरर्थक वचन न हों, निर्दोष हो, उसे विद्वानों ने सूत्र कहा है।'

५८

(गुरुभक्ति से निर्द्वन्द्व राज्यादि प्रकरण)

तैं सुत मानु हमारी सेवा, तो कँह राज देइहौं[1] देवा।
अगम दुर्गम[2] गढ़ देउँ छुड़ाई, औरौ बात सुनहु कछु आई।
उतपति परले देउँ देखाई, करहु राज सुख बिलसहु जाई।
एकौ बार न होइहै बाँको, बहुरि जन्म नहिं होइहै ताको।
जाइ पाप सुख मिलै निधाना[3], निस्चै वचन कबीर कै माना॥

१. बा०-देवँ हो; २. शु०-दगम, वि०-दुगम; ३. द०, ख०-धाना, बा०-देहौं धना।

साखी—साधु संत तेई जना[1], जो मानहिं वचन हमार।
आदि अंत उतपति प्रलय, देखहु दिष्टि पसार॥

शब्दार्थ—सुत = प्रिय शिष्य। सेवा = उपदेश, रक्षा की बात। राज = आत्म-राज्य। अगम = अजेय या असाध्य कर्म। दुर्गम = दुःसाध्य कर्म। गढ़ = कर्मबन्धन का किला। उतपति प्रलयलै = जन्म-मृत्यु। सुख = परमानंद। बार = बाल।

संदर्भ—पिछली रमैनियों में सत्गुरु ने यह बतलाया है कि ब्रह्मा से लेकर मनुष्य तक सभी प्राणियों के जीवन और सुख अनित्य और तुच्छ हैं। इसलिए मनुष्य को विषय सुख की कामना नहीं करनी चाहिए। इसी सन्दर्भ में यह आगे कह रहे हैं कि—

व्याख्या—हे प्रिय शिष्य! तुम हमारा उपदेश मानो, जिससे तुम्हारी रक्षा होगी। मैं तुमको दिव्य राज्य दूँगा। (यदि 'देवँ हो' पाठ लिया जाय तो 'हे देव' शिष्यों के लिए सम्बोधन के अर्थ में लिया जायेगा और अर्थ होगा—हे श्रद्धायुक्त जिज्ञासुओ! मैं तुमको स्व-राज्य दिला दूँगा)।

अविद्या और तज्जनित कर्मरूपी बंधन का जो अभेद्य गढ़ है, उससे मैं तुमको उन्मुक्त कराऊँगा। मेरी कुछ और बात सुनो। मैं तुमको जन्म-मरण का रहस्य भी बतला दूँगा। इससे तुम स्व-राज्य का सुख भोग सकोगे।

तुम्हारा बाल बाँका नहीं होगा अर्थात् तुम्हारे मोक्ष के मार्ग में कोई बाधा न रह जायेगी और फिर तुम संसरण के चक्र में न फँसोगे। कबीर के असंदिग्ध वचन मानने से तुम्हारे सब पाप क्षीण हो जाएँगे और तुम्हें परम सुख-धाम की प्राप्ति होगी। (यदि 'सुख मिले घना' पाठ लिया जाय तो भी अर्थ में कोई अंतर नहीं आता। तब अर्थ होगा—तुमको प्रगाढ़ सुख मिलेगा)।

साखी—जो मेरी बात मानते हैं, वे ही वस्तुतः साधु और संत हैं। मैं जीवन के आदि और अंत अर्थात् जन्म और मरण के रहस्य का उद्घाटन इस प्रकार कर दूँगा कि तुम उसे अच्छी तरह आँख खोलकर देख सकोगे।

———

५९

(वैराग्यार्थोपदेश प्रकरण)

चढ़त चढ़ावत भँड़हर फोरी, मन नहिं जानै केकर चोरी।
चोर एक मूसै संसारा, विरला जन कोइ बूझनि हारा।
सरग पताल भूमि लै बारी, एकै राम सकल रखवारी॥

---

१ ज० ख० में 'जो' नहीं है।

साखी—पाहन होयके[1] सब गये, बिनु भितियन को चित्र[2]।
जासों कियहु मिताई, सो धन भया न हित्त ॥

शब्दार्थ—चढ़त-चढ़ावत = प्राणायाम, प्राण को चढ़ाना। भँड़हर = शरीर। चोर एक = मन। वारी = वारि, जल।

संदर्भ—पूर्ववर्ती कई रमैनियों में सद्गुरु ने यह बतलाया है कि वाह्याचार से वास्तविक लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती। इस रमैनी में वह यह बतला रहे हैं कि आन्तरिक आचार जैसे प्राणायाम और समाधि से भी वास्तविक लक्ष्य नहीं प्राप्त हो सकता। इसमें उन्होंने हठयोगियों और शून्य में समाधि लगाने वालों की विफलता की ओर संकेत किया है।

व्याख्या—हठयोगी प्राण चढ़ाते-चढ़ाते शरीर को नष्ट कर डालते हैं, किन्तु बेचारा मन यह नहीं जान पाता कि वास्तविक चोर कौन है? एक अज्ञानजन्य तृष्णा सारे संसार को मूस रही है—संसार की चोरी कर रही है। कोई बिरला ही इस तथ्य को समझता है। स्वर्ग से लेकर पाताल तक एक राम ही सबके रक्षक हैं। (प्रायः टीकाकारों ने 'वारी' का अर्थ 'बाग' किया है। किन्तु इस अर्थ में दो आपत्तियाँ हैं—एक तो स्वर्ग, पाताल तथा भूमि को वाटिका कहने से किसी विशेष भाव का बोध नहीं होता। दूसरे इस अर्थ से 'लै' का अर्थ नहीं बैठता है। 'लै' का अर्थ है—तक, पर्यन्त। अतः उपर्युक्त अर्थ ही समीचीन है)। सद्गुरु का आशय यह है कि प्रत्यगात्मा रूपी राम से ही सम्पर्क रखने से रक्षा होगी। समाधि आदि से सिद्धि नहीं प्राप्त हो सकती।

साखी—शून्य में समाधि लगाना बिना फलक के चित्र के बनाने के समान व्यर्थ है। ऐसी समाधि लगानेवाले सब लोग पत्थर के समान जड़ हो गये। जिस समाधि को अपना परम हितकर धन समझकर अपनाया गया, वह कुछ भी हित न कर सका अर्थात् इस प्रकार से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

टिप्पणी—इस रमैनी में 'चोर' का प्रतीक बहुत व्यञ्जक है। हठयोगी आदि साधक कहीं बाहर से मुक्तिरूपी धन एकत्र करने की चेष्टा करते रहते हैं, किन्तु वे यह नहीं देखते कि उनके भीतर ही जो सहज धन विद्यमान है, उसे भीतर ही स्थित अज्ञानजन्य तृष्णारूपी चोर चुरा रहा है। तुलसीदास के भी एक पद में इससे मिलता-जुलता भाव पाया जाता है। पद इस प्रकार है—

मैं केहि कहौं विपति अति भारी।
श्री रघुबीर धीर हितकारी ॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा।
तहँ बसे आइ बहु चोरा ॥
अति कठिन करहिं बरजोरा।
मानहिं नहिं विनय निहोरा ॥

---

१. बा०-होय सम; २. शु०-चित्त।

तम, मोह, लोभ, अहंकारा।
मद, क्रोध, बोध-रिपु मारा॥
अति करहिं उपद्रव नाथा।
मरदहिं मोहि जानि अनाथा॥
(विनय०—१२५)

६०

छाँड़हु पति छाँड़हु लवराई, मन अभिमान छूटि[1] तब जाई।
जन[2] जो चोरी भिच्छा खाहीं[3], सो[4] बिरवा पलुहावन जाहीं।
पुनि सम्पति औ पति कँह धावै, सो बिरवा संसार[5] लै आवै॥

साखी—झूठ-झूठ कै डारहु[6], मिथ्या यह संसार।
तेहि कारन मैं कहत हौं, जाते होय उबार॥

शब्दार्थ—पति = स्वामित्व, परिग्रह का भाव, संग्रह करने की लिप्सा। लबराई = झूठापन। भिच्छा = भिक्षा, (i) जीवनयापन का साधन, अन्न, (यहाँ 'भिक्षा' का शाब्दिक अर्थ 'भीख' न लेकर औपचारिक अर्थ लेना चाहिए (दे०—आप्टे—संस्कृत-इंगलिश कोश, ii, पृष्ठ ११९७) पलुहावन = पल्लवित करना। कारन = हेतु, साधन।

व्याख्या—इस रमैनी में कबीर ने यह बतलाया है कि स्वामित्व अथवा संग्रह करने की प्रवृत्ति देहाभिमान (देह में आसक्ति) की जड़ है। उससे वासना या विषय-तृष्णा बढ़ती जाती है और वासना से संसरण या पुनर्जन्म होता रहता है।

स्वामित्व की लिप्सा को छोड़ो। त्याग का जो ऊपरी आडम्बर बनाये हुए हो और भीतर से संग्रह करने की प्रवृत्ति के दास बने हुए हो, इस लबराई, झूठेपन या मिथ्याचार को छोड़ो, तभी मन का अभिमान जायेगा।

जो लोग संग्रह करने की लिप्सावश, अन्यायपूर्वक, अनैतिक रूप से भोग करते हैं, वे विषय-तृष्णा या वासना के वृक्ष को पल्लवित करते हैं। (यहाँ 'चोरी भिक्षा खाई' का लाक्षणिक अर्थ है—अन्यायपूर्वक, अनैतिक रूप से भोग करना)। संग्रह-प्रवृत्ति और वासना में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। ज्यों-ज्यों वासना बढ़ती है, त्यों-त्यों संग्रह की प्रवृत्ति होती है और ज्यों-ज्यों संग्रह की प्रवृत्ति होती है, त्यों-त्यों वासना बढ़ती जाती है। अतः जब विषय-तृष्णा या वासना पल्लवित होती है, तब जीव पुनः

---

१. बा०-टूटि; २. ब०, ख०-जानि लो, शु०, बलि०- जिन लै; ३. अन्य प्रतियों में-खाई; ४. बा०-फेरि; ५. ब० ख०-संसारहिं; ६. ब०, ख०, शु०- छाड़हु।

सम्पत्ति और स्वामित्व की ओर दौड़ता है। इस प्रकार उसकी वासना बढ़ती जाती है और वह पुनर्जन्म का शिकार होता है। वासना उसे पुनः संसरण की ओर ले जाती है।

साखी—संग्रह की लिप्सा तथा स्वामित्व की वासना निस्सार तथा झूठी है। इसे मिथ्या समझकर छोड़ दो। यह विषय-तृष्णा का ससार झूठा है। इसलिए मैं कहता हूँ कि आत्म-तत्व ही परम सत्य है, उसको पकड़ो जिससे तुम्हारा उद्धार हो जाय।

———

६१

(तत्व ज्ञान विना परवञ्चनादि प्रकरण)

धर्म कथा जो कहतै रहई, लबरी[1] नित उठि प्रातै कहई।
लाबरि विहने लावरि संझा,[2] इक[3] लावरि बस[4] हिरदया मंझा[5]।
राम हुँ[6] केर मरमु नहिं जाना, लै मति ठानिन्हि वेद पुराना।
वेदहु केर कहल[7] नहिं करई, जरतहिं[8] रहै सुस्त नहिं परई॥

साखी—गुनातीत के गावते, आपुहिं गये भ्रमाय[9]।
माटिक[10] तन माटी मिलै[11], पवनहिं[12] पवन समाय॥

शब्दार्थ—लाबरि = झूठ। सुस्त = बुझना। गुनातीत = गुणों से परे, निर्गुण ब्रह्म, शून्य। मति = मत, विचार।

संदर्भ—पूर्व रमैनी में कबीर ने बतलाया है कि अहं और मम (मैं और मेरा) का भाव जब तक नहीं छूटता, तब तक मनुष्य संसरण से छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकता। इस रमैनी में वह यह बतलाते हैं कि सगुण और निर्गुण का मोह भी मिथ्या है। वास्तविक सत्य दोनों से परे है।

व्याख्या—जो लोग धर्म-कथा बाँचते और सुनाते रहते हैं और नित्य प्रातः उठ करके केवल 'राम-राम' या 'कृष्ण-कृष्ण' नाम का जप करते है, वे सब मिथ्या के साम्राज्य में पड़े हुए हैं। वे प्रातः-सायं मिथ्या बातों का उपदेश करते रहते हैं और उनके हृदय में भी अज्ञान बसा रहता है। लोग वेद और पुराण के आधार पर नाना प्रकार के असत्य और अर्ध-सत्य मतों का प्रतिपादन करते रहते हैं, किन्तु राम का वास्तविक मर्म नहीं जानते। सच बात तो यह है कि वेद भी केवल देवी देवता की उपासना का उपदेश नहीं करते। उनमें भी एक परम सत्य की ओर संकेत है, जो

---

१. व०, ख०-लावरि उठो परातहिं; २. व०, ख०, वं०-सांझा; ३. वा०-एक; ४. वा०-बसै; ५. व०, ख०-मांझा; ६. वलि०-सत्यनाम के; ७. वं०-कहा; ८. वं०-जरतय; ९. वा०-गँवाय; १०. वा०-माटी के; ११. वा०-मिलिगो; १२. वा०-पौनहि पौन।

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' आदि से ध्वनित होता है। किन्तु लोग वेद के इस कथन को नहीं मानते। फलतः मोह की आग में जलते रहते हैं और कभी शान्ति का अनुभव नहीं करते।

साखी—लोग सब गुणों से अतीत, शून्य के विषय में लम्बी-चौड़ी बातें करते रहते हैं, किन्तु वे स्वयं भ्रम में पड़े हुए हैं। सच बात तो यह है कि गुण और गुण से अतीत—ये दोनों मन की कल्पनाए हैं। परम सत्य इन दोनों से परे है। इसको न जानने से बड़े-बड़े नाम मात्र के विद्वानों की भी वही गति होती है, जो साधारण जन की। अन्त में यह पार्थिव शरीर महाभूत पृथ्वी में मिल जाता है और प्राण महाभूत पवन में मिल जाता है और वे वैसे के वैसे ही अज्ञानी बने रहते हैं।

६२

जौं तोहिं[१] करता बरन विचारा, जन्मत तीनि दण्ड अनुसारा।
जन्मत सूद्र मुए[२] पुनि सूद्रा, कृतम जनेउ डारि[३] जग मुद्रा[४]।
जौ तुह[५] ब्राह्मन ब्रह्मनी के जाया, और राह तें[६] काहे न आया।
जौ तुह तुरुक तुरुकिनी जाया[७], पेटे काहे न सुनति कराया।
कारी पियरी दुहहू गाई, ताकर दूध देहु बिलगाई।
छाड़ु कपट नर[८] अधिक सयानी, कहहिं कबीर भजु सारंगपानी॥

शब्दार्थ—तीनि दण्ड = तीन ताप (दैहिक, दैविक, भौतिक)। मुए = मरने पर। कृतम = कृत्रिम, बनावटी। मुद्रा = चिह्न। जाया = उत्पन्न हुआ। सुनति = मुसलमानी। बिलगाई = अलग करना। सारंगपानी = जिनके हाथ में सारंग नामका धनुष है अर्थात् विष्णु।

संदर्भ—पूर्व रमैनी में सद्गुरु ने धर्मकथा कहने वालों के लबारपन की ओर संकेत किया है। उसी लबारपन का उदाहरण जन्मसिद्ध जातिगत श्रेष्ठता भी है, जिस पर कबीर ने इस रमैनी में प्रहार किया है।

व्याख्या—यदि तू वर्ण अर्थात् जाति के ऊपर विचार करता तो तुझे यह पता लग जाता कि सबके लिए जन्म के साथ ही तीन ताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) लगे हुए हैं और जन्म से कोई ऊँच-नीच या ब्राह्मण-शूद्र नहीं है। जन्म से सभी शूद्र हैं और मरने पर भी सभी शूद्र ही हैं। यहाँ 'शूद्र' कहने का भाव यह है कि जिस शूद्र का मैलेपन से सम्बन्ध माना जाता है, जन्म-मरण में वह मैलापन सबके साथ समान रूप

---

१. बलि०, वि०-तोहिं; २. बं०-भये; ३ बा०-घालि; ४. बा०-दुंद्रा; ५. ब०, ख०, दं०-तुम; ६. ब०, ख०-द्वार है; ७. बा०-के जाया; ८. बा०-नल।

से लगा हुआ है। संसार में ब्राह्मणत्व का कृत्रिम चिह्न—जनेऊ डालकर लोग ब्राह्मण बने हुए हैं, कोई जन्म से ब्राह्मण नहीं है।

तुम्हारा जो यह दावा है कि ब्राह्मण केवल ब्राह्मणी द्वारा ही उत्पन्न है अर्थात् जन्म से ही वह ब्राह्मण है तो तुम्हारे जन्म का कोई दूसरा माध्यम क्यों न हुआ ? यदि तुम्हारे अनुसार यह माना जाय कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से बने, तो फिर तुम भी ब्राह्मणी के मुख से पैदा होते। उसी द्वार से तुम भी क्यों आये हो, जिससे सब आते हैं ?

कबीरदास इसी प्रकार मुसलमानों के विषय में कहते हैं कि यदि तुम्हारा यह अभिमान है कि हम तुर्क लोग तुर्किनी से ही पैदा हुए हैं तो तुमने पेट के भीतर ही सुन्नति क्यों न करा ली ? मानव के सार जीवात्मा में वर्ण-भेद नहीं है। वर्ण-भेद शारीरिक और गतानुगतिक है। सबके भीतर जीवात्मा समान रूप से एक है। गाय को दुहकर देखो। वह चाहे पीली हो या काली, सबका दूध समान रूप से एक वर्ण का होता है। काली-पीली गाय का दूध पृथक् नहीं किया जा सकता। हे मनुष्यो ! कपट और अधिक चतुराई छोड़कर भगवान् का भजन करो। व्यर्थ के कृत्रिम भेदों के चक्कर में न पड़ो।

६३

नाना रूप वरन यक कीन्हा, चारि बरन उन्ह काहु न चीन्हा।
नष्ट गए करता नहिं चीन्हा, नष्ट गये औरहिं मन दीन्हा।
नष्ट गए जिन्ह वेद बखाना, वेद पढ़े पै भेद न जाना।
विमलख करै नैन नहिं सूझा, भया अयान[1] तब कछुवौ न बूझा ।।
साखी—नाना नाच नचाय के, नाचै नट के भेख।
घट घट अविना[2]सी बसै, सुनहु तकी तुम सेख ।।

शब्दार्थ—बरन = वर्ण, रंग। चारि बरन = चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र)। अयान = अज्ञान। विमलख = (सं०-विमलाक्ष) नेत्रों को निर्मल करने वाला अर्थात् अंजन।

व्याख्या—एक प्रभु ने अनेक प्रकार के रूप और वर्ण (रंग) की सृष्टि की। उसको चारो वर्णों (जातियों) में से कोई न पहचान सका। जिन्होंने स्रष्टा को नहीं पहचाना और अन्य में मन लगाया, उनका जीवन व्यर्थ गया। अन्य में मन लगाने का अर्थ हो सकता है—अन्य देवों की उपासना अथवा अनात्म में आत्मबुद्धि अथवा विषयों में अनुरक्त रहना। कबीर के मत से ऐसे सब लोगों का जीवन व्यर्थ है।

१. ब०, ख०-यान; २. बा०-है अबिनासी।

जो लोग वेद के शब्दों में उलझे रहते हैं, उसकी शाब्दिक व्याख्या में रत रहते हैं, उनका भी जीवन व्यर्थ ही है, क्योंकि उनको वेद का केवल वाक्य-ज्ञान होता है। उन्होंने उसका मर्म नहीं समझा है। जैसे अंधा नेत्रों को विमल करने वाला चाहे जैसा सुरमा या अंजन लगा ले, उसको दिखाई नहीं दे सकता, वैसे ही जिसमें अज्ञान है, आन्तरिक प्रज्ञा और विवेक नहीं है, वे लाख वेद पढ़ें, उसके मर्म को नहीं समझ सकते। वास्तविक तथ्य घट-घट में विद्यमान है। उसी को जानने और पहचानने से सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

साखी—प्रसिद्ध सूफी शेख तकी को सम्बोधित करते हुए कबीर कहते हैं कि प्रत्येक प्राणी के भीतर जो सार है, वह स्वयं परमात्मा ही है। उससे भिन्न कोई दूसरी वस्तु नहीं है। वह नट (अभिनेता) के रूप में नाना प्रकार के शरीर धारण करते हुए, नाना प्रकार की भूमिकाओं का अभिनय करते हुए विद्यमान रहता है, परन्तु वह इन भूमिकाओं में से किसी में आसक्त नहीं होता। वह प्रत्येक घट (शरीर) के भीतर सदा अविनाशी और अनासक्त रूप में विद्यमान रहता है। उसी से चित्त का संयोग होने पर मार्मिक ज्ञान होता है। कहीं बाहर ढूँढ़ने से वह नहीं प्राप्त हो सकता।

तुलनीय—(i) यस्य नास्ति निजा प्रज्ञा केवलं तु बहुश्रुतः।
न स जानाति शास्त्रार्थं दर्वी पाकरसं यथा ॥

'जिसमें अपनी प्रज्ञा नहीं है, केवल बहुत पढ़ और सुन रखा है, वह शास्त्र के अर्थ को उसी प्रकार नहीं जानता, जैसे करछुल पाकरस में पड़ी रहने पर भी रस के स्वाद को नहीं जानती।

(ii) 'नाना रूप बरन यक कीन्हा' के समान-भाव उपनिषदों में भी व्यक्त हुए हैं। जैसे :—

एको अवर्णो बहुधा शक्तियोगात्।
वर्णाननेकान् निहितार्थो यो दधाति ॥
(श्वेता०—४/१)

× × ×

एको देवः सर्व भूतेषु गूढ़ः
साक्षी चेता सर्वभूताधिवासः।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः
तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥
(श्वेता०—६/११)

इसी भाव को ठीक इसी प्रकार एक सूफी कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है:—

तुर्फ़ बेरंगी के दारद, रंग हाये सद हजार।
तुर्फ़ बेशक्ली के दारद, शक्ल हाये बेशुमार ॥

'कितना आश्चर्य है कि जो स्वयं वेरंगी (अवर्ण) है, वह सैकड़ों हजार रंग बनाता है और जो स्वयं वेशक्ली (अरूप) है, वह अनंत रूपों का निर्माण करता है।

(iii) 'नाना नाच नचाय के···' के समान भाव गोस्वामीजी के निम्नलिखित दोहे में व्यक्त हुआ है :—

जथा अनेक वेष धरि, नृत्य करै नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावै, आपुनु होइ न सोइ ॥
(मानस०—७/७२)

६४

(दुर्बोध फलादि प्रकरण)

काया कंचन जतन कराया, बहुत भाँति कै मन पलटाया।
जौ सौ बार कहौं समुझाई, तैयो धरा छोरि[1] नहीं जाई।
जन के कहे जनै रहि जाई, नवौं[2] निद्धि सिद्धि तिन पाई।
सदा धर्म जाकै[3] हिय बसई, राम कसौटी कसतै रहई।
जौ रे कसावै[4] अनतै जाई, सो[5] बाउर अपनै[6] बौराई ॥
साखी—तातैं[7] फाँसी काल की, करहु आपनो[8] सोच।
संत[9] सिधाये संत जहँ, मिलि रहा पोचहि पोच ॥

शब्दार्थ—पलटाया = बहकाया, उलट-फेर किया। रहि जाई = मान बैठते हैं। निद्धि = निधि; कुबेर के नौ रत्न (पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, खर्व)। सिद्धि = योग की आठ सिद्धियाँ, (अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व)। अनतै = अन्यत्र। बाउर = बावला, पागल। सिधाए = प्रस्थान कर गये। पोच = (फा०—पूच) निकृष्ट, नीच, क्षुद्र।

संदर्भ—पूर्व रमैनी में सद्गुरु ने बतलाया है कि जो परमात्मा को पहचानने का प्रयत्न नहीं करते और अन्य वस्तुओं में मन लगाये रहते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। इसी तथ्य का प्रस्तुत रमैनी में विस्तार किया गया है।

व्याख्या—गुरुआ लोगों ने शरीर को कचन के समान बहुमूल्य समझकर नाना प्रकार के यत्न करवाये। (यदि 'काया-कंचन' को अलग-अलग रखा जाय तो अर्थ होगा—गुरुआ लोगों ने शरीर और धन के लिए नाना प्रकार के यत्न करवाये)।

---

१. ब०, ख०-छुआ नहिं; २. ब०, ख०, बलि०-नव निद्धी सिद्धी; ३. ब०, ख०, बं०-तिहि हृदया; ४. ब०, ख०-कसावट; ५. बं-तौ ६. बं०, बलि०-आपुहि; ७. बा०-ताते परी काल की फाँसी, वि०-काल-फाँसि ताते परी; ८. बा०-आपनी; ९. बा०-जहाँ संत तहँ संत सिधाये।

उन्होंने नाना प्रकार से मन को बहकाया। यदि मैं सैकड़ों बार समझाकर कहूँ तब भी लोगों के मन ने जिसको धर लिया है या पकड़ लिया है, उसे छोड़ नहीं पाता। गुरुआ लोगों के कहने या समझाने से जो लोग विश्वास कर लेते हैं, वे अधिक से अधिक नौ निधियाँ और आठ सिद्धियाँ प्राप्त कर सकते हैं। आत्मस्वरूप रूपी अमूल्य रत्न उनके हाथ नहीं लग सकता।

जिसके हृदय में पारमार्थिक धर्म ने शाश्वत रूप से स्थान कर लिया है, वह अपने प्रत्येक विचार और कर्म की कसौटी राम को बनाता है और उसी पर अपने कर्मों का परीक्षण करता रहता है। जो राम या सार शब्द को छोड़कर अन्यत्र कसौटी खोजता है, उस अज्ञानी को स्वतः पागल हुआ समझो।

साखी—परमार्थ को छोड़कर जो अन्यत्र सिद्धि-निधि की खोज में रहता है, वह काल की फाँसी में पड़ता है। आत्मस्वरूप की जानकारी के लिए चिन्ता करो। जो शुद्ध हृदय के लोग हैं, वे संतों के पास जाते हैं और जो निकृष्ट होते हैं वे निकृष्ट के ही साथ रहना पसन्द करते हैं। निकृष्ट का संग छोड़कर संत का संग करो।

६५

अपने गुन को औगुन कहहु, यहि[1] अभाग जे तुम न विचारहु।
तुम जियरा बहुतै दुख पावा[2], जल बिनु मीन कौन सचु पावा[3]।
चातक[4] जलहल भरे[5] जो पासा, स्वाँग धरे भौसागर आसा।
चातिक[6] जलहल आसहि पासा, मेघ न बरसै चलै उदासा।
राम नाम[7] इहै निज सारू, औरुअ[8] झूँठ सकल संसारू।
हरि उतंग तुम जाति पतंगा, जमघर[9] कियहु जीव को संगा।
किंचित है सपने निधि पाई, हिय न समाय कहँ धरौं छुपाई।
हिय न समाय छोड़ि नहिं पारा, झूठ-लोभ जे कछु न विचारा।
सुम्रिति कहा[10] आपु नहिं माना, तरुवर[11] तर छागर होय जाना।
जिव दुर्मति डोलै संसारा, ते नहिं सूझै वार न पारा॥

साखी—अंध भया सभ डोलै, कोई न करै विचार।
कहा[12] हमार मानै नहीं, किमि छूटै भर्म जाल॥

शब्दार्थ—सचु = आनंद। जलहल = (सं०—जलधर) जलाशय (आ० अ०—

१. बा०- इहै; २. शु०, बलि०-पावा; ३. शु०, बलि०-पावा; ४. बा०-चात्रिक; ५. शु०, वि० ख०, बलि०-आसहि; ६. बा०-चात्रिक; ७. बलि०-सत्यनाम; ८. बा०-औ सम; ९. बलि०-जमघट; १०. बा०-कीन्ह; ११. बा०-तरु तर छल; १२. बं०-हरिकि भक्ति जाने बिना, भव बूड़ि मुआ संसार।

आत्मानंद) उतंग = (सं०—उत्तुंग) ऊँचा, श्रेष्ठ । छागर = (सं० छागल) बकरा । हरि = अग्नि, (आ० अ०) विषयाग्नि ।

संदर्भ—पूर्ववर्ती रमैनी में सद्‌गुरु ने उपदेश किया है कि आत्मस्वरूप की जानकारी के लिए विवेक-विचार का उपयोग करो । प्रायः लोगों के हृदय में यह शंका होती है कि विवेक-विचार से सदा सुख मिलता नहीं, अतः उस माथापच्ची से क्या लाभ ?

व्याख्या—प्रस्तुत रमैनी में कबीर ने यहीं से प्रारम्भ किया है कि मानव को जो विवेक का महान् परिदान मिला है, वह गुण है । तुम उसे माथापच्ची समझकर अवगुण कहते हो, यह तुम्हारा अज्ञान है । यह तुम्हारा दुर्भाग्य है कि तुम विचार नहीं करते हो अर्थात् विवेक का उपयोग नहीं करते हो । हे जीवो ! तुम्हारा जो परमानंद स्वरूप है, उससे वियुक्त होकर तुम दुःख भोगते हो । उससे संयुक्त होकर ही तुम सुखी रह सकते हो । भला कहो, क्या जल के बिना मीन सुख पा सकता है ? यहाँ पर आत्मस्वरूप के आनंद की तुलना जल से की गयी है और जीव की मछली से ।

चातक पक्षी निकटवर्ती या आसपास के जलाशय से अपनी प्यास न बुझाकर स्वाति नक्षत्र के मेघ की ओर टकटकी लगाये हुए प्यासा रह जाता है । ऐसे ही जीव अपने हृदयस्थ परमतत्व परमानंद से अपने को तृप्त न करके भवसागर को एक विशाल जलराशि समझकर उससे अपनी सन्तुष्टि की आशा करता है और उसके लिए माला-तिलक आदि नाना प्रकार के स्वांग करता है । वह यह नहीं जानता कि यह सागर 'भव' है अर्थात् जन्म-मरण का प्रवाह है । चातक निकट भरे हुए जलाशय का उपयोग नहीं करता और मेघ की ओर अपलक दृष्टि से देखता रहता है । परन्तु मेघ बरसता नहीं । फलतः चातक निराश हो चलता है । ठीक इसी प्रकार जीव अपने भीतर स्थित आत्मस्वरूप के जलाशय से अपने को तृप्त न करके विषयरूपी मेघ से अपनी प्यास बुझाना चाहता है । फलतः उसे निराश होना पड़ता है ।

स्वात्मस्वरूप राम-नाम ही सार है और सारा संसार असार है । हे जीवो ! तुम पतंग के समान हो । जिस प्रकार पतंग उच्चस्थित प्रकाश की चकमकाहट को देखकर उसकी ओर उड़ता है और वहाँ जाकर भस्म हो जाता है, उसी प्रकार तुम विषयों के आकर्षण से लुब्ध होकर उनके भोग के लिए नाना प्रकार के प्रयास करते हो । किन्तु अन्ततोगत्वा विनाश को प्राप्त होते हो । (यहाँ 'हरि' शब्द 'अग्नि' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । अग्नि अथवा प्रकाश और पतंग के सादृश्य में तीन व्यञ्जनाएँ हैं—प्रथम, प्रकाश की चकमकाहट जिसके कारण पतंग आकृष्ट होता है, दूसरे, उसका उत्तुंग या ऊँचाई पर होना जिसके लिए पतंग को प्रयास करना पड़ता है और तीसरे वहाँ पहुँचने पर पतंग का विनष्ट होना । सादृश्य की ये तीनों व्यञ्जनाएँ जीव के विषयोन्मुख होने पर भी ठीक बैठ जाती हैं) । हे जीव ! इस प्रकार विषयों की ओर आकृष्ट होने पर तुम यम-घर का संग कर रहे हो अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में फँस रहे हो ।

स्वप्न में कोई अत्यंत अल्प सम्पत्ति भी पाता है तो उसे ऐसा लगता है कि वह बहुत बड़ी निधि पा गया। उसे यदि हृदय में रखें तो उसके लिए स्थान नहीं और यदि बाहर छिपा कर रखें तो भी भय है कि उसे कोई उठा न ले जाय। उसको न तो हृदय में ही छिपाया जा सकता है और न उसे छोड़ा ही जा सकता है। ठीक इसी प्रकार से सांसारिक उपलब्धियों की गति है। वे स्वप्नवत् प्राप्त धन के समान सारहीन हैं और उनके लुप्त होने का सदा भय बना हुआ है। हे जीव! तेरा यह लोभ झूठा है। तूने कुछ विचार न किया। जिन स्मृति ग्रन्थों की तुम दुहाई देते रहते हो, उनके द्वारा धर्म-अधर्म की जो बातें बताई गयी हैं, तुमने उसे भी न माना। परिणामस्वरूप संसाररूपी वृक्ष के नीचे तुम्हारी स्थिति उस बलि के बकरे के समान है, जिसका वृक्ष के नीचे बाँधकर वध किया जाता है। दुर्बुद्धि जीव आवागमन के संसरण में फँसा रहता है, उसको वार-पार नहीं सूझता।

साखी—अज्ञान के कारण सब अंधे के समान विचरण कर रहे हैं और तत्व का विचार नहीं करते। हमारा कहना मानते नहीं, फिर संसार के भ्रमजाल से मुक्ति किस प्रकार मिल सकती है?

———

६६

(सद्गुरु और श्रेष्ठ शिष्य प्रकरण)

सोई हित बंधु[1] मोहि मन भावै, जात कुमारग मारग लावै।
सो सयान मारग रहि जाई, करै खोज कबहूँ न भुलाई।
सो झूठा जो सत[2] कहँ तजई, गुर की दया राम को[3] भजई।
किंचित है यह[4] जगत भुलाना, धन सुत देखि भया अभिमाना॥
साखी—दिया खताना किया पयाना, मन्दिर[6] भया उजार।
मरि गये ते मरि गये, बाँचे बाँचनिहार॥

शब्दार्थ—भावै = अच्छा लगता है। किंचित = तुच्छ। दिया = दीपक। खताना = खुटाना, समाप्त होना, बुझ जाना। पयाना = प्रयाण किया, चला गया। मंदिर = (प्र० अ०) शरीर।

संदर्भ—पिछली रमैनी में सद्गुरु ने यह बतलाया है कि विषयाग्नि दुःख का हेतु है और जो अपने स्वरूप को जानने की चेष्टा नहीं करते, केवल अन्य देवी-देवताओं का स्मरण करते हैं, वे दुर्मति अथवा दुर्बुद्धि हैं। इस रमैनी में वह बतला रहे हैं कि सुख का हेतु क्या है? और सुमति या सुबुद्धि क्या है?

---

१. बा०-बंधू मोहि भावै; २. बा०-सुत, बलि०-सत्य को; ३. बा०-ते; ४. शु०-एक तेज; ५. बा०-दियन, ब० ख०-दिया खतान प्यान किया, शु०-दिया नखत तन कीन्ह पयाना, बलि०-किय पयान जिव नेक सो; ६. बा०-मंदिल।

व्याख्या—वही हितैषी और भाई के समान कल्याण करने वाला मेरे मन को अच्छा लगता है, जो कुमार्ग में जाते हुए को ठीक रास्ते पर ले आये और वही सुमति अथवा सयाना है जो ठीक मार्ग पाने पर उस पर दृढ़ या स्थिर रहता है और यदि कभी संदेह हुआ भी तो खोज की प्रवृत्ति रखता है, किन्तु गुमराह नहीं होता।

वह शिष्य झूठा है जो सत्य-सिद्धान्त को त्याग देता है और सद्गुरु का अनुसरण नहीं करता। गुरु की दया से शिष्य का राम में अनुराग हो जाता है और वह राम का भजन करता रहता है। यद्यपि जगत् तुच्छ है अर्थात् विषय निस्सार है, फिर भी अज्ञानी जीव उसमें भूला रहता है और धन तथा पुत्र को ही आत्मवत् मानता है।

साखी—प्राणरूपी दीपक बुझ गया और शरीर छोड़कर चलता बना। शरीर-रूपी मन्दिर उजाड़ हो गया। (यहाँ 'दीपक' की उपमा प्राण से दी गयी है, उसके बुझने को प्राण चले जाने से उपमित किया गया है। 'मन्दिर' की उपमा शरीर से दी गयी है)। जो मरने वाले थे, वह तो मर ही गये अर्थात् जो अज्ञानी होते हैं और विषय-तृष्णा में फँसे रहते हैं, वे ही वास्तविक मृत्यु के शिकार होते हैं। सच्चे वचने वाले (बाचनिहार) अर्थात् ज्ञानी शरीर के चले जाने पर भी बचे रहते हैं अर्थात् अमर हो जाते हैं।

टिप्पणी—कबीर ने इसी भाव को एक पद में इस प्रकार व्यक्त किया है :—

हम न मरैं मरिहै संसारा,
हमको मिला जियावनहारा।
अब न मरौं मोर मन माना,
सोइ मुवा जिन राम न जाना॥
साकत मरैं संत जन जीवैं,
भरि-भरि राम-रसायन पीवैं।
हरि मरिहैं तौ हमहूँ मरिहैं,
हरि न मरैं हम काहे को मरिहैं॥

६७

(भक्ति और भक्ति बिना दुःख प्रकरण)

देह हलाये भगति न होई, स्वांग धरे नर[१] बहु विधि जोई[२]।
धींगा[३] धींगी भलो न माना, जो[४] काहू मोहि हिरदय न जाना।

१. बा०-नल; २. शु०-सोई; ३. बलि०, बं०-धिंगा धिंगा; ४. बा०-जो कोई मोहि, वि०,बा०-जो काहू मोहि हृदया जाना।

मुख कछु और[1] हिरदय कछु आना, सपनेहु काहु मोहि नहिं जाना।
ते दुख पैहैं इह संसारा, जौ चेतहु तौ होय उबारा।
जो जन[2] गुरु की निन्दा करई, सूकर स्वान जन्म सो धरई॥
साखी—लख चौरासी जीव[3] जोनि महँ, भटकि-भटकि दुख पाव।
कहहिं कबीर जो रामहिं जानै, सो मोहि नीके भाव॥

शब्दार्थ—जोई = जो लोग। धींगा-धींगी = संघर्ष, शरारत (इस सन्दर्भ में व्यर्थ का आडम्बर)।

व्याख्या—प्रस्तुत रमैनी में कबीर ने सच्ची भक्ति, उसके बिना दुःख और गुरु में निष्ठा पर बल दिया है।

देह हिलाने (जैसे कीर्तन में नाचना, पेड़ पर उल्टा लटककर झूला झूलना तथा शरीर की नाना प्रकार की भंगिमाएँ बनाना) से सच्ची भक्ति नहीं होती। जो लोग नाना प्रकार के वेश धारण करते हैं और विविध प्रकार के ढोंग करते हैं (जैसे बाण-शय्या, पंचाग्नि-तप, ऊर्ध्वबाहु, जटा बढ़ाना, भस्म लगाना आदि) वे वास्तविक भक्ति को नहीं जानते।

जो मुझे अर्थात् सद्गुरु को (जो कि आत्मा से अभिन्न है) हृदय से नहीं जानता, उसके द्वारा किये गये नाना प्रकार के बाह्याडम्बरों को मैं ठीक नहीं समझता। बाह्याडम्बर भक्ति नहीं है। हृदय में सन्निविष्ट राम को ही जानना भक्ति है। जिसके हृदय में कुछ और है, मुख में कुछ और अर्थात् जो मुख से राम-राम कहते हैं, किन्तु हृदय में विषय-वासना और राग-द्वेष सँजोये हुए हैं, वे स्वप्न में भी सद्गुरु को नहीं जान सकते। ऐसे लोग संसार में दुःख ही दुःख भोगते हैं। यदि वे मेरे उपदेश से वास्तविक तथ्य पर ध्यान दें तो उनका उद्धार हो सकता है। जो मनुष्य गुरु की निन्दा करते हैं, वे अगले जन्म में शूकर और श्वान की योनि में पैदा होते हैं।

साखी—जो वास्तविक भक्ति को नहीं समझते और भक्ति का मार्ग बतलाने वाले गुरु की निन्दा करते हैं, वे चौरासी लाख योनियों में भटकते हुए नाना प्रकार के दुःख पाते हैं। कबीरदास कहते हैं कि वे ही मुझे अत्यन्त प्रिय हैं जो हृदयस्थ राम को जानते हैं।

टिप्पणी—कबीर के साहित्य में इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि उनका सद्गुरु से तात्पर्य किसी शरीरधारी व्यक्ति से नहीं है, प्रत्युत प्रत्यगात्मा से अभिन्न तत्व से है।

समान भाव वाले उद्धरण

देह हिलाय पिंजर किए, धरै रैनि दिन ध्यान।
तुलसी मिटै न वासना, बिना बिचारे ज्ञान॥ (तुलसी)

× ×

हर गुरु निंदक दादुर होई, जन्म सहस्र पाव तन सोई। (तुलसी)

---

१. वि० आन; २. शु०, ब०, ख०, बलि०-पावैं; ३. ब०, ख०-नर, शु०-गुरु की चित, वि०-गुरु किंचित, बलि० सद्गुरु; ४. बा०-जिया-जंतु महँ।

६८

तेहि[1] वियोग ते भया अनाथा, परि[2] निकुञ्ज वन पाव न पाथा।
वेदों[3] नकल कहै जो जानै, जो समुझै सो[4] भलो न मानै।
नटवर[5] विद्या खेल जो जानै, तेहिका[6] गुन सो ठाकुर मानै।
उहै जु खेलै सब घट माहीं, दूसर के लेखा कछु नाहीं।
भलो पोच जो औसर आवै, कैसहु कै जन पूरा पावै॥
साखी—जेहि कर सर लागे हिये, सोई जानै पीर।
लागै तौ भागै नहीं, सुख[7] सिंधु निहार कबीर॥

शब्दार्थ—पाथा = मार्ग। घट = जीव, शरीर। लेखा = गणना। पोच = बुरा। जन = भक्त। पूरा = पूर्ण। निहार = अनुभव करना, देखना।

संदर्भ—पिछली रमैनी में कबीर ने बतलाया है कि अन्तर्निष्ठ तत्व को जानने के लिए सद्‌गुरु की परम आवश्यकता है। इस रमैनी में उस आवश्यकता को वह और अधिक स्पष्ट करते हैं।

व्याख्या—हृदयस्थ राम अर्थात् आत्मा से वियुक्त होकर जीव अनाथ की भाँति हो जाता है और विषयों के कुंज-वन में पड़कर ऐसा भटकता है कि उसे स्व-धाम का रास्ता ही नहीं मिलता। जो वास्तविक तथ्य का जानकार है अर्थात् जिसे अपरोक्षा-नुभूति हुई है वह वेद को भी केवल नकल मानता है क्योंकि वेद-वाणी केवल परोक्ष का वर्णन कर पाती है। अपरोक्ष तत्व वाणी से परे है। जो इस बात को समझता है, वह वेद-वाणी को विशेष महत्व नहीं देता है।

परम चेतन श्रेष्ठ नट के समान सारे संसार में विभिन्न जीवों की भूमिकाओं का अभिनय करता रहता है। उसके खेल के रहस्य को जो जानता है, जो उसके गुण का वेत्ता स्वामी है अर्थात् सद्‌गुरु, उसी को सब श्रेष्ठ मानते हैं।

वही परमचेतन सभी जीवों में नाना प्रकार से अभिनय करता रहता है। किसी दूसरे की उसमें गणना नहीं है। अच्छा या बुरा जो अवसर मिल जाय और किसी प्रकार से भी जो भक्त सद्‌गुरु को प्राप्त कर सके, वही पूर्णता को प्राप्त कर सकता है।

साखी—जिसका हृदय सद्‌गुरु के शब्द-बाण से विंध जाता है, वह प्रभु-वियोग की पीड़ा को जान सकता है। कबीर कहते हैं कि उस शब्द-बाण के लगने पर आनन्द-सागर का अनुभव होता है और फिर वह उससे भागना नहीं चाहता है।

तुलनीय—

सद्‌गुरु मारा तान के, सब्द सुरंगी बान।
मेरा मारा फिर जियै (तौ) हाथ न गहौं कमान॥ (कबीर)

———

१. ब०, ख०-ताहि वियोगे भयो अनाथा; २. ब०, ख०-परेउ कुंज बन पाव न पंथा; ३. ब०, ख०-वेद नकल है जो कोइ जानै; ४. ब०, ख०-तो भलो जु; ५. बा०-नट वट बंद खेलै जो जानै; ६. शु०-तेहि गुन के ठाकुर भल मानै; ७. शु०-सुख के सिंधु कबीर।

६९

(कुयोगी प्रपंच प्रकरण)

ऐसा जोग न देखा भाई, भूला फिरै लिये गफिलाई।
महादेव को पंथ चलावै, ऐसो बड़ो महंत कहावै।
हाट[1] बजारै लावै तारी, काचे सिद्धहिं[2] माया प्यारी।
कब दत्तै[3] मावासी तोरी, कब सुखदेव तोपची जोरी।
नारद कब बन्दूक चलाई, व्यासदेव कब बंब बजाई।
करहिं लराई मति के मंदा, ई अतीत की[4] तरकस बंदा।
भये विरक्त लोभ मन ठाना, सोना पहिरि लजावै बाना।
घोरा घोरी कीन्ह बटोरा, गाँव पाय जस चले करोरा॥
साखी—तिय[5] सुन्दरी न सोहई, सनकादिक के साथ।
कबहुँक दाग लगावै, कारी हाँड़ी हाथ॥

शब्दार्थ—गफिलाई = भ्रम। महादेव को पंथ = शैव मत।। तारी = समाधि, ध्यान। मावासी = गढ़ या किला। तोपची = तोप चलाने वाला। बंब = दुंदुभि, डंका। अतीत = विरक्त, त्रिगुणातीत, वासनातीत। तरकस = (फा० तरकश) तूणीर। तरकस बंदा = तरकस को बाँधनेवाला, सिपाही। बाना = वेश। करोरा = करोड़पति, धनी। की = अथवा।

सन्दर्भ—इस रमैनी में कबीर ने दिखावटी योगियों की निन्दा करके यह चेतावनी दी है कि विरक्ति या वासना-त्याग सच्चे योग का साधन है। 'ऐसा योग' में बनावटी योग की व्यंजना है।

व्याख्या—हे भाई ! हमने ऐसा योग नहीं देखा कि जिसके सिद्ध होने पर भी मनुष्य भ्रम को लिए फिरता है। लोग योग के नाम पर महादेव का पंथ चलाते हैं, जिसमें नाना प्रकार का वेश बनाकर, भस्म रमाकर, त्रिशूल लिये हुए अपनी पूजा करवाते हैं और बड़े भारी महंत कहलाते हैं (यहाँ 'महंत' शब्द पर भी चोट है। वास्तविक महंत वे हैं जो चरित्र और साधना से महान् हो जाते हैं। यहाँ उन महन्तों पर व्यंग्य किया गया है, जो धन-सम्पत्ति एकत्र कर महान् बन गये हैं)। ये लोग दूसरों पर प्रभाव जमाने के लिए खुले बाजार में बैठकर समाधि लगाते हैं और लोगों को अपनी सिद्धियाँ दिखलाकर आकृष्ट करते हैं। कच्चे सिद्धों को माया ही प्रिय होती है अर्थात् वे माया में फँसे रहते हैं।

ये लोग प्रायः हाथ में परशु, भाला, त्रिशूल, तलवार, बंदूक आदि लेकर झुण्ड के झुण्ड किसी कुम्भादि मेले में अथवा तीर्थ-स्थान में लोगों पर प्रभाव जमाने के लिए

---

१. बं०-हाट बाट में लावै तारी; २. वि०, बं०, बलि०-सिद्धन; ३. ब०, ख०-देवदत्त मवासी
४. बा०-के; ५. बा०-सुन्दरी न सोभै।

जुलूस निकालते हैं। जो सचा योगी होगा, उसका इन अस्त्रों से क्या सम्बन्ध ? भला दत्तात्रेय ने कब किसी गढ़ को तोड़ा था ? शुकदेव ने कब तोप चलाने वालों को एकत्र किया था ? नारद ने कब बन्दूक चलाया था और व्यासदेव ने युद्ध के आह्वान के लिए कब दुंदुभि बजायी थी ? ये नासमझ लोग धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर बराबर संघर्ष करते रहे हैं। ये लोग वस्तुतः गुणातीत सिद्ध योगी हैं या तरकश बाँधने वाले फौजी सिपाही ? ऐसे लोग दिखावे में वैरागी बने हुए हैं, किन्तु उनके अन्तर्मन में लोभ का साम्राज्य है। वे राग के शिकार बने हुए हैं। वे बाहर से वैरागी हैं, भीतर से रागी। वे लोग स्वर्णाभूषण धारण कर संत-वेश को लज्जित करते हैं। ऐसे लोग घोडा-घोड़ी आदि सवारियों का संग्रह करते हैं और दान में कुछ गाँव पाकर, करोड़-पतियों की भाँति आचरण करते हैं।

साखी—कुछ लोग अपने साथ योगिनी स्त्री भी रखते हैं और अपने को सनकादि का अनुयायी बताते हैं। महात्माओं के साथ सुन्दरी स्त्री शोभा नहीं देती। वह कभी न कभी अवश्य दाग लगाएगी, जैसे हाथ में रखी हुई काली हाड़ी से कभी न कभी दाग अवश्य लग जाता है।

७०

बोलना कासों बोलिय[1] (रे) भाई, बोलत ही सब तत्तु नसाई।
बोलत बोलत बाढ़ विकारा, सो बोलिये जो परै विचारा।
मिलैं[2] जु संत वचन दुइ कहिए, मिलैं असंत मौन होय रहिए।
पण्डित सो बोलिये हितकारी, मूरुख ते रहिये झख मारी।
कहहिं कबीर अर्ध घट डोलै, पूरा होय विचार लै बोलै॥

शब्दार्थ—तत्तु = गुण। झखमारी = मन मारकर, 'झख' मछली को कहते हैं। यह मुहाविरा उसी से बना है, भाव है—व्यर्थ समय नष्ट करना।

संदर्भ—पूर्व रमैनी में कबीर ने यह बतलाया है कि बाहरी वेश से कोई सच्चा योगी नहीं होता है। वास्तविक योगी और ही है। जिज्ञासा होती है कि सच्चा योगी और सच्चा योग क्या है ? इस रमैनी में कबीर कहते हैं कि यह तो उसी को बतलाया जा सकता है जो हृदय से सचा जिज्ञासु हो। योग के रहस्य की जानकारी का पात्र वही है। वही उसे समझ सकता है। अन्य के साथ चर्चा करना, समय को नष्ट करना है।

व्याख्या—हे भाई ! वास्तविक ज्ञान की बात किससे कहें ? अधिकारी से कहना ही ठीक रहता है। वेशादि के अभिमानी, विषयों में आसक्त पुरुषों से अथवा जो

---

१. बा०-बोलिए; २. बा०-मिलहिं।

वास्तविक जिज्ञासा से प्रेरित नहीं हुए हैं, उनसे तत्व की बात कहना, तत्व के महत्व को ही नष्ट करना है। अधिक बोलने से वाद-वितण्डारूपी विकार ही बढ़ता है। अतएव वही बोलना चाहिए जो दूसरों के विचार में पड़े अर्थात् जिसके ग्रहण करने की उसमें क्षमता हो।

यदि कोई संत मिलता है तो उससे तत्व की बात कही जा सकती है और यदि असंत मिले तो चुप ही रहना अच्छा है। समझदार से कुछ हितकर वचन कहे जा सकते हैं। मूर्ख हितकर बात को भी ग्रहण नहीं कर सकता। अतः उसके समक्ष मौन रहना ही श्रेयस्कर है। उससे पारमार्थिक विषयों पर बात करना व्यर्थ समय नष्ट करना है। कबीर कहते हैं कि आधे भरे हुए घड़े में जल छलकता है अर्थात् अर्धज्ञानी वाचाल होता है। पूर्ण घट का जल स्थिर रहता है, उसी प्रकार पूर्ण ज्ञानी शांत होता है और यदि कभी बोलता है तो ज्ञान की ही बात करता है।

७१

सोग[1] वधावा सम कै माना, ताकि[2] बात इन्द्रहु[3] नहिं जाना।
जटा तोरि पहिरावैं सेली[4], जोग जुक्ति कै गर्व[5] दुहेली।
आसन उड़ये[6] कौन बड़ाई, जैसे काग[7] चील्ह मँड़राई।
जैसी भित्ति[8] तैसि है नारी, राजपाट सब गनै उजारी।
जस नरक[9] तस चंदन जाना, जस बाउर तस रहै सयाना।
लपसी[10] लौंग गनै एक सारा, परिहरि खाँड़ मुख फाँकै छारा॥
साखी—इहै विचार विचारते, गये बुद्धि बल चेत।
दुइ मिलि एकै होय रहा, (मैं)[11] काहि लगावों हेत॥

शब्दार्थ—बधावा = आनंद-मंगल के अवसर का गाना, मंगलाचार। सेली = सूत, ऊन या बालों की माला। दुहेली = दुःखदायी, दुस्साध्य। गनै = समझते हैं। एक सारा = एक समान। पाट = (सं० पट्ट) सिंहासन। छारा = भस्म, राख।

संदर्भ—पिछली रमैनी में सद्गुरु ने यह बतलाया है कि पण्डित का ही सत्संग करना चाहिए, मूर्ख से अलग रहना ही उत्तम है। प्रश्न उपस्थित होता है कि पण्डित है कौन ? इस रमैनी में सद्गुरु ने यह बतलाया है कि जो शास्त्र की लम्बी-चौड़ी बातें करता है, जो वाक्य-ज्ञान में अत्यन्त निपुण है, वह वस्तुतः पण्डित नहीं है। पंडित वही है जिसकी कथनी और करनी एक हो। साधारण जन उन लोगों के जाल में फँस

---

१. शु०-सोग बधावा जिन सम माना; २. बा०-ताकी; ३. बा०-इन्द्रौ; ४. बा०-सेल्ही; ५. शु०, बं०, बलि०-गर्भ; ६. शु०, ब०-उड़ाए; ७. बा०-काग; ८. बा०-भीति तैसी, बं०-भित्त; ९. ब०, बलि०-नरकहिं; १०. शु०-तपसी लोग; ११. अन्य प्रतियों में 'मैं' नहीं है।

जाते हैं, जो शास्त्र की लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं, वेश-भूषा बनाते हैं और योग की सिद्धियों से लोगों पर प्रभाव जमाते हैं, किन्तु कर्म और व्यवहार में सर्वथा तुच्छ होते हैं।

व्याख्या—ऐसे बहुत से बनावटी संत मिलते हैं जो इस बात का दावा करते हैं कि वे सुख-दुःख, हर्ष-शोक को बराबर मानते हैं, परन्तु उनके आचरण तदनुरूप नहीं होते। उनका कथन छल मात्र होता है। इस छल को इन्द्र भी नहीं समझ सकते। वे बाह्य वेश-भूषा को इतना महत्त्व देते हैं कि जटाओं को हटाकर, काटकर सेली (बालों की माला) से अपने को सजाते हैं। वे दुःसाध्य योग-साधनों पर गर्व करते हैं और इससे अपने को सिद्ध योगी दिखलाने की चेष्टा करते हैं। ('दुहेली' का अर्थ दुःसाध्य है। यह 'जोग-जुगुति' के साथ अधिक उपयुक्त होगा। कुछ लोगों ने 'दुहेली' का अर्थ 'दुहरा' किया है और उसे 'गर्व' का विशेषण माना है। किन्तु 'दुहेली' का यह अर्थ कहीं नहीं मिलता है)।

कुछ लोग अपने को बहुत बड़ा योगी और ज्ञानी सिद्ध करने के लिए आसन लगाकर प्राणायाम आदि के द्वारा आकाश में उठकर जनता के ऊपर आतंक जमाते हैं। कबीर कहते हैं कि इसमें कौन-सी विशेषता है; कौए और चील्ह स्वभावतः आकाश में मँडराते रहते हैं। कुछ लोग यह दावा करते हैं कि हम लोग नारी को वैसा ही समझते हैं जैसी मिट्टी की दीवाल; और हमारे लिए राजसिंहासन और उजाड़ स्थान समान हैं। वे यह भी दावा करते हैं कि हमारे लिए दुर्गन्धपूर्ण नरक और सुगन्धपूर्ण चन्दन समान हैं और हम बावले, मूर्ख तथा शास्त्रज्ञ पण्डित सभी को समदृष्टि से देखते हैं। वे लोग मधुर लपसी और कटु लवंग को एक समान मानने का दावा करते हैं और खाँड़ को छोड़कर लोगों के सामने राख फाँक कर यह दिखलाना चाहते हैं कि उनके लिए दोनों एक समान हैं। परन्तु, समझदार को इन बनावटी योगियों के छल में नहीं आना चाहिए। वाणी और दिखावे से सच्चे ज्ञानी की पहचान नहीं हो सकती। उसे कर्म और व्यवहार से ही पहचान सकते हैं।

साखी—साधारण जन के सामने जब ये विचार आते हैं तो उस बेचारे की बल-बुद्धि और समझ काम नहीं करती। उसकी समझ में नहीं आता कि जब शास्त्र की लम्बी-चौड़ी बातें करने वाले और सिद्धि प्रदर्शित करने वाले तथा सच्चे ज्ञानी ऊपर से एक समान दिखलाई पड़ते हैं तो किसका आदर किया जाय और किससे स्नेह किया जाय?

७२

(माया का प्रभाव प्रकरण)

नारि[१] एक संसारहि आई, माय न बाके बाप[२] न जाई।
गोड़ न मूड़ न प्रान अधारा, तामँह भरमि[३] रहा संसारा।

१. बा०-नारी; २. बा०-बापहिं।

दिना सात लौं[1] बाकी सही, बुध अदबुध अचरज का[2] कही।
बाकी बंदन करु[3] सब कोई, बुध अदबुध अचरज बड़ होई॥
साखी—मूस बिलाई एक संग, कहु कैसे रहि जाय।
संतो[4] अचरज देखहु, हस्ती सिंघहि खाय॥

शब्दार्थ—नारि = स्त्री (प्र० अ०) माया। जाई = उत्पन्न। गोड़ = पैर। बुध अदबुध = ज्ञानी-अज्ञानी। मूस = चूहा (प्र० अ०) जीव। बिलाई = बिल्ली (प्र० अ०) माया। संग = साथ, आसक्ति। हस्ती = हाथी (प्र० अ०) माया। सिंघहि = सिंह को (प्र० अ०) जीव को।

संदर्भ—पिछली रमैनी में सद्गुरु ने ज्ञानी-अज्ञानी की पहचान करके वास्तविक ज्ञानी के सत्संग का उपदेश दिया है। इस रमैनी में वह यह बतलाते हैं कि जैसे अज्ञानी से बचना आवश्यक है, वैसे ही सभी प्रकार के मोह की मूल माया से भी बचना आवश्यक है। उन्होंने माया को नारी-रूप में चित्रित किया है।

व्याख्या—संसार में एक माया रूपी नारी विद्यमान है जिसके कारण संसरण होता रहता है। उसकी न माँ का पता है न पिता का। वह माता-पिता से उत्पन्न नहीं है, अनादि है। यद्यपि उसका पृथक् विशिष्ट रूप नहीं है, उसके सिर, पैर, प्राण आदि का आधार नहीं है अर्थात् वह अरूप है, फिर भी संसार के लोग उसी में आसक्त होकर भटकते फिरते हैं। ज्ञानी और अज्ञानी सभी लोग उसे सब दिन (बराबर) सत्य समझते रहते हैं। (यहाँ 'दिना सात' काल का उपलक्षण है)। इस आश्चर्य की बात को मैं क्या कहूँ ! ज्ञानी-अज्ञानी सभी उसकी वन्दना करते हैं अर्थात् उसके प्रभाव में रहते हैं। यही बड़ा आश्चर्य है।

साखी—'मूस' को जीवात्मा का प्रतीक माना गया है और 'बिलाई' को माया का प्रतीक। एक साथ रहने का भाव है जीव का माया के प्रभाव में आना। यहाँ 'संग' शब्द में 'आसक्ति' की व्यंजना है। 'संग' का अर्थ 'साथ' भी है और 'आसक्ति' भी।

यदि जीव रूपी चूहा माया रूपी बिल्ली से हेल-मेल रखेगा तो उसके प्रभाव से बचकर रहना असंभव है। माया उसको खा जायेगी अर्थात् जीव का आध्यात्मिक विनाश अवश्यम्भावी है।

वस्तुतः सिंह बहुत बलवान होता है; परन्तु यदि उसे अपने स्वरूप और बल का ज्ञान नहीं है तो हाथी उसे नष्ट कर सकता है। ठीक यही स्थिति आत्मा और माया की है। आत्मा निसर्गतः माया से कहीं अधिक बलवान है। माया उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकती। परन्तु अपने स्वरूप और बल के अज्ञानवश वह माया के

---

१. बा०-भमरि; २. शु०, बलि०-लौ उनकी; ३. बं०, शु०-एक; ४. बा०-करै; ५. बा०-अचरज एक देखहु हो संतो।

द्वारा अधोगति को प्राप्त होता है। कबीर इसी तथ्य को इन शब्दों में कहते हैं कि इस आश्चर्य को देखो कि हाथीरूपी माया सिंह-जैसे समर्थ आत्मा को अपने वश में किये हुए है।

७३

चली जात देखी एक नारी, तर गागरि ऊपर पनिहारी।
चली जात वह बाटहिं बाटा, सोवनहार के ऊपर खाटा।
जाड़न मरै सपेदी सौरी, खसम न चीन्है घरनि[२] भौ वौरी।
साँझ सकार दिया[३] लै वारै, खसम[४] छोंडि सुमिरै[५] लगवारै।
वाही के संग[६] निसु दिन राची, पिय से बात कहै नहिं साँची।
सोवत छाँड़ि चली पिय अपना, ई दुःख अब दहुँ कहब कैसना॥

साखी—अपनी जाँघ उघारि कै, अपनी कही न जाय।
की चित जानै आपना, की मेरो जन गाय॥

शब्दार्थ—नारी = (प्र० अ०) सुरति। गगरी = घट (प्र० अ०) शरीर। पनिहारी = जल भरने वाली, (प्र० अ०) सुरति। बाटहि बाटा = षट् चक्रों के द्वारा। सोवनहार = (प्र० अ०) कुंडलिनी। खाटा = चारपाई (प्र०अ०) सुषुम्ना। सौरी = चादर, रजाई, (प्र० अ०) शरीर। खसम = स्वामी, चेतनदेव, प्रत्यगात्मा। घरनि = गृहिणी (प्र० अ०) सुरति। लगवार = जार, (प्र० अ०) सकाम मन। सकार = (सं०-सकाल) प्रातःकाल। सुमिरै = स्मरण करना। राची = अनुरक्त। दिया = दीपक (प्र० अ०) बाह्याचार।

व्याख्या—इस रमैनी में कबीर ने एक उलटवाँसी के द्वारा मानव-चित्त की दो दिशाओं की ओर संकेत करते हुए यह दिखलाया है कि जो उसमें सम्भाव्य क्षमता है, उसका उपयोग न करते हुए वह पराङ्मुखी और विषयोन्मुखी होकर अपने जन्मसिद्ध अधिकार को खो बैठता है। रमैनी के पूर्वार्ध भाग में उन्होंने चित्त की सम्भाव्य स्थिति का वर्णन किया है और उत्तरार्ध में विद्यमान स्थिति का। वस्तुतः चित्त में दो प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं—प्रायः वह (प्रवृत्ति) पराङ्मुखी रहती है, किन्तु प्रत्यङ्मुखी भी हो सकती है। उसकी ऊर्ध्वगति भी हो सकती है और अधोगति भी; वह कल्याण की ओर भी ले जा सकती है और पाप की ओर भी। व्यास ने 'पातंजल योग' के बारहवें सूत्र के भाष्य में कहा है कि—

---

१. ख०-सवरी; २. ख०, बलि०-धरणि; ३. ब०, ख०, बलि०-दीप, वि०-ज्योति; ४. ब०, बलि०, शु०, ख०-खसमहि; ५. बा०-सँवरै; ६. बा०-रस।

'चित्तनदीनामोभयतोवाहिनी । वहति कल्याणाय, वहति पापाय च । या तु कैवल्य-प्राग्भारा विवेक-विषय-निम्ना-सा-कल्याणवहा, संसार-प्राग्भाराऽविवेक विषय-निम्ना पापवहा ।'

भाव यह है कि सामान्यतया नदियाँ केवल ऊपर से नीचे की ओर बहती हैं, किन्तु चित्त रूपी नदी विचित्र है। वह ऊपर की ओर भी बह सकती है और नीचे की ओर भी। वह बाहर-भीतर दोनों ओर बहने वाली है। वह प्रत्यगात्मा की ओर भी बह सकती है और पराङ्मुखी विषयों की ओर भी। उसके पराङ्मुखी विषयों की ओर बहने का फल होता है—जन्म-मरणादि दुःख। जब वह विवेक-मार्ग की ओर ढलती हुई कैवल्य पर्यंत बहती है तो 'कल्याण वहा' कहलाती है और जब संसाराभिमुख होकर अविवेकमार्ग पर ढलती हुई भोगपर्यन्त बहती है, तब वह 'पापवहा' कहलाती है। 'मैत्री उपनिषद' में भी कहा है :—

मनस्तुद्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च ।
अशुद्धम् कामसम्पृक्तं शुद्धं काम विवर्जितम् ॥

अर्थात् मन दो प्रकार का है। उसकी दो दिशाएँ हैं—एक शुद्ध, दूसरी अशुद्ध। शुद्ध मन वह है जो काम से संयुक्त न हो और अशुद्ध वह है जो काम में लिप्त हो। ठीक यही स्थिति हमारे चित्त की है, जिसे संतों ने 'सुरति' कहा है। 'सुरति' शब्द का संतों ने कई अर्थों में प्रयोग किया है जिसका विशद विवेचन अन्यत्र किया जायगा। यहाँ उसके सामान्य अर्थ 'चित्त प्रवाह' की ओर संकेत है।

रमैनी के पूर्वार्ध में सद्गुरु सुरति की सम्भाव्य क्षमता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि हमने अपने अनुभव से एक नारी को जल भरने के लिए जाते हुए देखा है, जिसकी गगरी तो नीचे है और वह नारी ऊपर है। गगरी (शरीर) तो नीचे पड़ी हुई है और पनिहारी (सुरति) ऊपर (ब्रह्माण्ड) में बैठी हुई है। वह रास्ते-रास्ते चली जाती है और विचित्रता यह है कि खाट के ऊपर सोने वाली नहीं है, प्रत्युत सोने-वाली के ऊपर खाट है। यहाँ 'नारी' और 'पनिहारी' से तात्पर्य 'सुरति' से है। वह जब प्रत्यङ्मुखी होती है तब कुण्डलिनी का जागरण होता है और वह कुण्डलिनी षट्चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार तक पहुँचती है जो कि मस्तिष्क के ऊपर स्थित है। वहाँ पर वह अमृत-रस का पान करती है। मस्तिष्क एक औंधे कुएँ के समान है। उसी की ओर ऊपर पहुँचकर वह आत्मस्वरूप के अमृत तत्त्व का अनुभव करती है। सामान्य जन में कुण्डलिनी मूलाधार चक्र के ऊपर ढाई वलयों में प्रसुप्त अर्थात् अनुद्बुद्ध (dormant) रहती है। इसी को कबीर ने 'सोवनहार' कहा है। वह सुषुम्ना मार्ग से षट्चक्रों का भेदन करती हुई, ऊपर की ओर जाती है। सुषुम्ना-नाड़ी के नीचे 'सोवनहार' कुण्डलिनी है। यतः सुषुम्ना नाड़ी ऊपर है, अतः कबीर ने इस तथ्य को 'सोवनहार के ऊपर खाटा' द्वारा व्यक्त किया है। यहाँ तक 'सुरति' की सम्भाव्य क्षमता का परिचय दिया गया है। इसके आगे बेचारे मानव की विद्यमान स्थिति का वर्णन किया गया है।

दुःख इस बात का है कि स्वच्छ रजाई होते हुए भी मानव शीत से मर रहा है। यहाँ 'स्वच्छ रजाई' मानव तन का प्रतीक है जिसमें रहते हुए वह ज्ञान-प्रकाश का लाभ पा सकता है। 'जाड़े' में 'जड़ता' की व्यंजना है। अपने पास साधन होते हुए भी बेचारा मानव 'जड़ता-जाड़' से आक्रान्त है। तुलसीदास ने भी कहा है—

'जड़ता जाड़ विषम डर लागा, गयउ न मज्जन पाव अभागा।'

'सुरति' रूपी गृहिणी ऐसी बावली हो गयी है कि वह अपने प्रत्यगात्म रूपी चेतन देव को नहीं पहचानती। उस ओर वह नहीं जाती। सायं-प्रातः अर्थात् निरन्तर बाह्या-चार रूपी दीपक जलाकर, आत्म-प्रवंचना करती हुई अपने वास्तविक प्रियतम को छोड़कर विषय रूपी जार में आसक्त रहती है। शारीरिक क्रिया से तो वह पूजा-पाठ में लगी रहती है, परन्तु मन से विषयों में रमण करती हुई भी, अपने प्रियतम से इस तथ्य को छिपाती रहती है। वह समझती है कि हम अपने अन्तरात्मा को भुलावा दे सकते हैं। प्रत्यगात्मा जो सदा प्रबुद्ध है, उसको वह सोता हुआ समझकर, उसे छोड़कर विषयों की ओर जाती है। यह मार्मिक दुःख कहो किससे कहूँ?

साखी—अपना पर्दाफाश अपने से नहीं किया जाता अर्थात् अपने गुप्त दोषों को स्वयं कोई खोलकर नहीं कहता। उसे या तो अपना हृदय जानता है या मेरा कोई सच्चा अनुयायी ही उसे बतला सकता है।

७४

(मुक्त और भ्रान्त की स्थिति का प्रकरण)

तहिया गुप्त थूल[1] नहिं काया, ताके[2] न सोक ताकि पै माया।
कँवलपत्र तरँग[3] एक माहीं, संगै रहै लिप्त पै नाहीं।
आस[4] ओस अंड मँह रहई, अगनित अंड न कोई कहई।
निराधार अधार लै जानी, राम[5] नाम लै उचरी बानी।
धरम कहै सब पानी अहई, जातीके[6] मन बानी[7] अहई।
ढोर पतंग सरे घरिआरा, तेहि पानी सब करैं अचारा।
फंद छोड़ि जे बाहर होई, बहुरि पंथ नहिं जोहै सोई॥
साखी—भरम क[8] बाँधल ई जगत, कोई न करै विचार।
हरि[9] कि भगति जाने बिना, भव बूड़ि मुवा संसार॥

शब्दार्थ—गुप्त = कारण और सूक्ष्म शरीर। थूल = स्थूल। आस = आशा, तृष्णा। अंड = (प्र० अ०) शरीर। ढोर = पशु। जोहै = खोजना।

---

१. व०, शु०, बलि०, ख०-स्थूल; २. बा०-ताके सोग न ताके माया; ३. बलि०-लहर; ४. बलि०-ओसक आस; ५. बलि०-ररंकार ध्वनि; ६. बा०-जांत के; ७. बा०-पानी; ८. बा०-कै; ९. बा०-हरि की भक्ति।

व्याख्या—इस रमैनी में सद्गुरु ने आत्मा की जीव-भाव के पूर्व की स्थिति और जीव-भाव के पश्चात् की स्थिति का वर्णन किया है। उन्होंने पहले यह दिखलाया है कि जन्म से पूर्व आत्मा जब अपने शुद्ध स्वरूप में रहता है, तब उसका न कोई कारण, न सूक्ष्म और न स्थूल शरीर होता है। वह शोक से मुक्त रहता है, किन्तु माया-शक्ति विद्यमान रहती है। उसके विद्यमान रहते हुए भी वह उसके वशीभूत नहां होता, जैसे कमल-पत्र जल में रहते हुए भी उससे निर्लिप्त रहता है।

शरीर मिलने पर ही आशा अर्थात् तृष्णा रूपी ओस से प्रभावित होकर वह जीव बनता है। यहाँ 'ओस' शब्द बहुत व्यञ्जक है। जैसे, ओस चाटने से प्यास बुझने की अपेक्षा बढ़ती ही जाती है, उसी प्रकार विषयों की प्राप्ति से तृष्णा घटने की अपेक्षा बढ़ती जाती है। 'ओस' में दूसरी व्यंजना यह है कि स्वरूप के ज्ञान की ओर आकर्षित होना सुरसरि के समान है और विषयों की तृष्णा 'ओस' चाटने के समान है। गोस्वामी तुलसीदास ने विनयपत्रिका में कहा है—

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम-भगति-सुरसरिता, आस करत ओसकन की।
[पद संख्या–९०]

तृष्णा के कारण अगणित शरीर या योनियाँ होती हैं जिनका कोई वर्णन नहीं कर सकता। सारी सृष्टि और जीवों का आधार वह निराधार परमतत्व है जो स्वयं किसी अन्य आधार पर आश्रित नहीं है। वह आधार कौन है? वाणी उस आधार को बतलाने के लिए राम-नाम का उच्चारण करती है अर्थात् राम या परब्रह्म परमात्मा ही सबका आधार है।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जब माया और तृष्णाग्रस्त जीव, सबका आधार परमतत्व है, तब इनके दोषों और मलिनता से वह भी दूषित और मलिन हो जायगा? परन्तु जिस प्रकार जल में नाना प्रकार का मैल प्रविष्ट होता है, किन्तु वह जल सबको शुद्ध कर देता है, स्वयं अशुद्ध नहीं होता, उसी प्रकार वह परमतत्व माया और जीव के दोषों से दूषित नहीं होता। धर्मशास्त्र कहता है कि पानी की यह विशेषता है कि वह सारे मैल को शुद्ध करता है, वही सबका शुद्ध आधार है और सभी लोग वे चाहे उच्च जाति के हों या निम्न जाति के, पानी के प्रति यही भावना रखते हैं। पशु-पतंग और घड़ियाल सभी उसी जल में सड़ते हैं, परन्तु वह अशुद्ध नहीं माना जाता। उसी जल से लोग अपना आचार-व्यवहार करते हैं। ठीक यही स्थिति उस आधार की है जो सारी सृष्टि के दोषों से भी कभी दूषित नहीं होता है।

जो माया रूपी बन्धन छोड़कर भव-सागर से बाहर होता है, वह सभी पंथों से परे हो जाता है। उसे किसी पंथ की आकांक्षा नहीं रहती।

साखी—संसार के लोग भ्रम के बंधन में बँधे हुए विचार नहीं कर पाते, तथ्य को नहीं समझ पाते। वह तर्क के द्वारा नहीं जाना जा सकता। उसको जानने का एक मात्र आधार है–भक्ति। भक्ति के बिना संसार के सभी लोग भव-सागर में डूब मरते हैं।

———

७५

(परम प्रभु शरणागति प्रकरण)

तेहि साहब के लागहु साथा, दुइ दुख मेटिके रहहु[1] सनाथा।
दसरथ कुल अवतरि नहीं आया, नहिं लंकाके राव सताया।
नहीं देवकीके गर्भहिं आया, नहीं जसोदै गोद खेलाया।
प्रिथिमी रवन[2] दवन नहिं करिया, पैठि[3] पताल नहीं बलि छलिया।
नहीं बलिराजसे माँड़ी[4] रारी, नहिं हरिनाकुस बधल पछारी।
होय[5] वराह धरनि नहिं धरिया, छत्री मारि निछत्र[6] न करिया।
नहिं गोवरधन कर गहि धरिया, नहिं ग्वालन संग बन बन फिरिया।
गण्डक सालिगराम न सीला[7], मच्छ कच्छ होय जल नहीं हीला[8]।
द्वारावती सरीर न छाड़ा, लै जगनाथ पिंड नहिं गाड़ा॥

साखी—कहैं कबीर पुकारि कै, वोहि पंथै मति भूल।
जेहि राखेहु अनुमान कै, सो थूल नहीं अस्थूल॥

शब्दार्थ—सनाथा = कृतकृत्य। दुइ दुख = जन्म-मरण। राव = राजा (रावण)। प्रिथिमी = पृथ्वी। रवन = रमण, विहार। दवन = दमन, निग्रह। माँड़ी = रचा। रारी = युद्ध। बधल = वध किया। पछारी = परास्त करके। बलिराज = बालि। हीला = हेलना, जल में प्रवेश करना, क्रीड़ा करना। थूल = स्थूल। अस्थूल = सूक्ष्म।

संदर्भ—इस रमैनी में कबीर ने यह प्रतिपादित किया है कि अवतार के रूप में सगुण ईश्वर की उपासना निम्न कोटि की है। वस्तुतः परमात्मा सबका सार है और उसकी किसी विशेष रूप में कल्पना करके उपासना करना अवांच्छनीय है।

व्याख्या—हे जीवों! परम सत्य के साथ लगो अर्थात् उसकी भक्ति करो और जन्म-मरण के दुःख से छूटकर स्वयं स्वामीवान् होकर कृतकृत्य हो जाओ। नर-रूप में अथवा किसी अन्य रूप में उसकी उपासना व्यर्थ है। परमात्मा एक रूप में ससीम होकर नहीं रहता। उसने दशरथ के कुल में राम के रूप में अवतार नहीं लिया और न परमात्मा ने लंका के राजा रावण को ही सताया। यह कार्य तो राजा रामचन्द्र का था।

परमप्रभु देवकी के गर्भ में अवतरित नहीं हुए। उन्हें यशोदा ने गोद में नहीं खिलाया था। भगवान् ने पृथ्वी पर न तो रमण या क्रीड़ा की और न दुष्टों का दलन किया। ये सभी कार्य मानव कृष्ण और राम के हैं। ईश्वर ने बलि को छल करके पाताल नहीं भेजा। राजा बालि से प्रभु ने कभी युद्ध नहीं ठाना और न हिरण्यकशिपु को पछाड़कर बध किया। बाराह के रूप में उन्होंने पृथ्वी को नहीं उठाया और न

---

१. अन्य प्रतियोंमें-होहु; २. ब०, बं०, वि०-रमन धमनः ३. बा०-पैठी; ४. अन्य प्रतियों में-माँडल; ५. बा० ब्राह रूप धरनी ६. बि०, ख०-निछत्रि; ७. बा०-कूला; ८. बा०-डोला।

परशुराम के रूप में क्षत्रियों का विध्वंस कर पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन ही किया। उन्होंने कभी हाथ से गोवर्धन पर्वत नहीं उठाया और न गोप-गोपियों के साथ जंगलों में घूमे। वह कभी गण्डक नदी में पत्थर बनकर शालिग्राम रूप में प्रकट नहीं हुए और न मत्स्य या कच्छप होकर जल में प्रवेश किया। द्वारिका में प्रभु ने शरीर नहीं छोड़ा, कृष्ण ने छोड़ा। प्रभु ने जगन्नाथपुरी में अपने पिंड को स्थापित नहीं किया। ये सब अधिक से अधिक प्रभु के ऐश्वर्य और गरिमा के प्रतीक हो सकते हैं। असीम प्रभु ससीम होकर इस प्रकार अवतरित नहीं होता।

साखी—कबीर स्पष्ट रूप से यह कहते हैं कि इन भ्रांत पंथों में तुम मत भूलो। तुमने जो व्यर्थ की कल्पना करके स्थूल रूप में प्रभु को समझ रखा है, वह स्थूल नहीं सूक्ष्म है अर्थात् मायिक स्वरूप न होकर, वह अव्यक्त-अचिन्त्य स्वरूप है।

टिप्पणी—कबीर ने अन्यत्र भी कहा है—

दस अवतार ईसरी माया, करता कै जिन पूजा।
कहँहि कबीर सुनो हो संतो, उपजै खपै सो दूजा॥

———

७६

(माया से बचने का उपाय प्रकरण)

माया मोह सकल[1] संसारा, इहै विचार न काहु विचारा।
माया मोह कठिन है[2] फंदा, होय[3] विवेकी सो जन बंदा।
राम नाम लै बेरा धारा, सो तौ लै संसारहि पारा।
साखी—राम नाम अति दुर्लभ, औरहु[4] ते नहिं काम।
आदि अंत औ जुग जुग, रामहि ते संग्राम॥

शब्दार्थ—बेरा = बेड़ा, जहाज।

व्याख्या—समस्त जगत् माया का खेल है और मोह का मूल है। खेद यह है कि इस तत्व-ज्ञान पर कोई ध्यान नहीं देता। माया और मोह विकट पाश हैं। जो इसका विवेक रखता है, वही सच्चा भक्त है। जिन्होंने सार शब्द रूपी जहाज के आश्रय को धारण किया है, वे भवसागर से पार हो गये।

साखी—परमात्मा का नाम अत्यन्त दुर्लभ है। उससे भिन्न मायिक जगत् से कुछ सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। जन्म से मरण तक और युग-युग में राम रूपी लक्ष्य में ही अपनी मनोवृत्ति रूपी बाण का संधान करते रहो।

टिप्पणी—यहाँ 'संग्राम' का भाव है—चित्त-बाण को राम-नामके लक्ष्य में सदा

---

१. बा०-कठिन; २. ब० ख०-जग; ३. बलि०, शु०-करे विवेक; ४. ब०, ख०-औरन।

लगाए रहना। 'मुंडकोपनिषद्' में ठीक इसी भाव को एक मन्त्र में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥ २।४॥

अर्थात् ओम् धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म लक्ष्य है। सावधान होकर उस लक्ष्य को वेधना चाहिए और उससे उसी प्रकार तन्मय हो जाना चाहिए, जैसे बाण अपने लक्ष्य में तन्मय हो जाता है।

७७

(परम प्रभु और माया में एकता प्रकरण)

एकै काल सकल संसारा, एक नाम है जगत पियारा।
त्रिया पुरुष कछु कहल[1] न जाई, सर्व रूप जग रहा समाई।
रूप अरूप[2] जाय नहिं बोली, हलुका गरुआ जाय न तोली।
भूख न तृषा[3] धूप नहिं छाँहीं, सुख दुःख रहित रहै तेहि माँहीं॥

साखी—अगम[4] अपार रूप बहु, औ[5] अरूप बहु भाय।
बहुत[6] ध्यान कै जोहिया, नहिं तेहि सँख्या आय॥

शब्दार्थ—त्रिया = स्त्री। हलुका = सूक्ष्म। गरुआ = भारी। तृषा = प्यास। अरूप = रूपहीन। जोहिया = खोजा। आय = है।

सन्दर्भ—इस रमैनी में कबीरदास ने परम तत्व की सर्वव्यापकता, सब रूपों में उसकी अभिव्यक्ति और फिर भी सब रूपों से उसका रहित होना बतलाया है।

व्याख्या—एक ही काल पुरुष सारे संसार में छा रहा है। वही एक नाम (सार शब्द या आत्मस्वरूप) सारे संसार को प्रिय है। प्रश्न हो सकता है कि यदि वह सबमें व्याप्त है तो वह स्त्री-पुरुष दोनों ही होगा। किन्तु स्त्री-पुरुष शरीर में भेद हैं। आत्मस्वरूप अलिंग है, उसे न स्त्री कह सकते हैं, न पुरुष। वह सब रूपों में संसार में व्याप्त है। उसे न साकार कह सकते हैं न निराकार; न उसका कोई परिमाण है जिससे उसे हलका या भारी कहा जाय। उसमें न भूख है, न प्यास; न धूप है, न छाँह। वह सुख-दुःख दोनों से मुक्त होते हुए उन सबमें विद्यमान है। इस पंक्ति में 'तिहि' सर्वनाम सीधे ढंग से 'सुख-दुःख' के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। किन्तु यदि

---

१. बा०-कथो; २. अन्य प्रतियों में-निरूप; ३. बलि०-प्यास; ४. बा०-अपरमपार रूप मगु, ध्यान रूप यहु आहि, बलि०, सत्य नाम अति दुर्लभ, औरो ते नहिं काम; ५. द०-नहिं त्यहि संख्या आहि; ६. बा०-कहैं कबीर पुकारिकै, अद्बुद कहिए ताहि।

'तिहि' सर्वनाम को आत्मा के लिए माना जाय तो अर्थ होगा—वह अपने स्वरूप में ही रहता है।

साखी—वह बुद्धि और मन द्वारा अज्ञेय है, असीम और अनन्त है। अरूप होते हुए भी वह अनेक रूप से भासता है। बहुत ध्यान से खोजने पर भी उसकी संख्या का पता नहीं चलता।

तुलनीय—

एक कहूँ तो है नहीं, दोय कहूँ तो गार।
है जैसा तैसा रहै, कहँहि कबीर बिचार॥
—कबीर

———

७८

(देह के हिस्सेदार और स्वापराध प्रकरण)

मानुष जन्म चूके[1] जग माँझी, एहि तन केर बहुत हैं साँझी।
तात जननी कहै पुत्र[2] हमारा, स्वारथ लागि कीन्ह प्रतिपाला।
कामिनि कहै मोर पिय आही[3], बाघिनि रूप गरासन चाही[4]।
पुत्र[5] कलत्र रहैं लौ लाए, जम्बुक[6] नित्य रहैं मुँह बाए।
काग गीध दोउ मरन बिचारैं, सूकर स्वान दोउ पंथ निहारैं।
अगिनि कहै मैं ई तन जारौं, पानि[7] कहै मैं जरत उबारौं।
धरती कहै मोहिं मिलि जाई, पौन कहै सँग लेहुँ उड़ाई।
जेहि[8] घरको घर कहै गँवारा, सो बेरी[9] है गले तुम्हारा।
सो तन तुम आपन करि जानी, विषय रूप[10] भूले अग्यानी।
साखी—एतने तनके साझिया, जन्मौ भरि दुख पाव।
चेतत नाहीं बावरा[11], मोर मोर गोहराव॥

शब्दार्थ—साझी = हिस्सेदार। कामिनि = आसक्त नारी। लौ=आशा, कामना, ध्यान या समाधि, प्रेम, आसक्ति। जम्बुक = सियार। गरासन = ग्रास कर लेना, खा लेना। तात = पिता। गँवारा = अज्ञानी। बेरी = बेड़ी, बंधन। विषय = (i) विस् धातु—विषिनोति (आकृष्ट करना) मनः इति विषयः (ii) शी धातु = पदार्थ। गोहराव = पुकारता है।

व्याख्या—इस रमैनी में मोह के मूल देहाभिमान पर सद्गुरु ने ध्यान आकृष्ट किया है। एक पूर्ववर्ती रमैनीमें वह कह चुके हैं कि मनुष्य शरीर ही एक ऐसी योनि

---

१. अन्य प्रतियों में—चुकेहु अपराधी; २. बं०-हमरो बाला; ३. ब० ख०-अहई; ४. ब०, ख०-चहई; ५. बलि०-नाती पुत्र; ६. बा०-जमु की नाई. ७. ब०. ख०-सो न करहु, बं०-सो न कहै; ८. शु०, ब०, ख०-तेहि; ९. बलि०-बैरी; १०. बं०, शु० बलि०-स्वरूप; ११. ब०, ख० शु०-मुग्ध नर।

है जिसमें विवेक उत्पन्न हो सकता है और मनुष्य परमार्थ को प्राप्त कर सकता है। यहाँ वह बतलाते हैं कि मनुष्य जन्म पाकर भी वह अज्ञानवश चूक जाता है। यह मानव जीवन की परम विडम्बना है। वह शरीरको आत्मा समझता है, उसमें नित्य अभिमान करता है, उसी को 'अहं' मानता है। वह यह नहीं देखता कि जिसको वह 'मैं-मेरा' कह रहा है, उसके बहुत हिस्सेदार हैं।

माता-पिता कहते हैं कि यह मेरा पुत्र है। इस शरीर पर वे अपना अधिकार जनाते हैं और स्वार्थवश ही अपने पुत्र का लालन-पालन करते हैं। कामिनी (आसक्त नारी) कहती है कि यह मेरा प्रियतम है। जैसे व्यांघ्रिणी अपने शिकार को पूरे तौर से खा जाती है, उसी प्रकार वह अपने तथाकथित प्रियतम के धन और शक्ति का नाश कर डालती है। उसके पुत्र और पत्नी उसके प्रति नाना प्रकार की आशा लगाये रहते हैं। सियार नित्य प्रतीक्षा करते रहते हैं कि वह कब मरेगा, कब हमें अच्छा खाद्य मिलेगा। कौए और गिद्ध भी उसके मरण की बाट जोहते रहते हैं, शूकर और कुत्ते भी उसके शव की प्रतीक्षा किया करते हैं।

वे महाभूत भी जिनके द्वारा यह शरीर बना हुआ है, इस बात की प्रतीक्षा करते रहते हैं कि उन्होंने मानव-तन को जो अंश दिया था, वह उनको वापस मिल जाय। आग कहती है इस तन पर सबसे अधिक अधिकार मेरा है। अतः मैं इसे जलाकर अपने में मिला लूँगी। जल कहता है कि मेरा कार्य शीतल करना और बुझाना है। मैं जलते हुए को भी बुझा सकता हूँ। पृथ्वी कहती है सारा स्थूल अंग मेरा दिया हुआ है। अतः इसका शरीर मुझमें मिल जाना चाहिए। पवन कहता है कि जीवन भर तो मैंने ही प्राण द्वारा इसका संचार किया, अतः मैं इसे उड़ाकर ले जाऊँगा।

जिस शरीर रुपी घर को अज्ञानी जीव अपना कहता है और जिसपर अभिमान करता है, वह वस्तुतः उसके लिए बन्धन मात्र है। ऐसा तन जिसमें अपना कुछ भी नहीं है, उसको अज्ञानी अपना समझता है और जो उसके लिए आकर्षक विषय रूप हो गया उसमें आसक्त रहता है। वाचस्पति मिश्र ने 'विषय' की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई है—

'विषिनोति मनः इति विषयः' अर्थात् जो मन को बाँध ले या आकृष्ट करे, वह विषय है। मानव का सबसे बड़ा विषय उसका शरीर है। इसी में वह भूला रहता है।

साखी—जिस शरीर को मनुष्य केवल अपना समझता है, उसके इतने साझीदार हैं और उसके (शरीर) द्वारा वह अज्ञानवश जन्म-भर दुःख भोगता रहता है। शरीर से प्राप्त सुख स्पर्शजन्य होते हैं—नाक, कान, आँख, जिह्वा और चर्म सभी के द्वारा स्पर्श से सुख मिलता है। किन्तु स्पर्शजन्य सुख केवल दुःख की योनि हैं। इस संदर्भ में गीता का यह वाक्य स्मरणीय है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥ (५,२२)

अर्थात् संस्पर्श द्वारा प्राप्त भोग केवल दुःख की योनि है। हे कुन्ती पुत्र अर्जुन ! इन सब भोगों का आदि और अन्त है अर्थात् ये क्षणिक हैं। जो क्षणिक होता है, वह सुख नहीं, दुःख की योनि होता है। बुधजन उसमें रमण नहीं करते।

बावला जीव यह सब देखते हुए भी चेतता नहीं है और अन्त तक देह का अभिमान नहीं छोड़ता, बराबर 'मेरा-मेरा' चिल्लाता रहता है।

टिप्पणी—देह के क्षणिकत्व को प्राचीन शैली महाभूतों में उसके विलीन हो जाने के द्वारा सिद्ध करती है, जो कि सर्वथा सत्य है। आधुनिक विज्ञान ने इसके क्षणिकत्व और निरर्थकत्व को बहुत ही सुन्दर रीति से इस प्रकार दर्शाया है—

Man has (1) Suger enough to sweeten a hundred cups of coffee.

(2) Lime enough to whitewash a small hen house.

(3) Iron enough for one inch nail.

(4) Magnesium enough for half a dozen flash pictures.

(5) Potassium enough to explode a toy cannon.

(6) Sulphur enough to rid a dog of flees.

(7) Phosphorus enough to make 20 boxes of matcls.

(8) Fat enough to make a dozen bars of soap.

(9) Copper enough to match a well-worn copper cent.

(10) Water enough for junior's bath.

Commercially, the whole collection would be valued at about one dollar or five to six rupees.

अर्थात् मनुष्य के भीतर—

(१) इतनी चीनी होती है जिससे कि काफी के सौ प्याले मीठे किये जा सकते हैं।

(२) इतना चूना होता है कि छोटे से मुर्गी के दर्बे की सफेदी की जा सकती है।

(३) इतना लोहा होता है जिससे एक इंच की काँटी बन सकती है।

(४) इतना मैग्नीशियम होता है जिसके द्वारा आधे दर्जन फ्लैश फोटो लिए जा सकते हैं।

(५) इतना पोटैशियम होता है जिससे एक खिलौना-तोप का विस्फोट किया जा सकता है।

(६) इतनी गंधक होती है कि जिससे एक कुत्ते के पिस्सू मारे जा सकते हैं।

(७) इतना फ़ासफ़ोरस होता है कि जिससे दियासलाई के बीस बक्स बन सकते हैं।

(८) इतनी चर्बी होती है कि जिससे साबुन के एक दर्जन डंडे बन सकते हैं।

(९) इतना ताँबा होता है जिससे एक घिसा पैसा बन सकता है।

(१०) इतना पानी होता है जिससे एक छोटा बच्चा स्नान कर सकता है।

सामूहिक रूप से इस शरीर का मूल्य एक डालर या पाँच-छह रुपये होगा।

७९

(विषय वासना प्रकरण)

बढ़वत बढ़ी घटावत छोटी, परखत खर परखावत खोटी।
केतिक कहौं कहाँ लगि कही, औरौ कहौं परै जो सही।
कहल[1] बिना मोहि रहल न जाई, बेढ़ई[2] ले ले कूकुर खाई॥
साखी– खाते खाते जुग गया, अजहुँ न चेतै[3] आय।
कहहिं कबीर पुकारिकै, ई[4] जिव जरतहि जाय॥

शब्दार्थ—परखत = देखने में। खर = बढ़िया, अच्छा। खोटी = हेय। केतिक= कितनी बार। बेढ़ई = एक प्रकार की रोटी या कचौड़ी जिसके भीतर पोस्ता का दाना अथवा पीठी और अन्य गरम मसाले भरे जाते हैं। यह स्वादिष्ट, किन्तु अपकारक होती है।

व्याख्या—मोह और विषय भोग की वासना एक ऐसी प्रवृत्ति है कि मनुष्य उधर जितना ही झुकता है, वह उतनी ही बढ़ती जाती है और जितना विषय-भोग कम करता है, उतनी ही वासना भी कम होती जाती है। बार-बार भोग करने से वासना अधिक प्रबल होती जाती है, अभ्यास से वह अधिक दृढ़ होती जाती है और जितना ही उसका अनाभ्यास हो अर्थात् भोग की ओर प्रवृत्ति कम की जाय, उतनी ही वह दुर्बल और क्षीण होकर घटती जाती है।

विषय आपाततः देखने में बहुत ही मोहक और मादक होता है, परन्तु सद्गुरु द्वारा परीक्षा होने पर वह बहुत ही खोटा और हेय प्रतीत होता है। मैं कितनी बार कहूँ ! कहने की एक सीमा होती है। फिर भी यदि कहने का कुछ अच्छा परिणाम निकले तो पुनः कहने को तैयार हूँ। क्या करूँ, बिना कहे मुझसे रहा भी नहीं जाता। जैसे कुत्ता बेढ़ई (कचौड़ी) को स्वादिष्ट समझकर खाता है, किन्तु वह अपकारक सिद्ध होता है, वैसे ही जीव विषय को स्वादिष्ट समझ कर भोग करता रहता है, किन्तु अन्त में दुःख ही भोगता है।

साखी—जीव नाना प्रकार की योनियोंमें विषय भोगता आया है। ये भोग करते हुए कितने युग बीत गये, किन्तु अब भी उसका तथ्य की ओर ध्यान नहीं जाता। कबीर पुकार कर कहते हैं कि ऐसा जीव परिताप का ही भागी होगा।

टिप्पणी—इस रमैनी में सद्गुरु के कहने का भाव यह है कि जीव विषयों को प्रिय समझकर उनकी ओर दौड़ता है। वह जितना ही उनका भोग करता है, उतनी ही उसकी वासना प्रबल होती जाती है। जितनी वासना प्रबल होती जाती है, उतना ही पुनः जन्म लेकर उन विषयों का जीव भोग करता है। जीव को समझना यही है कि प्रेय श्रेय नहीं है। बेचारा जीव प्रेय को ही श्रेय समझता है। इसीलिए विषयों के

१. बा०-कहले; २. बा० बेरही; ३. बा०-बहुरि; ४. बा०-जीव अचेतै।

प्रियत्व के कारण उनकी ओर आकृष्ट होता है। यदि वह समझ जाय कि श्रेय कुछ और है, प्रेय और है तो वह विषयों की ओर आकृष्ट न हो। कठोपनिषद् में यमराज ने नचिकेता को बहुत सुन्दर ढंग से समझाया है :—

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधुर्भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते॥
(१-२-१)

अर्थात् श्रेय कुछ और है, प्रेय और ही है। वे दोनों विभिन्न प्रयोजन वाले होते हुए ही पुरुष को प्रवृत्त करते हैं। उन दोनों में से श्रेय के ग्रहण करने वाले का कल्याण होता है और जो प्रेय का वरण करता है, वह पुरुषार्थ से पतित हो जाता है।

बेचारा जीव, देह से तादात्म्य के कारण अज्ञानवश प्रेय को ही श्रेय समझता है। यदि वह यह जान जाय कि उसका श्रेय, प्रेय से भिन्न है, तभी वह विषयों के आकर्षण से बच सकता है।

———

८०

(सद्गुरु बिना दुराशा प्रकरण)

बहुतक साहस करु जिय अपना, तेहि साहब सों भेंट न सपना।
खरा खोट जिन नहिं परखाया, चहत लाभ तिन्ह मूल गमाया।
समुझि न परै[1] पातरी मोटी, ओछी गाँठि[2] सबै भौ खोटी।
कहै कबीर केहिं देहौ खोरी, जब चलिहौ झिन[3] आसा तोरी॥
साखी—झीं झीं आसा मँह लगे, ज्ञानी पण्डित दास।
पार न पावहिं बापुरे, भरमत फिरहिं उदास॥

शब्दार्थ—जिय = हृदय। साहब = स्वामी या प्रभु। खरा = सत्य। खोट = मिथ्या। पातरी = सूक्ष्म। मोटी = स्थूल। गाँठि = ग्रंथि। खोरी = दोष। झिन = सूक्ष्म। झीं झीं = सूक्ष्म, सूक्ष्म।

व्याख्या—हे जीवो! अपने हृदय में तुम बहुत साहस करते हो, नाना प्रकार की साधनाओं का अवलम्बन करते हो, व्रत-यम-नियम-तप आदि का आश्रय ग्रहण करते हो; परन्तु फिर भी तुम्हारा प्रभु से स्वप्न में भी मिलन नहीं हो पाता। इसका कारण यह है कि नाना प्रकार की कष्टदायक, कठिन साधनाओं से स्थूल माया के ऊपर तो विजय प्राप्त हो सकती है, परन्तु तुम्हारे भीतर जो नाना प्रकार की सूक्ष्म वासनाएँ छिपी पड़ी हैं, उन पर इन साधनाओं से तुम विजय नहीं प्राप्त कर सकते। जो स्थूल वासनाएँ हैं, उनको तो तुम स्वयं भी समझ सकते हो, परन्तु तुम्हारे अन्तस्तम चित्त

---

१. ब०, ख०-परलि; २. बं० गाढ़ी सब; ३. बा०-झि झि।

में जो सूक्ष्म वासनाएँ प्रसुप्त हैं, उनकी परख कोई सद्गुरु ही कर सकता है। तुम्हारी असफलता का कारण यही है कि तुमने खरा-खोटा अर्थात् सत्य-असत्य की परख किसी सद्गुरु द्वारा नहीं करवाई। यदि तुम्हें कोई सद्गुरु मिला होता तो तुम्हारे चित्त में निहित गुप्त वासनाओं को परखकर यह बतलाता कि उनपर किस प्रकार विजय प्राप्त करके साधना-पथ में अग्रसर होना है। सत्य और असत्य, सूक्ष्म और स्थूल का भेद न जानने से जो परम पुरुषार्थ रूपी लाभ चाहते हैं, वे मूल भी खो बैठते हैं। यहाँ पर एक सूक्ष्म रूपक का संकेत है। जैसे कोई हीरा-माणिक्य आदि में धन लगाकर उन्हें खरीदकर लाभ प्राप्त करना चाहता हो, परन्तु उसको कौन-सा रत्न खरा है, कौन खोटा है, इसकी परख न हो तो वह लाभ के बदले अपना मूल भी गँवा देता है। उसे चाहिए कि किसी अच्छे रत्न-पारखी से रत्न को परखवा ले। ठीक इसी प्रकार कुछ साधक नाना प्रकार के आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंद, तप, जप आदि कठिन साधनाओं को करके परम लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं। परन्तु उनको स्थूल और सूक्ष्म वासनाओं की परख नहीं होती है। इसीलिए वे स्थूल वासनाओं पर भले ही विजय प्राप्त कर लें, किन्तु सूक्ष्म वासनाएँ उनके चित्त में पूर्ववत् ही दबी पड़ी रहती हैं और वे प्रभु के मिलन में व्यवधान बन जाती हैं। परिणाम यह होता है कि नाना प्रकार के नियम-व्रत आदि जो साधक ने मूलधन के रूप में लगाया था, उनसे उनको लक्ष्य की प्राप्ति न हुई, केवल व्यर्थ यातनाओं का भोग करना पड़ा। बिना सद्गुरु की सहायता के स्थूल और सूक्ष्म माया अथवा वासना का भेद साधक की समझ में नहीं आता। मोटी अर्थात् स्थूल माया जैसे पुत्र-कलत्र, धन-धाम, आदि का तो वह त्याग कर बैठता है, किन्तु सूक्ष्म माया अथवा वासना; जैसे—अहंकार, तृष्णा, अहम्मन्यता आदि उसके भीतर दबी पड़ी रहती हैं और उनका पता भी नहीं चलता। सद्गुरु उन प्रसुप्त वासनाओं को उभाड़ कर, उनका अनुभव करा कर नियन्त्रण करा देता है। साधक के भीतर जो चित्-जड़ की ग्रंथि है, जिसके द्वारा वह स्थूल, सूक्ष्म, कारण देह से अपना तादात्म्य अनुभव करता है; उसी ओछी अर्थात् क्षुद्र ग्रंथि के कारण सारी साधनाएँ व्यर्थ हो जाती हैं। स्थूल शरीर में जो अभिमान है, उसका चाहे वह त्याग कर भी दे, किन्तु सूक्ष्म और कारण देह में बँधी ग्रंथि नहीं रहती। उसकी ओर उसका ध्यान भी नहीं जाता। उसी ग्रंथि के कारण उसकी सारी साधना व्यर्थ हो जाती है। कबीर कहते हैं कि स्थूल वासनाओं का चाहे कोई त्याग कर भी ले, किन्तु सूक्ष्म तृष्णायें उसे संसार में बाँधे रहती हैं। यदि तुम सद्गुरु की शरण में नहीं जाओगे तो संसार से विदा होते समय हृदय में बसी हुई सूक्ष्म वासनाओं की पूर्ति के अभाव में ललकते हुए, एक आन्तरिक व्यथा का अनुभव करने पर तुम किसे दोष दोगे? दोष तुम्हारा ही है।

साखी—तार्किक, बौद्धिक, ज्ञानी, पंडित अर्थात् शास्त्र के जानकार और दास अर्थात् बाह्याचारी भक्त स्थूल वासनाओं पर तो सम्भवतः विजय प्राप्त भी कर सकते हैं, किन्तु उनके भीतर जो सूक्ष्म वासनाएँ दबी पड़ी हैं, उनमें वे भी फँसे रहते हैं। वे

बेचारे उनका पार नहीं पाते और अपने परम लक्ष्य से भ्रष्ट हो, निराश इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं।

टिप्पणी—योग में बताया गया है कि अविद्या, अस्मिता (Iam-ness) राग, द्वेष, अभिनिवेश—ये पाँच मूल क्लेश हैं। यही सूक्ष्म वासनाएँ हैं। इन मूल क्लेशों के होते हुए कर्माशय का फल-जाति (जन्म), आयु और भोग अवश्य होगा। संसार से छुटकारा नहीं मिल पाएगा।

'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः'—पातंजल योगदर्शनम्—२।१३।

मूल क्लेश चार रूपों में रहते हैं—प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार। इन सबके मूल में अविद्या रहती है। इस सम्बन्ध में पतंजलि का एक बहुत महत्वपूर्ण सूत्र है—अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् (२।४) अर्थात् अविद्या परवर्ती क्लेशों की प्रसव भूमि है। ये क्लेश चार रूपों में विद्यमान रहते है—१. प्रसुप्त अर्थात् शक्ति मात्र रूप में, बीजभाव में विद्यमान रहना। २. तनु अर्थात् क्लेश दग्ध नहीं हुआ है, चित्त से चला नहीं गया है, किन्तु साधना के द्वारा क्षीण और दुर्बल हो गया है। ३. विच्छिन्न अर्थात् विराम के साथ या रुक-रुक कर आना। यह उपयुक्त आलम्बन पाकर प्रकट होता है। ४. उदार अर्थात् वासना की वह अवस्था जो क्रियाशील होती है; विषय के वर्तमान होने पर लब्धवृद्धि (active) होती है। पतंजलि ने इन अवस्थाओं का प्रयोग मूल क्लेशों के सम्बन्ध में किया है! किन्तु ये सभी वासनाओं के लिए लागू हैं। कबीर ने जो स्थूल माया या वासना कहा है, वह विच्छिन्न और उदार अवस्थाओं को व्यक्त करता है। 'पातरी' माया प्रसुप्त और तनु वासनाओं को व्यक्त करती है।

———

८१

(सकाम देवादि चरित्र विपर्यय प्रकरण)

देव चरित्र सुनहु रे[1] भाई, सो[2] तो ब्रह्मा धिया नसाई।
ऊ[3] जे सुनी मन्दोदरि तारा, तिन[4] घर जेठ सदा लगवारा।
सुरपति जाय अहीलहिं छरी[5], सुरगुरु घरनि चन्द्रमै हरी[6]।
कहै कबीर हरिके गुन गाया, कुन्ती करन कुँवारहिं जाया॥

शब्दार्थ—धिया = पुत्री। लगवारा = जार। सुरपति = इन्द्र। सुरगुरु = बृहस्पति। घरनि = पत्नी। हरि = सूर्य।

संदर्भ—इस रमैनी में कबीर ने प्रचलित पौराणिक कथाओं के उदाहरणों को

१. शु०-हो; २. बलि०, वि०-जो ब्रह्मा सो धियउ नसाई; ३. व०, ख०-ऊ जे कहे, शु०-दूजे कहौं; ४. बलि०, शु०, वं०-जेहि; ५. ब०, ख०-छलिया; ६. ब०, ख०-हरिया।

लेकर यह बतलाया है कि जिनको लोग दिव्य समझते हैं, वे देव-देवी भी मोह के कारण पतन से न बच सके। उन्होंने व्यंग्यात्मक शैली में यह दिखलाया है कि वे किस प्रकार भ्रष्ट हुए। फिर मनुष्य का कहना ही क्या ?

व्याख्या—हे भाई! जिनको तुम देव-देवी समझ कर पूज्य मानते हो, उनका हाल सुनो। ब्रह्मा अपनी पुत्री सरस्वती पर ही मोहित हो गये। मन्दोदरी और तारा दिव्य नारियों के उदाहरण रूप में गिनाई जाती हैं। इनके घर में जेठ सदा जार के रूप में रहे। इन्द्र ने कामवश अहल्या को छला। चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी तारा का हरण किया। कबीर कहते हैं कि लोग सूर्य का बहुत गुणगान करते हैं, परन्तु उनके द्वारा कुमारी अवस्था में ही कुन्ती की कुक्षि से कर्ण उत्पन्न हुए। इसलिए देव-देवी को छोड़ो। सद्गुरु की शरण लेकर मोह पर विजय प्राप्त करो।

टिप्पणी—दूसरी पंक्ति में 'जेठ' के सम्बन्ध में कबीर ने जो कहा है, वह उनकी भूल है। मन्दोदरी और तारा ने क्रमशः अपने पतियों रावण और वालि की मृत्यु के बाद विभीषण और सुग्रीव से विवाह कर लिया था, जो उनके देवर थे। हाँ, यह अवश्य सत्य है कि वालि ने सुग्रीव को भगाकर उसकी पत्नी को रख लिया था और रावण ने विभीषण को निकाल कर उसकी पत्नी को रख लिया था। विभीषण की पत्नी का नाम सरमा और सुग्रीव की पत्नी का नाम रूमा था।

८२

(माया का मोहक आवरण प्रकरण)

सुख क[1] विर्छ[2] एक जगत उपाया, समुझि न परै[3] विषै कछु माया।
छव छत्री पत्री[4] जुग चारी, फल दुइ पाप पुन्य अधिकारी।
स्वाद अमित[5] कछु बरनि न जाई, कै चरित्र सो ताहि[6] समाई।
नटवत[7] सारे साज साजिया, जो खेलै सो देखै[8] बाजिया।
मोहा बपुरा जुक्ति न देखा, सिव[9] सक्ति विरंचि नहिं पेखा॥
साखी—परदे परदे चलि गए, समुझि परी नहिं बानि।
जो जानहि सो बाँचिहै, होत सकलकी हानि॥

शब्दार्थ—उपाया = उत्पन्न किया, पैदा किया, छत्री = छतरी, शाखा। पत्री = पक्षी (प्र० अ०) जीव। बाजिया = (फ़ा० बाजी) तमाशा, खेल। जुक्ति = रहस्य। परदे = आवरण। बानि = सजधज, आभा।

---

१. ब०-कै; २. ब०, ख०-वि०-वृक्ष; ३. ब०, ख०-परल; ४. ब०, ख०-निपात, बा०-पात; ५. बा०-अनत; ६. बा०-ताही माही; ७. बा०-नट-वट साज साजिया साजी; ८. बा०-देखै बाजी; ९. बलि०-हरिहर।

संदर्भ—इस रमैनी में सद्गुरु ने वृक्ष के रूपक द्वारा यह बतलाया है कि संसार एक वृक्ष के समान है। इसको माया ने उत्पन्न किया है। इसमें विषय रूपी फल लगते हैं। पक्षी अर्थात् जीव इन वृक्षों पर बैठकर सुख-दुःख रूपी फलों को अपने कर्मानुसार चखते हैं। वे विषयों के अमित स्वाद को भोगते रहते हैं। उनकी प्रवृत्ति सदा पराङ्-मुखी रहती है। वे इस वृक्ष के रहस्य को समझने की चेष्टा नहीं करते। इसीलिए जन्म-जन्मान्तर में माया के फन्दे में फंसे रहते हैं।

व्याख्या—माया ने संसार में एक विषय रूपी सुख-वृक्ष को उत्पन्न किया। यह किसी की समझ में नहीं आया। इस वृक्ष की छः शाखायें (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और एक मन) हैं। जीव रूपी पक्षी चारो युगों में अपने पाप-पुण्य के अधिकार के अनुसार सुख-दुःख रूपी फल को चखते रहते हैं। इस विषय रूपी फल का अपरिमित स्वाद होता है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जीव नाना प्रकार के व्यवहार करके विषयों का भोग करते हुए जन्म-जन्मान्तर में फिर इसी संसार में आते रहते हैं। वे नट के समान सब सामग्री सजाकर नाना प्रकार के अभिनय इस संसार में करते रहते हैं। इन खेलों के वही अभिनेता हैं और वही दर्शक भी। बेचारा मोहग्रस्त जीव मर्म को नहीं समझ पाता। यहाँ तक कि शिव-शक्ति और ब्रह्मा भी माया द्वारा प्रस्तुत संसार के मर्म को नहीं जान पाते।

साखी—माया के आवरण में सभी भटकते रहते हैं। उसकी सजधज का मर्म किसी की समझ में नहीं आता। जो इस मर्म को जानता है वही बचेगा और सब विनाश को प्राप्त होंगे।

८३

(मोक्षार्थी क्षत्रिय प्रकरण)

छत्री करै छत्रिया धर्मा, वाके बढ़ै सवाई कर्मा।
जिन अवधू गुरु ग्यान लखाया, ताकर मन तँहई लै धाया[1]।
छत्री सो जो[2] कुटुमसे जूझै, पाँचो मेटि एक कै बूझै।
जीव मारि जीवहिं प्रतिपालै, देखत जन्म आपनो घालै[3]।
हालै[4] करै निसाने घाऊ, जूझि परे तँह[5] मनमथ राऊ॥

साखी—मनमथ[6] मरै न जीवै, जीवहिं मरन न होय।
सुन्न सनेही राम बिनु, चले अपनपौ खोय॥

---

१. बा०-पलटाया; २. बा०-सोई; ३. ब०, ख०, वि०, बलि०-हारै; ४. बलि०-हारे; ५. ब०, ख०-तब; ६. ब०, ख० में साखी की पंक्तियों का क्रम उल्टा है।

शब्दार्थ—अवधूत = (अव् उपसर्ग + 'धू' धातु + क्त प्रत्यय) = अवधूत। अव् = भली प्रकार से, धू = हिला देना, निकाल देना = अच्छी तरह से निकाल डाला गया है मल, पाप आदि जिसके द्वारा वह है अवधूत। जूझे = युद्ध करे। पाँचों = पंचेन्द्रिय। देखत = देखते-देखते, शीघ्र ही। घालै = नष्ट करना। हालै = तुरन्त। निसाने = लक्ष्य। घाऊ = चोट। मनमथ = (मनः मथ्नाति इति मन्मथः) मन को मथने वाला, काम। राऊ = राजा।

संदर्भ—इस रमैनी में सद्गुरु ने दो प्रकार के क्षत्रिय बतलाये हैं—एक तो क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिय और दूसरा पारमार्थिक क्षत्रिय। क्षत्रिय का अर्थ है—क्षतात् त्रायते इति क्षत्रिय अर्थात् जो लड़कर, अपने प्राणों का होम कर, क्षत या घाव से बचावे वह है क्षत्रिय। हिंसक या घातक दो प्रकार के होते हैं—एक आधिभौतिक जैसे सिंह, भेड़िया आदि हिंसक पशु और समाज में दुराचारी, आततायी नर, दूसरे आध्यात्मिक; जैसे—काम, क्रोध आदि।

साधारणत क्षत्रिय उसे कहा जाता है जो हिंसक जन्तुओं या सामाजिक शत्रुओं की क्षत (चोट) से लोगों को बचाता है। सद्गुरु का यह कहना है कि इस प्रकार के जन्तु या शत्रु तो कभी-कभी अवसर पाकर आघात करते हैं, किन्तु अपने भीतर सदा विद्यमान काम, क्रोध आदि जो शत्रु हैं; वे तो निरन्तर आघात करते रहते हैं। इनके आघात से जो बचाता है, वह वास्तविक या पारमार्थिक क्षत्रिय है।

इस रमैनी की साखी मे आये हुए 'अपनपौ' प्रयोग को भी अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है। हमारा 'स्व' दो प्रकार का होता है—एक उत्तम 'स्व' जो कि अपना वास्तविक स्वरूप या आत्मा है और दूसरा अधम 'स्व' जो कि देहाभिमान के कारण 'स्व' बना बैठा है।

व्याख्या—जो क्षत्रिय केवल साधारण क्षत्रिय-धर्म पालन करता है अर्थात् हिंसक पशुओं का शिकार आदि करता है अथवा सामाजिक शत्रुओं को नष्ट करता है, उसका हिंसादि के कारण कर्मबन्धन बढ़ता जाता है। वह जब ऐसे साधुओं के प्रभाव में आता है, जो अपने का 'अवधूत' कहते हैं, किन्तु जिन्होंने परमार्थ का साक्षात्कार नहीं किया है तब उनके द्वारा प्राप्त उपदेश से भी वह वास्तविक क्षत्रिय नहीं बनता। वे थोड़े से लटके बतला देते हैं, उसी को वह (शिष्य) ले दौड़ता है। उसी में उसका मन रमा रहता है और वह समझता है कि इससे उसे परमार्थ की प्राप्ति हो जायगी। किन्तु सच बात तो यह है कि वास्तविक क्षत्रिय वह है जो उससे युद्ध करता है, जिसको प्राकृत-जन अपना कुटुम्ब ही समझते हैं। यह कुटुम्ब अपना निम्न या अधम 'स्व' है। अपने भीतर काम, क्रोध, मद, मात्सर्य आदि जो प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं और जिनको हम 'स्व' समझते हैं, उनसे वह युद्ध ठानता है। वह विषयाभिमुख पाँचो इन्द्रियों की प्रवृत्तियों को नष्टकर एक अर्थात् अन्तरात्मा को ही अपना वास्तविक 'स्व' समझता है। 'जीवहिं मारि जीव प्रतिपालै' में 'जीव' शब्द के दो अर्थ हैं—एक तो अपना

अधम 'स्व', जिसको वह जीव समझता है और दूसरा अन्तरात्मा जो उसका वास्तविक जीव या 'स्व' है। वास्तविक क्षत्रिय वही है जो अपने कृत्रिम जीव अर्थात् निम्न प्रवृत्तियों को नष्टकर अपने वास्तविक 'स्व' की रक्षा करता है और देखते-देखते अर्थात् शीघ्र ही वह अपने मायिक देहाभिमान रूपी जन्म से छुटकारा पा लेता है। वह शीघ्र ही अपने परमलक्ष्य पर आघात करता है अर्थात् परमार्थ की ओर सर्वथा मुड़ जाता है और तब कामराज जो उसके सारे मन को मथता रहता है, सर्वथा धराशायी हो जाता है। वह तृष्णा से पूर्णरूप से मुक्त होकर आध्यात्मिक जगत् का एक उत्तम सदस्य बन जाता है।

यह भाव गीता में भी विद्यमान है। जहाँ भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को यह उपदेश दिया है कि अपने शत्रुओं का वध करो, क्षत्रिय-धर्म का पालन करो, वहाँ केवल दुर्योधन आदि के वध करने की बात नहीं कही गयी है। उसमें यह भी व्यंजना है कि अपने भीतर विद्यमान निम्न प्रवृत्तियों का हनन कर, वास्तविक क्षत्रिय बनो। जहाँ भगवान् ने 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' कहा है, वहाँ भी यही भाव है कि वास्तविक 'स्व' अर्थात् अन्तरात्मा के धर्म के निर्वाह में चाहे प्राण चले जायँ, तब भी श्रेय है। अपने भीतर विद्यमान काम, क्रोधादि शत्रुओं पर तब तक विजय प्राप्त नहीं की जा सकती जब तक कि हम उनको 'स्व' अर्थात् अपना कुटुम्बी समझे बैठे हुए हैं। उन पर तभी विजय प्राप्त हो सकती है, जब हम अपने 'स्व' को पहचानें और उस धरातल से उनपर प्रहार करें।

साखी—ऐसे बहुत से ज्ञानी या अवधूत कहलाने वाले गुरु मिल जाते हैं जो कि शून्य को जीवन का परम लक्ष्य मानते हैं और उसी में अपने शिष्यों को स्थित होने का उपदेश देते हैं। परन्तु जीवन का चरम लक्ष्य शून्य नहीं है। जीवन का चरम लक्ष्य है राम अथवा परमात्मा। जो शून्य के अनुरागी होते हैं, वे राम से रहित होकर अपने वास्तविक 'स्व' को खो बैठते हैं। राम तभी मिल सकते हैं जब सभी शत्रुओं के मूल 'काम' का वध कर दिया जाय। एक बार जब 'काम' का उन्मूलन हो जाता है, तब वह पुनः उभड़ नहीं सकता और उसके मरण से फिर जीव का मरण नहीं होता अर्थात् जीव जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

टिप्पणी—कबीर ने ऊपरकी रमैनी में 'अवधूत' शब्द का प्रयोग उन लोगों के लिए किया है जो वस्तुतः पाप-दोष आदि निम्न प्रवृत्तियों से मुक्त नहीं होते, किन्तु बाह्याचार, तपस्या अथवा साधना के द्वारा मस्त बैठे हुए अपने को 'अवधूत' घोषित करते हैं।

८४

(जीव-सम्बोधन प्रकरण)

जिव[१] निज दुख ते आपु सम्हारू, जो दुःख व्यापि रहा[२] संसारू।
माया मोह बँधे सब लोई[३] अलपै लाभ मूल गो खोई।
उपजै खपै जोनि फिरि आवै, सुख का लेस सपने नहिं पावै।
दुःख संताप कष्ट बहु पावै, सो न मिला जो जरत बुझावै।
मोर-तोर मैं सबै बिगूता, जननी उदर[४] गर्भ महँ सूता।
बहुत खेल खेलै बहु बूता[५], जन भौंरा अस गये बहूता।
मोर-तोर महँ जर जग सारा, धिग[६] स्वारथ झूठा हंकारा[७]।
झूठी[८] आस रहा जग लागी, इन्हते भागि बहुरि पुनि आगी।
जो हित कै राखै सब लोई, सो सयान बाँचा नहिं कोई॥
साखी—आपु आपु चेतै नहीं, कहौं तौ रुसवा होय।
कहैं कबीर जो सपनें[९] जागै, निरअस्ति[१०] अस्ति न होय॥

शब्दार्थ—सम्हारू = सम्हालना, बचाना। लोई = लोग। बिगूता = नष्ट हो गये। बूता = शक्ति। बहूता = सब लोग, बहुत लोग। रुसवा = रुष्ट। निरअस्ति = मिथ्या। अस्ति = सत्य।

सन्दर्भ—इस अन्तिम रमैनी में सद्गुरु ने एक प्रकार से सभी रमैनियों का सार रख दिया है। इसमें उन्होंने दुःखमय संसार की कारण-शृंखला प्रदर्शित की है। संसार दुःखमय है, उसका कारण है—तृष्णा। तृष्णा का कारण है अहंकार, उसका कारण है मोह, जो मायाजन्य है। वस्तुतः यह मोह तब तक नहीं छूट सकता जब तक पारमार्थिक अहं अर्थात् अपने वास्तविक आत्मा को मनुष्य न समझ ले।

व्याख्या—हे जीव! जो दुःख सारे संसार में व्याप रहा है उस दुःख से तू अपने को बचा। यह दुःख संसार के कारण नहीं है, यह है तृष्णा के कारण और यह तृष्णा मोह अर्थात् अज्ञान के कारण है, जो मायाजन्य है। इसी मायाजन्य मोह में सभी लोग फँसे हुए हैं और तृष्णा बस अल्प ऐन्द्रिय सुख के लाभ के लिए अपने मूल को भी खो बैठते हैं; जैसे कोई अज्ञानी व्यापारी थोड़े से लाभ के लिए मूलधन को भी गवाँ देता है। सद्गुरु ने 'शब्द' में भी कहा है—

'लोभ कारण मूल गवाँयो अजहूँ न मिटी तेरी तृष्णा रे।' यही भाव यहाँ भी है। जीव थोड़े से वैषयिक सुख के लिए अपने परमार्थ को खो बैठता है।

तृष्णा वह अभिप्रेरणात्मक शक्ति है जिसका वेग बिना फल दिये नहीं समाप्त होता। तृष्णा के कारण ही जीव पुनः विषय-भोग के लिए जन्म लेता है और यतः देह

---

१. बा०-जियरा आपन दुखहि सँभारू, बं० ख०-जियरा तैं; २. ब०, ख०, वि०-रहल; ३. ब०, ख०-कोई; ४. बा०-बोद्र; ५. ब०, ख०, बलि०-रूता, शु०-रूपा; ६. बा०-धृग; ७. बा०-संसारा; ८. बा०-झूठे मोह; ९. शु०-आपुन; १० ब०, बलि०, शु०-अस्ति निरस्ति।

का स्वभाव विनाश को प्राप्त होना है, अतः उसका मरण होता है। किन्तु 'तृष्णा' का मरण नहीं होता, इसलिए वह वार-बार योनियों में आता है अर्थात् जन्म और मृत्यु को प्राप्त होता रहता है और स्वप्न में भी उसे वास्तविक सुख का लेश मात्र भी नहीं प्राप्त होता।

इस जन्म-मरण-चक्र के कारण वह नाना प्रकार के दुःख, तीनों प्रकार के (दैहिक, दैविक, भौतिक) सन्ताप और कष्ट भोगता है। दुर्भाग्य यह है कि उसे कोई ऐसा गुरु नहीं मिलता, जो उसे जलते हुए ताप से अपने शीतल उपदेश द्वारा बुझा दे।

इस तृष्णा का कारण है स्थूल-सूक्ष्म देहाभिमान-रूपी अहंकार, जो कि रह-रहकर मेरे और तेरे के भाव में व्यक्त होता है। इसी मेरे और तेरे में फँस कर सभी लोग नष्ट हो जाते हैं और पुनः जननी के गर्भ में आकर शयन करते हैं अर्थात् जन्म लेते हैं।

वड़ी शक्ति लगाकर लोग इस संसार में नाना प्रकार के कार्य-कलाप करते रहते हैं, जैसे नट रंगमंच पर आकर अनेक प्रकार का अभिनय करता है। किन्तु ये सब लोग भ्रमर के समान नष्ट हो जाते हैं। जैसे भ्रमर कमल के रस की तृष्णा से उसमें प्रवेश करता है और सन्ध्याकाल में कमल-सम्पुट के वन्द होने पर उसी में नष्ट हो जाता है, वैसे ही सांसारिक जन तृष्णा के कारण विषयों में फँसकर अपने जन्म को नष्ट करते हैं।

'मेरे-तेरे' के चक्कर में सारा संसार जल रहा है। ऐसे स्वार्थ को धिक्कार है। यह अच्छी तरह समझ लो कि इसका मूल 'अहंकार' झूठा है। वह केवल देह का आश्रय लिये हुए खड़ा है, उसको आत्मा का आश्रय नहीं है। सारा संसार निरर्थक तृष्णा के वश में है। मानव एक तृष्णा को छोड़कर दूसरी को पकड़ता है। किन्तु यह तो वैसे ही हुआ जैसे एक आग से भाग कर कोई दूसरी में कूद पड़े। अपने को परम चतुर समझने वाले लोग अपनी तथाकथित भलाई की वात सोचकर उसे सम्हाल कर रखते हैं और क्रिया-तत्पर होते हैं। वे भी जन्म-मरण के चक्र से निकल नहीं पाते।

साखी—कवीरदास कहते हैं कि लोग सभी प्रकार के क्रिया-कलाप अपने लिए ही करते हैं। किन्तु उनका वास्तविक 'आप' है क्या, यह नहीं विचारते। यदि इस कटु सत्य की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करूँ तो वे रुष्ट होंगे। यह सांसारिक जीवन एक स्वप्न के समान है जिसमें प्राणी भूला रहता है और वास्तविक स्थिति को नहीं समझ पाता। यदि जीवन-रूपी स्वप्न में कोई जागता रहे तो जो मिथ्या है, वह कभी सत्य न हो सकेगा, अन्यथा उसे मिथ्या ही सत्यवत् प्रतीत होता रहेगा।

———

सन्दर्भ और अन्तर्कथाएँ

सन्दर्भ और अन्तर्कथाएँ

रमैनी १

(१) **ब्रह्मा**—सृष्टि करने वाले देवता। मनुस्मृति के अनुसार स्वम्भू भगवान् ने जल की सृष्टि करके उसमें जो बीज फेंका उसी से ज्योतिर्मय अण्ड उत्पन्न हुआ जिसके भीतर से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। भागवत आदि पुराणों के अनुसार भगवान् ने योगनिद्रा में पड़कर जब शयन किया तब उनकी नाभि से एक कमल निकला जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई।

(२) **विष्णु**—हिन्दुओं के प्रमुख तीन देवताओं में से एक। इनके ऊपर सृष्टि की रक्षा का भार है। प्रजापति कश्यप के औरस और अदिति के गर्भ से इनकी उत्पत्ति हुई है। यह सृष्टि के कल्याण के लिए प्रत्येक युग में उत्पन्न होते हैं।

(३) **महेश**—प्रमुख तीन देवताओं में से एक। इन पर सृष्टि के संहार का भार है। इनके सिर पर गंगा, मस्तक पर चन्द्रमा तथा तीसरा नेत्र, गले में साँप और नरमुण्ड की माला, शरीर में भस्म, परिधान व्याघ्रचर्म तथा साथ में पार्वती हैं। इनका निवासस्थान कैलास है।

रमैनी ८

(१) **उपनिषद्**—वैदिक वाङ्मय का अन्तिम क्रम जिनमें आत्मा, परमात्मा आदि अध्यात्म-तत्त्व का निरूपण किया गया है। दश मुख्य उपनिषदों पर शंकराचार्य आदि ने भाष्य लिखा है।

(२) **नारद**—एक देवर्षि, ब्रह्माजी के मानस-पुत्र। ये ही कालान्तर में देवगन्धर्व होकर उत्पन्न हुए। इन्होंने तीन लाख श्लोकों वाला महाभारत देवताओं को सुनाया था। इन्होंने दक्ष के पुत्रों को सांख्यशास्त्र का उपदेश दिया था।

(३) **शुकदेव**—कृष्णद्वैपायन व्यास के पुत्र। पुराणों के ज्ञाता। इन्होंने राजा परीक्षित को मृत्यु के पहले मोक्ष का उपदेश दिया था, जो इन्होंने अपने पिता और महाराज जनक से सीखा था।

(४) **याज्ञवल्क्य**—वैशम्पायन के शिष्य एक प्रसिद्ध ऋषि। ये राजा जनक के दरबार में इन्होंने दार्शनिक विवाद में भाग लिया था। मैत्रेयी और गार्गी इनकी पत्नियाँ थीं। यह योगीश्वर याज्ञवल्क्य के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह एक प्रसिद्ध स्मृतिकार भी थे।

(५) **जनक**—मिथिला के राजवंशियों की एक उपाधि। सीताजी इसी कुल में उत्पन्न राजा सीरध्वज की पुत्री थीं। ये मोक्षतत्त्व के ज्ञाता थे। विदेह से उत्पन्न होने के कारण इन्हें 'विदेह' कहते हैं।

(६) **दत्तात्रेय**—एक प्रसिद्ध प्राचीन ऋषि जो विष्णु के २४ अवतारों में से एक माने जाते हैं। यह परमयोगी तथा सिद्ध थे।

(७) **राम**—त्रेता-युग में कौशल्या के गर्भ से उत्पन्न अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र। विष्णु के अवतार। जन्मतिथि चैत्र शुक्ला नवमी। वशिष्ठ द्वारा शिक्षा-प्राप्ति।

(८) **वसिष्ठ**—एक प्राचीन ऋषि। वेदों के अनुसार मित्र और वरुण के पुत्र। सृष्टि के प्रथम काल में यह ब्रह्मा के मानस-पुत्र थे। ब्रह्मा के कहने से ये सूर्यवंश के पुरोहित हुए। यह ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों के द्रष्टा थे।

(९) **कृष्ण**—देवक की पुत्री देवकी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव के एक पुत्र। विष्णु के अवतार। श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों में विस्तृत जीवन-वृत्त।

(१०) **उद्धव**—बृहस्पति के एक शिष्य, वृष्णियों के मन्त्री और श्रीकृष्ण के सखा। श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर यह गोकुल गये थे और फिर मथुरा लौट गये। श्रीकृष्ण के अनेक उपदेशों को सुनकर इन्होंने बदरिकाश्रम को अपना निवासस्थान बनाया, जहाँ इनके जीवन के शेष दिन बीते थे।

रमैनी ११

(१) **शिव का मोहित होना**—जब भगवान् शंकर ने सुना कि श्री हरि ने स्त्री-रूप धारण करके असुरों को मोहित कर लिया और देवताओं को अमृत पिला दिया, तब वह सती देवी के साथ बैल पर सवार होकर समस्त भूतगणों को लेकर वहाँ गये जहाँ भगवान् मधुसूदन निवास करते हैं और उनसे प्रभु के स्त्री-रूप में अवतार के दर्शन की प्रार्थना की। उनके कहने पर भगवान् अन्तर्धान हो गये और थोड़ी देर बाद शिव ने देखा कि सामने एक सुन्दर उपवन है, उसमें एक अद्भुत सुन्दरी स्त्री गेंद खेल रही है। भगवान् शिव उसके अपूर्व सौन्दर्य पर काम-मोहित हो गये और सती के सामने ही कामातुर होकर उसके पीछे दौड़े और बलपूर्वक उसका आलिंगन करने लगे। वास्तव में यह सुन्दरी भगवान् की रची हुई माया ही थी।

कुछ समय बाद भगवान् पुनः प्रकट हो गये और कहने लगे कि मेरी माया अपार है। वह ऐसे हाव-भाव रचती है कि अजितेन्द्रिय पुरुष तो किसी प्रकार उससे छुटकारा पा ही नहीं सकते। भला आपके अतिरिक्त ऐसा कौन पुरुष है जो एक बार मेरी माया के फन्दे में फँसकर फिर स्वयं उससे निकल सके—

> को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान्।
> तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः ॥३९॥ (श्रीमद्भागवत, ८।१२)

(२) **नाग-यज्ञ**—एक बार परीक्षित आखेट के लिए गये हुए थे। प्यास लगने पर वह शमीक ऋषि के आश्रम में गये। वह तपनिरत थे। उनके न बोलने पर परीक्षित ने उनके गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया और चले आये। शमीक के पुत्र

श्रृंगी ऋषि ने आने पर शाप दिया कि जिसने उनके पिता के गले में सर्प डाला हो, वह आज के सातवें दिन तक्षक साँप द्वारा ही कालकवलित हो। इस प्रकार परीक्षित सर्पदंश से मृत्यु को प्राप्त हुए।

उनके पुत्र जनमेजय को जब मन्त्रियों ने पिता की मृत्यु का समाचार दिया, तब उन्होंने पिता की मृत्यु का बदला लेने का निश्चय करके नागयज्ञ किया, जिसमें सहस्रों सर्प जलकर मर गये।

(३) ब्रह्मा की आसक्ति —ब्रह्मा की कन्या सरस्वती बड़ी ही सुकुमारी और मनोहर थी। ब्रह्माजी उसे देख कर एक बार मोहित हो गये। उन्हें ऐसा अधर्ममय आचरण करते देख उनके पुत्र मरीचि आदि ऋषियों ने समझाया कि आप मन में उत्पन्न काम के वेग को न रोककर पुत्री-गमन जैसा पाप करने का संकल्प कर रहे हैं। यह सर्वथा अनुचित है :—

नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति चापरे।
यत्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः ॥३०॥
तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जगद्गुरो।
यद्वृत्तमनुतिष्ठन् वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥३१॥ (श्रीमद्भागवत, ३।१२)

रमैनी १३

(१) चन्द्रमा का गुरु बृहस्पति की पत्नी में आसक्त होना—ब्रह्मा के पुत्र अत्रि थे। अत्रि के नेत्रों से चन्द्रमा का जन्म हुआ। चन्द्रमा ने बलपूर्वक बृहस्पति की पत्नी तारा को हर लिया। देवगुरु बृहस्पति ने अपनी पत्नी को लौटा देने के लिए उनसे बार-बार याचना की, परन्तु वे इतने मतवाले हो गये थे कि उन्होंने किसी प्रकार उनकी पत्नी को नहीं लौटाया। ऐसी परिस्थिति में देवता और दानवों में संग्राम छिड़ गया। तदनन्तर अंगिरा ऋषि ने ब्रह्माजी के पास जाकर युद्ध बन्द कराने की प्रार्थना की। ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को बहुत डाँटा-फटकारा और तारा को उसके पति बृहस्पति के हवाले कर दिया। तारा गर्भवती हो गयी थी। उससे 'बुध' का जन्म हुआ।

(२) सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—ये ब्रह्मा के मानस-पुत्र माने जाते हैं। ये बाल-ज्ञानी थे। इनका आध्यात्मिक महत्त्व भी है। 'सन्' शब्द का अर्थ है—चिरन्तन, शाश्वत।

सनक = चिरन्तन जीवित रहने वाला, अमर।
सनत्कुमार = सदा यौवनपूर्ण रहने वाला, अजर।
सनातन = सदा से विद्यमान रहने वाला।
सनन्दन = सदा आनन्द से परिपूर्ण।

यतः ये लोग कभी जीर्ण नहीं होते, सदा अमर रहते हैं, अतः ये मानव के चिरन्तन दिग्दर्शक और साधक के सनातन पथ-प्रदर्शक हैं।

रमैनी १४

(१) **कबीर**—'कबीर मन्सूर' में बताया गया है कि सत्यपुरुष समस्त जगत् का उत्पन्नकर्त्ता है। वह कभी गर्भ में नहीं आता—सबसे अतीत, सबसे परे, सबसे ऊपर। कबीर साहब उसी सत्यपुरुष के अनागत-वक्ता (भविष्यवक्ता) हैं। इनमें सब गुण वे ही हैं जो उक्त सत्यपुरुष में हैं। वस्तुतः वे उससे अभिन्न हैं और संसार के त्राणकर्त्ता हैं। यही कबीर साहब सत्ययुग में 'सुकृति' नाम से, त्रेता युग में 'मुनीन्द्र' नाम से, द्वापर में 'करुणामय स्वामी' नाम से और कलिकाल में 'कबीर' नाम से अवतीर्ण हुए हैं।

(हजारीप्रसाद द्विवेदी—कबीर, पृ० ५४)

(२) **वामन**—भगवान् वामन कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से पैदा हुए थे। वह बाल-ब्रह्मचारी थे। उस समय राजा बलि नर्मदा नदी के तट पर अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे। भगवान वामन ने उसी समय हाथ में छत्र, दण्ड और जल से भरा कमण्डलु लिये हुए अश्वमेध-यज्ञ के मण्डप में प्रवेश किया। इस प्रकार बौने ब्राह्मण के वेश में भगवान् ने जब वहाँ प्रवेश किया, तब वहाँ एकत्र सभी भृगुवंशी ब्राह्मण उन्हें देखकर उनके तेज से प्रभावित एवं निष्प्रभ हो गये।

राजा बलि ने कहा—ब्राह्मण कुमार! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आज्ञा कीजिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप जो चाहते हों, वह सब मुझसे माँग लीजिए। तब वामन ने उनसे तीन पग भूमि की याचना की। भगवान् वामन ने विराट् रूप धारण करके दो ही पग से पृथ्वी और स्वर्ग को नाप लिया।

रमैनी ४०

(१) **आदम**—सामी अर्थात् मुसलमानी, यहूदी और क्रिस्तानी मतों के अनुसार सृष्टि का सबसे पहला पुरुष आदम है। कहा जाता है कि खुदा ने फरिश्तों से मिट्टी मँगवा कर एक पुतला बनाया और उसमें जान (रूह) फूँक दी और उसे स्वर्ग में रहने की आज्ञा दी। उसने पाप-पुण्य रूपी वृक्ष के फल का स्वाद न लेने के लिए आदम को चेतावनी दे दी। परन्तु शैतान-रूपी सर्प के बहकाने से कौतूहलवश उसने फल को चख लिया, जिसके कारण वह स्वर्ग से नीचे गिरा दिया गया।

(२) **हव्वा**—आदम के साथ उत्पन्न की गई स्त्री। शैतान ने सर्प के रूप में पहले हव्वा को बहकाया कि इसका फल बहुत स्वादिष्ट है। स्त्री के स्वाभाविक कौतूहलवश हव्वा ने फल चखने के लिए हठ किया। फल चखने के परिणामस्वरूप आदम और हव्वा स्वर्ग से ढकेल दिये गये।

रमैनी ४५

(१) **हिरण्यकशिपु**—प्रजापति कश्यप द्वारा दिति के गर्भ से उत्पन्न परम पराक्रमी आदिदैत्य था। इसे ब्रह्माजी द्वारा वरदान प्राप्त था कि वह अस्त्र-शस्त्रादि

के द्वारा नहीं मारा जा सकता। त्रिभुवन में इसके द्वारा उत्पात किये जाने पर नृसिंह द्वारा वध किया गया।

(२) रावण—विश्रवा मुनि का पुत्र था। महाभारत (वन० २७५।७) के अनुसार इसकी माता का नाम पुष्पोत्कटा था। अन्य ग्रन्थों में इसकी माँ का नाम कैकसी बताया गया है। ब्रह्माजी के द्वारा इसको वर मिला था कि नर-वानर को छोड़ कर अन्य किसी के द्वारा यह नहीं मारा जा सकता। राम द्वारा इसका वध हुआ।

(३) कंस—मथुरा के राजा उग्रसेन का पुत्र था। वह कालनेमि दानव का अवतार था। जरासन्ध की पुत्री उसकी पत्नी थी। उसने अपने पिता को कैद करके राज्य अपने हाथ में ले लिया। उसने अपनी बहिन देवकी का विवाह वसुदेव से किया। किन्तु यह आकाशवाणी सुनकर कि वह देवकी के पुत्र द्वारा ही मारा जायगा, उसने देवकी को मार डालने का निश्चय किया। वसुदेव-देवकी द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उसने बहिन को छोड़ तो दिया, किन्तु दोनों को कारागार में डाल दिया। कारागार में ही देवकी के छः शिशुओं की उसने हत्या कर दी। अन्त में वह भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा मारा गया।

रमैनी ४७

(१) जरासन्ध—विप्रचित्ति नामक दानव के अंश से उत्पन्न मगधराज बृहद्रथ का पुत्र था। यह दो टुकड़ों में उत्पन्न हुआ था। मगधराज के घर में जरा नामक राक्षसी की पूजा होती थी। उसने प्रसन्न होकर दोनों टुकड़ों को जोड़ दिया था। अतः बालक का नाम जरासन्ध पड़ा। यह भीमसेन द्वारा मारा गया।

(२) शिशुपाल—यह चेदि देश का राजा तथा दमघोष का पुत्र था। यह युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में गया था और कृष्ण की अग्रपूजा का विरोध किया था। श्रीकृष्ण द्वारा इसका वध हुआ।

(३) सहस्रार्जुन (कार्तवीर्य)—हैहय नरेश कृतवीर्य का पुत्र था। इसका पूरा नाम कार्तवीर्य सहस्रबाहु अर्जुन था। इसने ब्राह्मणों की अपेक्षा क्षत्रियों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया था। परशुराम के द्वारा इसका वध किया गया।

(४) दुर्योधन—धृतराष्ट्र और गान्धारी के सौ पुत्रों में से एक, जो सबसे बड़ा था। यह कुरुकुल को कलंकित करने वाला, दुर्बुद्धि तथा खोटे विचारों वाला था। यह गदा-युद्ध में प्रवीण था। पाण्डवों से यह वैर-भाव रखता था। इसने उनको राज्य का हिस्सा देना अस्वीकार कर दिया और छल से मार डालने के अनेक उपाय किये। इसके कारण महाभारत का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। अन्त में वह भीमसेन के द्वारा गदायुद्ध में मारा गया।

(५) पाण्डव—पाण्डु के पुत्र—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव। ये पाण्डव के नाम से विख्यात थे। शतशृंग निवासी ऋषियों द्वारा इनका नामकरण हुआ था। द्रोणाचार्य से इन्होंने युद्ध-विद्या प्राप्त की थी। महाभारत-युद्ध में इन्होंने विजय प्राप्त की थी। अन्त में इनको स्वर्ग-प्राप्ति हुई।

(६) हरिश्चन्द्र—इक्ष्वाकुवंशी राजा त्रिशंकु के पुत्र थे। इनकी माता का नाम सत्यवती था। ये दान और सत्यपालन के लिए प्रसिद्ध थे। इन्होंने राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया था। ये याचकों के माँगने पर पाँच गुना अधिक धन देते थे। इन्द्र ने ईर्ष्यावश इनकी परीक्षा ली, जिसके लिए विश्वामित्र ऋषि चुने गये। दक्षिणा चुकाने के लिए वह कुटुम्ब सहित बिके। स्त्री ने दासी का काम स्वीकार किया। हरिश्चन्द्र चाण्डाल के यहाँ श्मशान की रखवाली करने को बाध्य हुए। राजा होते हुए भी इन्हें नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़े, पर वे अपने व्रत से न टले। अन्त में अपनी परीक्षा में सफल हुए और परिवार सहित स्वर्ग गये।

रमैनी ४८

(१) शेख तकी—प्रसिद्ध सूफी सन्त थे, इलाहाबाद के पास झूँसी में रहते थे। ये सिकन्दर लोदी के गुरु थे। कबीर से इनका सत्संग हुआ था।

(२) मानिकपुर—इलाहाबाद से झाँसी जाने के मार्ग में एक रेलवे-जंकशन तथा कस्बा। कबीर साहब वहाँ कुछ दिन रहे थे।

(३) शेख अकर्दी, शेख सकर्दी—सूफी सम्प्रदाय के साधु। कबीर से इनका संवाद हुआ था।

रमैनी ५४

(१) ब्रह्मा—सृष्टि के देवता। मनुस्मृति के अनुसार स्वयम्भू भगवान् ने जल की सृष्टि करके उसमें जो बीज फेंका उसी से ज्योतिर्मय अण्ड उत्पन्न हुआ जिसके भीतर से ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ। भागवत आदि पुराणों के अनुसार भगवान् ने योगनिद्रा में पड़कर जब शयन किया तब उनकी नाभि से एक कमल निकला, जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। प्रत्येक कल्प का एक ब्रह्मा होता है।

(२) शिव—संहार के देवता। इनका निवास-स्थान कैलास माना गया है। वैदिक काल के रुद्र ही पुराण काल में शिव, महादेव आदि नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके सिर पर गंगा, मस्तक पर चन्द्रमा तथा तीसरा नेत्र, गले में साँप तथा नरमुण्ड-माला, शरीर में भस्म तथा व्याघ्रचर्म रहता है। इनके धनुष का नाम पिनाक है। इनके पास 'पाशुपत' नामक प्रसिद्ध अस्त्र था। इन्हें 'नीलकण्ठ' और 'आशुतोष' भी कहते हैं।

(३) कृष्ण—देवक की पुत्री देवकी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव के पुत्र। यह विष्णु के २३वें अवतार थे। देवकी के आठवें गर्भ से भादों कृष्ण अष्टमी को रोहिणी नक्षत्र तथा विजय मुहूर्त जयन्ती रात्रि में १२ बजे इनका जन्म हुआ था। कंस ने इनको मार डालने के अनेक प्रयत्न किये। अन्त में वह स्वयं कृष्ण द्वारा मारा गया। रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, सत्या, कालिन्दी, माद्री, मित्रविन्दा तथा भद्रा से इनका विवाह हुआ था। महाभारत-युद्ध में इन्होंने अर्जुन के सारथी का काम

किया था। एक दिन वह पीपल के वृक्ष के नीचे बैठे थे, तभी पैर में जरा नामक बहेलिये का तीर लग जाने से इनका स्वर्गवास हुआ।

(४) मत्स्येन्द्रनाथ—प्रसिद्ध नाथपन्थी योगी। उनके अन्य नामों में मीनपाल, मीननाथ, मच्छेन्द्रपा, मच्छन्दरनाथ आदि प्रसिद्ध हैं। इन्हें जाति का मछुआ कहा जाता है। यह कामरूप के निवासी थे। कहा जाता है कि मछली के उदर में लालन-पालन होने के कारण इनका नाम मछन्दरनाथ पड़ा। ये नाथ-सम्प्रदाय के आदि-प्रवर्त्तकों में माने जाते हैं। इनका समय नवीं-दसवीं शती माना जाता है। इनके द्वारा संस्कृत में चार पुस्तकें—कौल-ज्ञान-निर्णय, अकुलवीरतन्त्र, कुलानन्द, ज्ञानकारिका लिखी गईं, जिन्हें डॉ० प्रबोधचन्द्र बागची ने सम्पादित करके प्रकाशित कराया है। हिन्दी में इनके कुछ पदों का संकलन आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'नाथ सिद्धों की बानियाँ' में किया है।

(५) गोरखनाथ—गोरखनाथ मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य बताये जाते हैं। ये विक्रम की दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विद्यमान थे। इनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में विवाद है। गोरखनाथ के नाम पर संस्कृत तथा हिन्दी में अनेक पुस्तकें मिलती हैं। गोरखनाथ ने सदाचार पर बहुत बल दिया है। इनकी साधना-पद्धति को हठयोग कहते हैं। इनके सिद्धान्तों का प्रभाव भारत के अतिरिक्त अफगानिस्तान, लंका आदि पर भी पड़ा और वहाँ इनके अनेक अनुयायी हो गये।

(६) दत्तात्रेय—एक प्रसिद्ध प्राचीन ऋषि जो पुराणानुसार विष्णु के २४ अवतारों में से एक माने जाते हैं। यह परम योगी तथा सिद्ध थे।

(७) व्यास—पराशर ऋषि के पुत्र श्री कृष्णद्वैपायन, जिन्होंने वेदों का संग्रह, विभाग और सम्पादन किया था। कहा जाता है कि अठारहों पुराण, भागवत, महाभारत, वेदान्त-सूत्र आदि की रचना इन्होंने ही की थी। नदी के बीच एक द्वीप में जन्म होने के कारण इन्हें 'द्वैपायन' तथा रंग काला होने के कारण 'कृष्ण' कहते हैं। वेदों का संग्रह करने के कारण इन्हें 'व्यास' कहते हैं। 'व्यास' का अर्थ होता है—संग्रह करने वाला। इस प्रकार 'व्यास' एक उपाधि भी है और 'व्यास' अनेक हुए हैं।

रमैनी ५५

(१) राम—त्रेतायुग में कौशल्या के गर्भ से उत्पन्न अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र, जो विष्णु भगवान् के मुख्य अवतारों में माने जाते हैं। इनकी पूरी कथा वाल्मीकि रामायण में दी हुई है। ब्राह्मण, जैन तथा बौद्ध मतावलम्बियों ने रामकथा को अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत किया है।

(२) लक्ष्मण—राजा दशरथ के चार पुत्रों में से तृतीय, जो सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनका विवाह सीरध्वज जनक की पुत्री उर्मिला से हुआ था। ये

बड़े राम-भक्त थे। ये शेषनाग के अवतार माने जाते हैं। ये बहुत तेजस्वी, वीर और शुद्ध चरित्र के थे।

(३) सीता—वेदों के अनुसार सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी हैं। मिथिला-नरेश सीरध्वज जनक की पुत्री भी सीता हैं, जो राम को ब्याही थीं। यह पृथ्वी से उत्पन्न मानी जाती हैं। यज्ञ के लिए जमीन जोतते समय राजा जनक को मिली थीं। राम ने शिव का धनुष तोड़ कर इनसे विवाह किया था। इन्हें लक्ष्मी का अवतार माना जाता है। लोकापवाद के कारण राम ने इन्हें त्याग दिया था, तब ये वाल्मीकि के आश्रम में रहीं। वहीं इनको लव-कुश नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। अन्त में ये पृथ्वी में समा गईं।

(४) कौरव—चन्द्रवंशी राजा कुरु के वंशज। धृतराष्ट्र के सौ पुत्र 'कौरव' नाम से प्रसिद्ध हैं।

(५) पाण्डु—प्राचीन काल के एक राजा का नाम, जो पाण्डव-वंश के आदि-पुरुष थे। विचित्रवीर्य क्षयरोग के कारण युवावस्था में ही मर गये। उनकी माता सत्यवती की आज्ञा तथा भीष्म की अनुमति से व्यासजी ने विचित्रवीर्य की विधवाओं-अम्बिका तथा अम्बालिका से पाण्डुवंश की वृद्धि के लिए नियोग किया। अम्बालिका व्यास के उग्र रूप को देखकर डर गई। अतः उसके गर्भ से पीले रंग का पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम पाण्डु पड़ा। यह एक राजर्षि थे।

(६) कुन्ती—राजा कुन्तिभोज की पुत्री थीं। इनका विवाह पाण्डु से हुआ था और यह युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन की माता हुईं। इनका पहला नाम पृथा था, किन्तु कुन्तिभोज द्वारा पाले जाने के कारण कुन्ती नाम पड़ा। महाभारत-युद्ध के पश्चात् ये धृतराष्ट्र और गान्धारी के साथ वन चली गईं, जहाँ इनकी मृत्यु हो गई।

(७) सहदेव—राजा पाण्डु का सबसे छोटा पुत्र जिसका जन्म दुर्वासा ऋषि के बतलाये मन्त्र के प्रभाव से तथा अश्विनीकुमारों के योग से हुआ था। इन्हें अपनी बुद्धि पर बड़ा गर्व था। ये हिमालय पर गलकर मरे।

(८) भोज—मालवा के परमारवंशी एक राजा जो संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान् थे। इनकी विरचित व्याकरण, अलंकार आदि की कई पुस्तकें उपलब्ध हैं।

(९) रावण—लंका का प्रसिद्ध राजा जिसे युद्ध में राम ने मारा था। रावण सुमाली नामक राक्षस की पुत्री कैकसी का पुत्र था। उसके पिता का नाम विश्रवा था। विश्रवा पुलस्त्य मुनि के पुत्र थे। इसके दस सिर थे और रूप अत्यन्त विकराल तथा स्वभाव अति क्रूर था। इसने घोर तप करके ब्रह्मा से यह वरदान प्राप्त किया था कि नर-वानर को छोड़कर इसे कोई मार न सकेगा।

(१०) लंका—भारत के दक्षिण का एक टापू, जहाँ रावण का राज्य होने के पहले कुबेर का आधिपत्य था। ऐसा माना जाता है कि रावण के समय यह टापू सोने का था। पहले यह कुबेर के अधीन था और कुबेर धन का स्वामी कहा जाता है। अतः निश्चय ही यह टापू धन-धान्य से परिपूर्ण रहा होगा।

रमैनी ६९

(१) दत्तात्रेय—एक प्राचीन ऋषि, जो चौबीस अवतारों में से एक माने जाते हैं। यह परमयोगी तथा सिद्ध थे। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार एक ब्राह्मण को जीवित कर देने के उपलक्ष्य में सती अनुसूया को देवताओं से वर मिला था कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश उसके गर्भ से जन्म ग्रहण करेंगे। तदनुसार ब्रह्मा ने सोम बनकर, विष्णु ने दत्तात्रेय बन और शिव ने दुर्वासा के रूप में अनुसूया के घर जन्म लिया। यह बड़े योगी थे, सदा योग-साधन किया करते थे।

(२) शुकदेव—कृष्णद्वैपायन व्यास के पुत्र का नाम जो पुराणों के बड़े ज्ञाता माने जाते हैं। इनका उपनयन-संस्कार स्वयं महादेवजी ने किया था और देवराज इन्द्र ने उन्हें कमण्डलु तथा आसन दिया। इन्होंने राजा परीक्षित को मृत्यु के पहले मोक्षधर्म दिया था जो इन्होंने अपने पिता और महाराज जनक से सीखा था। वही भागवत पुराण है।

(३) नारद—एक देवर्षि जो ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं। ये ही कालान्तर में देवगन्धर्व होकर कश्यप द्वारा 'मुनि' के गर्भ से उत्पन्न हुए। इन्होंने तीस लाख श्लोकों वाला महाभारत देवताओं को सुनाया था। इन्होंने दक्ष के पुत्रों को सांख्य-ज्ञान का उपदेश दिया था, जिससे वे सबके सब विरक्त होकर घर से निकल गये थे।

(४) व्यास—पराशर ऋषि के पुत्र श्री कृष्णद्वैपायन, जिन्होंने वेदों का संग्रह, विभाग और सम्पादन किया था। ये एक धीवर-कन्या मत्स्यगन्धा, जिसे सत्यवती भी कहते हैं, के गर्भ से नदी के बीच एक टापू में पैदा हुए थे। टापू में जन्म होने के कारण इन्हें 'द्वैपायन', काला होने के कारण 'कृष्ण' और वेदों का संग्रह, विभाग, सम्पादन आदि करने के कारण 'व्यास' कहा जाता है। इन्होंने हिमालय की पवित्र तलहटी में पर्वतीय गुफा के भीतर स्नानादि से निवृत्त हो कुशासन पर बैठकर ध्यान-योग में स्थित हो महाभारत के स्वरूप पर विचार किया था। ये उत्तम व्रतधारी, निग्रहानुग्रह, समर्थ एवं सर्वज्ञ माने जाते हैं।

कहा जाता है कि अठारहों पुराण, भागवत, महाभारत और वेदान्त-सूत्र की रचना इन्होंने ही की थी। यह व्यास परम भक्त थे। इन्होंने भक्ति की विशद व्याख्या की है।

एक अन्य मत से व्यास कोई एक व्यक्ति नहीं है। प्रत्येक द्वापर में एक नये व्यास हुआ करते हैं। व्यास किसी का नाम नहीं अपितु उपाधि या पदवी है। वेदवृत्त में जो सीधा निकल जाय उसका नाम वेदव्यास होता है। जितने व्यास हुए हैं वे वेद और पुराण-तत्त्व के पूर्ण ज्ञाता हुए हैं।

रमैनी ७५

दशरथ—इन्दुमती के गर्भ से उत्पन्न महाराज अज के पुत्र तथा इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न अयोध्या के राजा थे। ये पूर्व-जन्म में स्वायम्भुव मनु थे। राम इन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र थे।

लंका—भारत के दक्षिण का एक टापू जहाँ रावण का राज्य होने के पहले कुबेर का आधिपत्य था। ऐसा कहा जाता है कि रावण के समय में यह टापू सोने का था। पहले यह कुबेर के अधीन था और कुबेर धन का मालिक कहा जाता है। अतः यह टापू निश्चय ही धन-धान्य से परिपूर्ण रहा होगा। शायद सोने की लंका का यही तात्पर्य हो।

रावण—लंका का प्रसिद्ध राजा जिसे राम ने युद्ध में मारा था। विष्णु से पराजित होकर राक्षसगण पाताल भाग गये थे जिनमें सुमाली नामक एक राक्षस भी था जिसके कैकसी या निकषा नामक एक पुत्री थी। रावण पुलस्त्य-पुत्र विश्रवा का लड़का था जो इसी कैकसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। इसके दस सिर थे और रूप अत्यन्त विकराल तथा स्वभाव अत्यन्त क्रूर था। रावण ने अपने सौतेले भाई कुबेर की समता करने की इच्छा से भाइयों सहित दस हजार वर्षों तक तपस्या की। इसके घोर तप से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने वरदान दिया कि नर-वानर को छोड़कर अन्य किसी के द्वारा इसका वध न हो सकेगा। सुमाली की सलाह से इसने कुबेर की लका पर अधिकार कर लिया। इसने राम की पत्नी सीता का हरण किया। फलस्वरूप बन्धु-बान्धवों समेत राम द्वारा मारा गया।

देवकी—उग्रसेन के भाई देवक की पुत्री, वसुदेव की पत्नी और भगवान् श्रीकृष्ण की माता। यह कंस की चचेरी बहिन थी। इनके विवाह के समय आकाशवाणी हुई थी कि इनके आठवें गर्भ से कंस का विनाश होगा। भादों कृष्णाष्टमी की आधी रात को इनके गर्भ से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ और उसी रात को यशोदा को एक पुत्री हुई। योगमाया के प्रभाव से सभी प्रहरी सो गये और वसुदेव रातोंरात कृष्ण को यशोदा के यहाँ रख आये और यशोदा की पुत्री को लाकर देवकी के पास सुला दिया। कंस ने उसे पत्थर पर पटक दिया।

यशोदा—नन्द गोप की पत्नी, जिन्होंने श्रीकृष्ण का लालन-पालन किया था।

बलि—दैत्य जाति का एक राजा था। यह विरोचन-सुरुचि का पुत्र तथा प्रह्लाद का पौत्र था। इसकी तीन पत्नियाँ थीं—अशना, विंध्यावली तथा सुदेष्णा। इसके बाण आदि सौ पुत्र तथा शकुनी आर पूतना नामक दो पुत्रियाँ थीं।

एक बार नर्मदा के उत्तरी तट पर जब बलि भृगुकच्छ में अश्वमेध यज्ञ कर रहा था, तब विष्णु वामन-रूप में वहाँ गये। बलि ने उनसे कुछ दान लेने की प्रार्थना की। उन्होंने केवल तीन पग भूमि माँगी। बलि से तीन पग भूमि मिल जाने पर वामन ने अपना विश्वरूप प्रकट किया और दो पग में पृथ्वी और आकाश नाप लेने के पश्चात् तीसरा पग रखने के लिए स्थान माँगा। बलि ने अपना मस्तक सामने रख दिया। इसी पर हरि ने उसे पाताल भेज दिया।

वालि—बन्दर जाति का किष्किन्धा का राजा, सुग्रीव का ज्येष्ठ भ्राता तथा अंगद का पिता। एक बार मेरु पर्वत पर तपस्या करते समय ब्रह्मा की आँखों से गिरे

आँसुओं से एक बन्दर उत्पन्न हुआ जिसका नाम ऋक्षराज था। अपनी ही छाया देखकर वह एक बार जल में कूद पड़ा। उसका रूप एक सुन्दरी स्त्री का हो गया। इसी के गर्भ से इन्द्र द्वारा वालि और सूर्य द्वारा सुग्रीव उत्पन्न हुए। एक बार वालि की अनुपस्थिति में सुग्रीव ने राज्य पर अधिकार कर लिया। वापस आने पर बालि ने सुग्रीव को मार भगाया और उसकी पत्नी रूमा को भी छीन लिया। सुग्रीव ने भाग कर मतंग ऋषि के आश्रम में शरण लिया। वहीं पर राम से मित्रता हुई। राम ने वालि को मारकर सुग्रीव को किष्किन्धा का राजा बनाया।

हिरण्यकशिपु—कश्यप ऋषि का पुत्र जो दक्ष प्रजापति की पुत्री दिति के गर्भ से उत्पन्न एक दैत्यराज था। विष्णु द्वारा इसके भाई हिरण्याक्ष का वध किये जाने के कारण यह विष्णु का घोर विरोधी हो गया था। किन्तु इसका पुत्र प्रह्लाद विष्णु का अनन्य भक्त था। भगवद्भक्त होने के कारण प्रह्लाद को इसने घोर यातनाएँ दीं। ब्रह्मा के वर को बचाते हुए विष्णु ने नृसिंह का रूप धारण करके इसे अपने जंघों पर रखकर हाथ के नखों से इसका वध किया था।

वराह—भगवान् विष्णु का एक अवतार, जिन्होंने एकार्णव जल में मग्न पृथ्वी का उद्धार किया तथा हिरण्याक्ष का वध किया था।

परशुराम—राजा प्रसेनजित की पुत्री रेणुका के गर्भ से उत्पन्न। इनके पिता का नाम जमदग्नि था। यह ईश्वर के सोलहवें अवतार माने जाते हैं। कुशिक की तपस्या से प्रसन्न होकर इन्द्र उनके यहाँ गाधि नाम से उत्पन्न हुए। गाधि को सत्यवती नामक एक पुत्री हुई जिसका विवाह भृगु के पुत्र ऋचीक से हुआ। ऋचीक सत्यवती से जमदग्नि हुए। जमदग्नि का विवाह रेणुका से हुआ। इनसे परशुराम हुए। इन्होंने २१ बार पृथ्वी पर के क्षत्रियों का संहार किया था तथा स्यमन्तपंचक में रक्त से तीन कुण्ड भर दिये थे।

गोवर्धन—श्री वृन्दावन का एक पर्वत। एक बार बहुत अधिक वर्षा होने पर अपने भक्तों के रक्षार्थ श्रीकृष्ण ने इसे अपनी कनिष्ठिका उँगली पर उठाया था।

गण्डक—गंगा की एक सहायक नदी का नाम जो नेपाल में हिमालय से निकल कर पटना के पास गंगा से मिलती है।

शालिग्राम—काले और गोल पत्थर की मूर्ति जो गण्डकी नदी में मिलती है। इसे विष्णु की मूर्ति मानकर लोग पूजते हैं।

मत्स्य—विष्णु के दस अवतारों में से प्रथम, जो सत्ययुग में हुआ था। इसका नीचे का अंग रोहू मछली के समान और ऊपर का अंग मनुष्य के समान था। अतः इसे मत्स्यावतार कहते हैं। इसके सिर पर सींग थे, चार हाथ तथा सारे शरीर पर कमल के चिह्न थे। इन्हीं के आशीर्वाद से सत्यव्रत वैवस्वत मनु हो गये। इसने हयग्रीव राक्षस को, जिसने सब वेदों को चुरा लिया था, मारकर वेदों का उद्धार किया।

कच्छप—विष्णु भगवान् के चौबीस अवतारों में से एक।

द्वारावती—रैवतक पर्वत से सुशोभित रमणीय कुशस्थली, जहाँ जरासन्ध से वैर हो जाने पर समस्त यादव श्रीकृष्ण की सम्मति से एकत्र होकर रहने लगे। इसे द्वारका भी कहते हैं। इसका दुर्ग ऐसा अभेद्य था कि देवताओं के लिए भी दुर्गम था। श्रीकृष्ण के परमधाम पधारने पर द्वारकावासी स्त्री-पुरुषों के द्वारा इस पुरी के खाली कर दिये जाने पर समुद्र ने इसे डुबो दिया।

जगन्नाथ—विष्णु की एक मूर्ति जो पुरी नामक स्थान में स्थापित है। यह मूर्ति सुभद्रा और बलराम की मूर्तियों के साथ रहती है। तीनों मूर्तियाँ चन्दन की होती हैं जो समय-समय पर बदली जाती हैं, जिसे 'कलेवर बदलना' कहते हैं। वैशाख शुक्ल अष्टमी पुष्य नक्षत्र योग में बृहस्पति के दिन जगन्नाथ की प्रतिष्ठा हुई थी।

जगन्नाथ तथा बलराम की मूर्तियों में पैर बिल्कुल नहीं होते और हाथ भी बिना पंजे के होते हैं। इन मूर्तियों को अधिकतर भात और खिचड़ी का ही भोग लगता है, जिसे 'महाप्रसाद' कहते हैं। इसे सब लोग बिना छुआछूत का विचार किये ग्रहण करते हैं।

———

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

संस्कृत

१. अमरकोष—अमर सिंह—चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी।
२. ऐतरेय उपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर।
३. ऋग्वेद—वैदिक संशोधन मण्डल, पूना।
४. कठोपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर।
५. छान्दोग्य उपनिषद—गीता प्रेस, गोरखपुर।
६. देवी भागवत—पण्डित पुस्तकालय, काशी।
७. परमार्थ-सार—अभिनव गुप्तपादाचार्य—शोध-विभाग, जम्मू कश्मीर राज्य।
८. पातञ्जल-योगदर्शनम्—चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी।
९. बृहदारण्यक उपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर।
१०. महाभारत—गीता प्रेस, गोरखपुर।
११. मनुस्मृति—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
१२. मुण्डकोपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर।
१३. मैत्री उपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर।
१४. योगवासिष्ठ—अच्युत ग्रन्थ माला, काशी।
१५. स्कन्दपुराण—बरेली।
१६. श्रीमद्भागवत गीता—गीता प्रेस, गोरखपुर।
१७. श्वेताश्वतर उपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर।
१८. साहित्यदर्पण—विश्वनाथ—चौखम्भा विद्या मन्दिर, वाराणसी।

हिन्दी

१. अखरावट—मलिक मोहम्मद जायसी—सं० रामचन्द्र शुक्ल, प्र०—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
२. कबीर—हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर लिमिटेड, बम्बई।
३. कबीर ग्रन्थावली—सं० डॉ० श्यामसुन्दर दास, प्र०—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, ११वाँ संस्करण, सं० २०२७।
४. कबीर ग्रन्थावली—सं० डॉ० पारसनाथ तिवारी—प्र०—हिन्दी-परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, प्र० संस्करण, १९६१।
५. कबीर ग्रन्थावली—सं०—डॉ० माताप्रसाद गुप्त, प्र०—प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा, प्र० सं०. १९६९।
६. कबीर बीजक—सं०—हंसदास शास्त्री, प्र०—कबीर ग्रन्थ प्रकाशन समिति, बाराबंकी।
७. कबीर बीजक—सं०—डॉ० शुकदेव सिंह, प्र०—नीलाम प्रकाशन, ५ खुसरो बाग रोड, इलाहाबाद, १९७२।
८. कबीर बीजक (उर्दू)—मुंशी शिवव्रत लाल, लाहौर।

९. कबीर साहब का बीजक—रीवाँ नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह, प्र०—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० १९६१ ।
१०. कबीर साहब का बीजक—मोतीदास चेतनदास, प्र०—कबीर प्रेस, सीयाबाग, बड़ौदा ।
११. दोहावली—तुलसीदास—प्र०—गीता प्रेस, गोरखपुर ।
१२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका (शोध विशेषांक)—ना० प्र० स० काशी; संवत्—२०२९ ।
१३. पद्मावत— मलिक मोहम्मद जायसी—सं०—रामचन्द्र शुक्ल, प्र० ना० प्र० सभा, काशी ।
१४ बीजक—विचारदास शास्त्री, प्र०—रामनारायण लाल, इलाहाबाद, सन् १९२८ ।
१५. बीजक भाष्य—सदाफलदेव जी, प्र०—मुक्ति पुस्तकालय, पकड़ी, बलिया, सं० २०१३ ।
१६. बीजक मूल—प्र०—साधु लखनदासजी तथा साधु श्री रामफलदासजी, बनारस ।
१७. बाइबिल ।
१८. बृहत् हिन्दी कोश—ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी ।
१९. मूल बीजक—श्री १०८ गोसाईं श्री भगवान साहेब, प्र०—मानसर, दाऊदपुर, छपरा, १९३७ ।
२०. मूल बीजक—पूरनदास, बम्बई, सं० १९९३ ।
२१. रामचरितमानस—गोस्वामी तुलसीदास, प्र०—मन्त्री, सर्वभारतीय काशिराजन्यास, रामनगर दुर्ग, वाराणसी ।
२२. विनयपत्रिका—तुलसीदास—प्र०—गीता प्रेस, गोरखपुर ।
२३. संस्कृत-इंगलिश-कोश—वी० एस० आप्टे, प्र०—मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी ।
२४. सन्त कबीर—डॉ० रामकुमार वर्मा—प्र०—साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, १९४३ ।
२५. सद्गुरु कबीरसाहेब का बीजक—प्र०—खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना, सन् १९२६ ।
२६. सन्त दाऊदयाल की वाणी—जयपुर ।
२७. हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग १)—आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्र०—वाणी वितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी ।

अनुक्रमणिका

———



रमैनियों की अकारादि क्रमानुसार सूची


437


पुस्तक 437
भारती पुस्तकालय

● डा० जयदेव सिंह

एम० ए० (दर्शन तथा संस्कृत), डी०लिट्० (मानद्, कानपुर वि० वि०)

जन्म : संवत् १९५०

साहित्य, दर्शन एवं संगीत के बहुश्रुत मनीषी डा० जयदेव सिंह लगभग पचास वर्षों से साहित्य तथा दर्शन के अध्ययन-अध्यापन में रत हैं! आकाशवाणी में अनेक वर्षों तक संगीत विभाग के प्रोड्यूसर रहे एवं संप्रति संगीत-नाटक अकादमी, उत्तर प्रदेश के अध्यक्ष हैं। सन् १९७४ में भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण की उपाधि से विभूषित।

कृतियाँ

१. भारतीय दर्शन की रूपरेखा
२. भारतीय संगीत का वृहत्तर इतिहास
३. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्
४. बुद्धिस्ट कन्सेप्शन आफ निर्वाण (संपादित)

● डा० वासुदेव सिंह

जन्म : ३१ अक्तूबर, सन् १९३५

सन् १९५६ में आगरा विश्वविद्यालय से एम० ए० (हिन्दी) प्रथम श्रेणी। विश्वविद्यालय के सभी छात्रों में प्रथम स्थान—स्वर्ण पदक से विभूषित। सन् १९६२ में पी-एच० डी०। सम्प्रति हिन्दी विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी में प्राध्यापक।

कृतियाँ

१. अपभ्रंश और हिन्दी में जैन-रहस्यवाद
२. हिन्दी-साहित्य का उद्भव काल
३. तुलसी : सन्दर्भ और दृष्टि (संपादित)

हिन्दी साहित्य के मानक ग्रंथों की शृंखला

कबीर वाङ्मय

छह खण्डों में

कबीर संत-काव्य-धारा के सर्वाधिक सशक्त प्रतिमान थे। परमतत्त्व उनके दर्शन की पृष्ठभूमि था और तत्कालिन धर्म तथा सम्प्रदायों के रूढ़िवाद से ऊपर उठकर उन्होंने मानव चेतना को एक नयी दिशा प्रदान की। इन सबके लिए कबीर ने जिन प्रतीकों का सहारा लिया, भाषा को जो अर्थवत्ता दी, साहित्य तथा दर्शन के जिन नये आयामों को प्रतिष्ठित किया उसका गंभीर अध्ययन, अनुशीलन तथा रमैनी, साखी, शब्दों की भावार्थबोधिनी व्याख्या 'कबीर वाङ्मय' परियोजना का प्रमुख प्रतिपाद्य है।

प्रथम खण्ड	: रमैनी
द्वितीय खण्ड	: साखी
तृतीय खण्ड	: शब्द
चतुर्थ और पंचम खण्ड	: कबीर के साहित्य, पंथ, साधना, दर्शन और योग का प्रामाणिक विवेचन।
षष्ठ खण्ड	: कबीर कोश



विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी